विचार
चिंतन
शोध सृजन

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed
Research Journal of Humanities

वर्ष : 10 | अंक : 41 | जुलाई-सितम्बर, 2025
Year - 10 | Volume - 41 | July-September, 2025

प्रधान-संपादक
डॉ० सुनील कुमार मानस

संपादक
डॉ० योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक
डॉ० सुधीर कुमार तिवारी

ISSN : 2455-4219

आलोचन दृष्टि

Aalochan Drishti

An International Peer Reviewed Refereed Research Journal of Humanities

वर्ष - 10	अंक - 41	जुलाई-सितम्बर, 2025
Year - 10	**Volume - 41**	**July-September, 2025**

प्रधान-संपादक

डॉ. सुनील कुमार मानस

संपादक

डॉ. योगेश कुमार तिवारी

प्रबंध-संपादक

डॉ. सुधीर कुमार तिवारी

© **प्रकाशक :**
संपादकीय/प्रकाशकीय पता :–
सृजनश्री न्यास,
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद–फतेहपुर,
उ0प्र0–212635
ई–मेल : aalochan.p@gmail.com

मुद्रण :– जय ग्राफिक्स एण्ड कान्सट्रक्सन,
आई0टी0आई0 रोड़, फतेहपुर–212601।

सदस्यता शुल्क	एक अंक	वार्षिक	आजीवन
व्यक्तिगत	500	1800	16,000
संस्थागत	600	2000	18,000

संरक्षक एवं सलाहकार मंडल

- **प्रो. गिरीश्वर मिश्र,** शिक्षाविद् एवं पूर्व कुलपति, म. गां. अं. हिं. वि., वर्धा (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. कृपाशंकर चौबे,** महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, (महाराष्ट्र)।
- **प्रो. माधवेन्द्र पाण्डेय,** पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय।
- **प्रो. अरविंद कुमार झा,** इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **प्रो. सच्चिदानंद मिश्र,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी।
- **प्रो. दयाशंकर त्रिपाठी,** बी–17, नीलकंठ बंग्लोज, वल्लभ विद्यानगर, आनंद।
- **प्रो. एस0 वी0 एस0 एस0 नारायण राजू,** तमिलनाडु केन्द्रीय विश्वविद्यालय, तमिलनाडु।
- **प्रो. सुमन जैन,** काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।
- **प्रो. शिव प्रसाद शुक्ल,** इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
- **प्रो. अनूप शुक्ल,** रामजानकीपुरम्, सिविल लाइन, फतेहपुर।
- **Shri. Tejendra Sharma,** Harrow & Weealdstone, Middlesex HA3 7AN (U.K.)
- **Mrs. Archana Painyuly,** Islevhusvej, 72 B, 2700, Bronshoj, Copenhagen, Denmark.

संपादक-मंडल

- **डॉ. उदयन मिश्र,** लाल बहाकुर शास्त्री पी. जी. कॉलेज, पं. दीनदयाल उपाध्याय नगर, चंदौली (उ. प्र.)।
- **डॉ. बलराम शुक्ल,** दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. ऋषभ कुमार मिश्र**, डॉ. बी. आर. अंबेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली।
- **डॉ. योगेश कुमार करसनभाई चाडसणिया,** उच्च शिक्षा विभाग, गुजरात सरकार।
- **डॉ. शशिभूषण भट्ट,** चंद्रधारी मिथिला कॉलेज, दरभंगा (बिहार)।
- **डॉ. हरीश पाण्डेय,** महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदू विश्वविद्यालय, वर्धा–महाराष्ट्र।
- **डॉ. दण्डिभोट्ला नागेश्वर राव,** श्री चंदशेखरेंद्र सरस्वती विश्वविद्यालय, एनात्तूर–कांचीपुरम्, तमिलनाडु।
- **डॉ. अमित दूबे,** आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, वाराणसी।
- **डॉ. आनंद कुमार,** राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर, (उ. प्र.)।
- **श्रीमती आकांक्षा अग्निहोत्री,** सरदार पटेल विश्वविद्यालय, बल्लभ विद्यानगर, आनंद–गुजरात।
- **डॉ. वर्षा तिवारी,** पं. शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय, शहडोल–(म. प्र.)।

विधि-परामर्शदाता

श्री **उमाशंकर त्रिपाठी** (एडवोकेट), सिविल कोर्ट, फतेहपुर उ0प्र0–212601।

नोट : सभी पद अवैतनिक एवं अव्यावसायिक हैं। प्रकाशित शोध–लेखों एवं उसमें दिये गये उद्धरणों के वाद–विवाद संबंधी किसी भी कार्यवाही का शोधकर्ता (लेखक) स्वयं जिम्मेदार होगा। इस तरह के किसी भी विवाद में संपादक, प्रकाशक एवं 'आलोचन दृष्टि' परिवार के किसी भी सदस्य की कोई जवाबदेही नहीं होगी। किसी भी प्रकार के विवाद–संवाद का समाधान फतेहपुर न्यायालय में ही होगा।

संपादकीय

आज हम आलोचना के निर्धारित मानदंडों के आधार पर बार–बार यह सोचने के लिए विवश हैं कि आलोचना को हम किस तरह से लिखें–पढ़े या जाने–समझें। वस्तुतः जो आलोचना का उद्देश्य है, वह आखिर है क्या? आलोचना का मतलब क्या है? आलोचना से हमारा क्या अभिप्राय है? ऐसे तमाम प्रश्न हैं जो आलोचना को समझने के लिए सूत्रात्मक बातें करते हैं, किंतु ये जो तमाम बातें हैं, वे समाज को व्यवस्थित करने का एक उपक्रम मात्र हैं, लेकिन जब हम पूरे समाज को देखते, सुनते और समझते हैं तो कई बार यह लगता है कि हिन्दी–साहित्य की आलोचना की– जो एक पारंपरिक सोच या समझ बन गई है, वह किसी रचना–विशेष को किसी विशेष विचारधारा में रखकर मूल्यांकित करने की केवल एक निर्वाह की प्रक्रिया मात्र बन गयी है, लेकिन यह बात आलोचना को समझने में बाधा भी उत्पन्न करती है। इस बाधा के कई कारण भी हैं। ऐसा भी जान पड़ता है कि 'आलोचना कैसी होनी चाहिए', 'आलोचना का मूल उद्देश्य क्या है', 'आलोचना का प्रदेय क्या है'– जैसी तमाम बातें आज के समय में निष्प्रयोज्य हो चुकी हैं। ऐसे में कुछ भी कह देना, लिख देना, बोल देना– आलोचना तो नहीं हो सकती और चाहे जो हो। वस्तुतः आलोचना का जो प्रयोग हुआ, वह साहित्य को समझने का एक उपक्रम मात्र था, क्योंकि रचना जो भी होती है, वह एक प्रकार से समाज की आलोचना ही होती है, और इस प्रस्तुतीकरण में रचनाकार कई बार शैली–विशेष को अपनाता है, जिसमें उसकी किसी विचारधारा से प्रभावित दृष्टि का विश्लेषण उसमें होता है एवं अभिव्यक्ति का अपना निजी कौशल भी होता है। इस दृष्टि और अभिव्यक्ति के कौशल को समझने की प्रक्रिया ही आलोचना का पर्याय हो चुकी है।... हम किसी रचना को किस तरह से देखें या किसी विचारधारा को किस तरह से समझें– इन सबको समझने का कार्य आलोचना ही करती रही है।... ऐसी तमाम बातें मैं लगातार 'आलोचक दृष्टि' पत्रिका के संपादन में करता भी चला आया हूँ।...

आज जब मैं संपादकीय लिख रहा हूँ तो शारदीय नवरात्रि के दिन चल रहे हैं। पूरे देश में नवरात्रि की धूमधाम मची है। 'धूमधाम' कहना अब शायद सही नहीं होगा, 'धूम–धड़ाका मचा हुआ है' कहना ज़्यादा लाज़िमी है। कहीं बड़े–बड़े डी.जे. के माध्यम से डाँस आदि के ज़बरदस्त कार्यक्रम चलते हैं, तो कहीं पटाखों की इतनी अनुगूँजें है कि पूरा वातावरण एक तरह से शोरगुल और प्रदूषण से भर रहा है। लगता है कि नवरात्रि के पर्व का जो उत्सव है, वह पश्चिमी–एंटरटेनमेंट में बदल गया है। हम उत्सव मनाते रहे हैं और उत्सव, एंटरटेनमेंट नहीं होता। नौ दिन की नवरात्रि की यात्रा हमें आत्मिक रूप से ऊर्जावान बनाती है, जिसमें हम अपने अंतःमन एवं बाह्य–मन की अशुद्धियों को दूर करते हैं। यह शुद्धिकरण की प्रक्रिया दशहरे में परिणत होती है। नवरात्रि के ठीक बाद दशहरा आता है, जिसमें इन नौ दिनों में किया गया तप, जप एवं साधना और सिद्धि से मनुष्य अपने कर्मेंद्रियों–ज्ञानेंद्रियों के दासत्व से मुक्त होकर अपने अंतःमन के 'दशानन' रूपी रावण (चीख–चित्कार रूदन आदि भाव) का अंत करता है। जब ऐसा हो जाता है तब हमारा मन विशुद्ध होकर कल्याणकारी मार्ग पर चलने के लिए संकल्पबद्ध भी हो जाता है। यही संकल्प नवरात्रि और दशहरे का मूल तत्त्व है, जिसे इस पर्व और त्योहार के माध्यम से हम प्रति वर्ष मनाते हैं और अपनी परंपरा एवं संस्कृति का निर्वाह करते हैं।

हाल ही में हिंदी दिवस का उत्सव पूरा हुआ। आज़ादी के 78 वर्षों बाद भी 'हिंदी की वर्तमान स्थिति' और हर साल **'हिंदी दिवस'** एवं **'हिंदी पखवाड़ा'** मनाए जाने को लेकर गहरी चिंता होती है। स्वाधीनता के समय हिंदी के प्रति भारतीय जनमानस का जो गहरा लगाव था, वह धीरे–धीरे कम हुआ है, जबकि हिंदी जानने वालों की संख्या में भारी इज़ाफ़ा हुआ है और लगातार हो रहा है। काश, जिस तरह से सभी रियासतों को एक करने वाले लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल मिल गए थे, वैसा ही लौहपुरुष अगर हिंदी को मिल गया होता तो आज पूरे देश के राज–काज की भाषा हिंदी होती और जो व्यर्थ में हिंदी के प्रचार में करोड़ों रुपये बर्बाद होते हैं, वे न होते। बस "जैसा चल रहा है, वैसा चलाते रहो" की अवधारणा ही 78 वर्षों से ढोयी जा रही है, जबकि आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखते हुए अब हिंदी को राजभाषा के रूप में पूरे देश में लागू ही कर देना चाहिए। इसके लिए अगर संघर्ष भी करना पड़े तो पीछे हटने की जरूरत नहीं है।

इधर मुझे दो महत्वपूर्ण संगोष्ठियों में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ। पहली– ग़ज़लों को लेकर काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी में हुई त्रिदिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी (29–31 अगस्त, 2025; विषय– **ग़ज़ल, हिन्दी ग़ज़ल : समाज, दर्शन, इतिहास और संगीत**) है, जिसमें देश–विदेश से तमाम वक्ताओं ने अपनी–अपनी बातें ग़ज़ल को लेकर कहीं। मेरे ध्यान में यह पहली अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी है जो ग़ज़ल को लेकर संपन्न हुई। इसके लिए प्रो. वशिष्ठ अनूप सर धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने हिंदी अकादमिक जगत को ग़ज़ल के अंतरराष्ट्रीय फलक से जोड़ने का कार्य किया। दूसरी– संगोष्ठी **'आधुनिक हिंदी साहित्य और भारतीयता'** को लेकर **उच्च**

अध्ययन संस्थान, शिमला ने 3–4 सितंबर, 2025– को आयोजित की। इस संगोष्ठी में 11–12 राज्यों से प्रतिनिधियों ने अपने व्याख्यान प्रस्तुत किए। इसके लिए **डॉ. मनोज पाण्डेय** सर अभिनंदन के पात्र हैं, जिन्होंने हिंदी अकादमिक जगत को 'आधुनिक हिंदी साहित्य और भारतीयता' समझने की नवीन दृष्टि प्रदान की है। इन दोनों संगोष्ठियों का सम्पूर्ण प्रतिवेदन उपरोक्त अंक के अंत में संकलित है।

इधर एक बहुत बड़ा विवाद साहित्य के आलोचकों और साहित्यकारों के बीच शोरगुल का कारण बना हुआ है– वह है हिन्दी युग्म, प्रकाशन द्वारा विनोद शुक्ल जी को 30 लाख रुपये की रॉयल्टी का चेक प्रदान किया जाना। जीवन के लगभग उत्तरार्ध में एक बड़े रचनाकार को 30 लाख की जो राशि प्रदान की गई है, उसमें इतना हाहाकार मच जाना न तो आलोचकों के लिए शोभनीय है और न ही साहित्यकारों के लिए। इतना हो–हल्ला किस बात को लेकर हो रहा है, समझ में नहीं आता। जिसके जीवन का अधिकांश–भाग बेहद गरीबी, लाचारी एवं बेबसी में कटा है, उसे उत्तरार्ध में कुछ धनराशि मिल जाने से इतना हो–हल्ला करना लज्जास्पद है। विनोद शुक्ल इतने बड़े रचनाकार हैं कि उन्हें अगर एक करोड़ भी मिलता या दिया जाता तो कम है। उनका यह पुरस्कार केवल उनका सम्मान मात्र है। अगर उनकी पारिश्रमिकता को ध्यान में दिया जाए तो जितने भी प्रोफेसर हैं, उनके पूरे जीवन की जो आय है उसे ध्यान में रखते हुए और शुक्ल जी के योगदान को देखते हुए अगर तुलना की जाए तो शायद विनोद शुक्ल को एक प्रोफेसर से कई गुना राशि प्रदान करने की आवश्यकता महसूस होती है। यह अलग बात है कि आज का हर बड़ा बनने वाला आलोचक 'बिका हुआ' है, रचनाकार 'बिका हुआ' है, जो अपनी पुस्तक छपवाने के लिए प्रकाशक को रुपये देता है, और उनकी यह मनोवृत्ति बन भी गई है कि बड़े से बड़े लेखक से भी प्रकाशक रुपये लें, दें नहीं। यह हमारे लिए शर्म की बात है।

पिछले महीने हमने भोजपुरी को अंतरराष्ट्रीय फलक पर प्रतिष्ठित करने वाले महत्वपूर्ण आलोचक एवं रचनाकार **डॉ. अरुणेश नीरन** जी हमेशा के लिए खो दिया है। भोजपुरी साहित्य को आगे बढ़ाने और अंतरराष्ट्रीय मंच प्रदान करने का श्रेय डॉ. नीरनजी को ही जाता है। उनका मानना था कि जनपदीय भाषा के विकास के साथ ही हिंदी का विकास होगा, इसलिए उन्होंने जनपदीय भाषा भोजपुरी को आगे बढ़ाने का हर संभव कार्य किया। उनका संपूर्ण जीवन अध्ययन, अध्यापन, चिंतन–मनन और भोजपुरी के विकास से पूरी तरह सन्नद्ध रहा। मैं 'आलोचक दृष्टि' शोध पत्रिका की ओर से उन्हें सादर श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

पिछले पाँच वर्षों से लगातार आलोचक दृष्टि के नाम से एक ऑनलाइन फ्रॉड चल रहा है, (वेवसाइट : https://ejahan.org ईमेल : submitadj@gmail.com)। इनमें न तो लेखों का कोई स्तर है और न ही कोई व्यवस्थित स्वरूप। इसकी शिकायत भी बिंदकी (फ़तेहपुर, उ.प्र.) थाने में की गयी है। इस फ्रॉड वेबसाइट में बहुत सारे लेख छप चुके हैं और उन लेखों से न जाने कितना कमाया जा चुका है और लगातार कमाया जा रहा है। बहुत दुःख होता है कि जो पत्रिका पिछले 10 वर्षों से आर्थिक समस्याओं का सामना कर रही है, उसके नाम पर ऑनलाइन फ्रॉड करते हुए लाखों रुपये कमाए जा रहे हैं। यूजीसी पत्रिका की वेबसाइट में भी यह देखा जा सकता है। मैं अपने सभी पाठकों से यह कहना चाहता हूँ कि इस ऑनलाइन फ्रॉड से बचें और दूसरों को भी बचाएँ, क्योंकि एक दिन भाँडा सबका फूटता ही है और जब फूटता है तो उसके साथ जुड़े जितने भी लोग होते हैं, वे सभी दोषी करार होते हैं। मैं संपादकीय–लेखों में इसका उल्लेख भी कर चुका हूँ।

आलोचक दृष्टि पत्रिका के संपादक मंडल एवं संरक्षक मंडल में बदलाव की कुछ आवश्यकता महसूस हो रही है, क्योंकि इन मंडलों में रहते हुए लोग पत्रिका के सहयोग से पूरी तरह निष्क्रिय हैं। अतः पत्रिका के विकास को ध्यान में रखते हुए आने वाले अंक में संरक्षक एवं सलाहकार मंडल में वैधानिक प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए बदलाव संभव है, जो आने वाले अंक में परिलक्षित होगा। उपरोक्त पत्रिका का यह अंक कुल 21 शीर्षकों में प्रकाशित हो रहा है, जिसमें हिंदी–भाषा के 18 (संगोष्ठी प्रतिवेदन सहित), संस्कृत–भाषा का 1 (एक), और अंग्रेजी–भाषा के 2 (दो) शोध–पत्र शामिल हैं। सभी शोध–पत्र या लेख अपने–अपने क्षेत्र के विद्वानों की महनीय अभिव्यक्तियाँ हैं। इन लेखों से हमारे पाठक निश्चित रूप से लाभांवित होंगे।

इस अंक के संपादन हेतु 'आलोचन–दृष्टि परिवार' को सादर आभार ज्ञापित करता हूँ, जिनके सहयोग और सहकार से ही– पत्रिका का यह अंक अपना अंतिम कलेवर ग्रहण कर रहा है। साथ ही, पाठकों–लेखकों के स्नेह एवं लगाव के प्रति भी, कृतज्ञ हूँ। शेष....

30 सितम्बर, 2025।

विषयानुक्रमणिका

- संपादकीय iii-iv
- विषयानुक्रमणिका v-vi

1. प्राचीन भारतीय दर्शन और क्वांटम भौतिकी की निष्पत्ति (द्वंद्व एवं साम्य के संदर्भ में) 1-14
कमलाकांत त्रिपाठी
2. 'पुष्प और पत्थर की अभिलाषा' देशभक्ति तथा मातृभूमि प्रेम का चरमोत्कर्ष 15-17
प्रो. हसमुख परमार
3. ईश्वरीय संकल्पना एवं लोकजीवन में भक्ति की प्रसारता संबंधी अगौना के.... 18-21
डॉ. जितेन्द्र कुमार गिरि
4. बाल काव्य मीमांसा के नवीन प्रतिमान स्थापित करती प्रभा पंत की कविताएँ... 22-26
विजयलक्ष्मी
5. यशपाल के उपन्यास 'दादा कामरेड' में सामाजिक चिंतन का स्वरूप 27-31
पूजा
6. हिन्दी कविता में बाल विमर्श : सामाजिक सरोकार 32-36
डॉ. नलिनी सिंह
7. भारतीय ज्ञान परंपरा में बौद्ध नैतिकता का स्थान और योगदान 37-43
शनि मिश्रा
8. दलित कहानी में श्रम, संघर्ष और संस्कृति का यथार्थ 44-51
डॉ. नितीन गायकवाड
9. भतरा समुदाय : संस्कृति और लोकगीत 52-55
डॉ. भारती लक्ष्मी पाल
10. भाषाओं की सीमा में बोलियों का प्रयोग (प्रचलित स्थानीय भाषाई प्रयोगों के संबंध में) 56-60
दीपेन्द्र कुमार एवं प्रो. टी. कमलाबती देवी
11. पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का कहानी संग्रह 'चॉकलेट' हिंदी साहित्य में समलैंगिकता... 61-67
अभिषेक शर्मा
12. भारतीय ज्ञान परंपरा एवं हिंदी कविता में अभिव्यक्त पर्यावरणीय चेतना 68-71
अनुज कुमार

13.	जहीर कुरेशी और सतीश दराडे जी की ग़ज़लों में मानवीय संवेदना *अबेद उल्लाह सय्यद बाबर अली बशारत अली*	72-78
14.	महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण का महत्त्व *डॉ. वसीम आलम*	79-80
15.	भारतीय प्रवासियों की भूमिका का समीक्षात्मक अध्ययन (खाड़ी देशों के...) *ईशा एवं डॉ. रचना यादव*	81-86
16.	गढ़पुरा का नमक सत्याग्रह एवं श्री बाबू का प्रतिरोध *संतोष कुमार*	87-91
17.	अभिनवप्रणववादे सृष्टितत्त्वम् *डॉ. आकांक्षा यादव*	92-95
18.	**Cultural Contours and Global Contrasts A Critical Exploration of...** *Dr. Pratibha Misra*	96-98
19.	**Pahadi Baba Cave Architecture and its Mythological Study** *Dr. Heera Singh Gond*	99-102
20.	'आधुनिक हिन्दी साहित्य और भारतीयता' भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान..का प्रतिवेदन *डॉ. सुनील कुमार मानस*	103-107
21.	'ग़ज़ल, हिंदी ग़ज़ल : समाज, दर्शन, इतिहास और संगीत'... संगोष्ठी ... का प्रतिवेदन *डॉ. योगेश कुमार तिवारी एवं डॉ. सुधीर कुमार तिवारी*	108-113

प्राचीन भारतीय दर्शन और क्वांटम भौतिकी की निष्पत्ति
(द्वंद्व एवं साम्य के संदर्भ में)

कमलाकांत त्रिपाठी*

1- प्राचीन भारतीय दर्शन की संक्षिप्त पृष्ठभूमि

प्राचीन भारतीय दर्शन कुल नौ हैं। उनमें तीन वेदेतर दर्शन हैं– चार्वाक, जैन और बौद्ध तथा छः वैदिक दर्शन हैं– जैमिनि का मीमांसा (या पूर्वमीमांसा), गौतम का न्याय, कणाद का वैशेषिक, कपिल का सांख्य, पतंजलि का योग और बादरायण (व्यास?) का वेदांत (या उत्तर मीमांसा)।

चार्वाक दर्शन :– चार्वाक दर्शन शुद्ध भौतिकवादी है। उसके अनुसार प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। सभी अप्रत्यक्ष प्रमाण संदिग्ध एवं निराधार हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान से ज्ञेय जड़ जगत् चार भौतिक तत्वों से निर्मित है– वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी। संसार के सभी द्रव्य इन्हीं चार मूल तत्वों से बने हैं। आत्मा के अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं। चेतन प्राणी और उसके शरीर में कोई भेद नहीं। यह कथन असत्य है कि चेतना की उत्पत्ति भौतिक तत्वों से नहीं हो सकती। भौतिक तत्वों से चेतना की उत्पत्ति शरीर के विशेष गुण का फलित है। कई वस्तुओं के संयोग से नई वस्तु की उत्पत्ति प्रत्यक्ष प्रमाणित है। इस तरह के संयोग से निर्मित वस्तुओं में नवीन गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है। एक ही वस्तु की भिन्न–भिन्न अवस्थाओं मे नये–नये गुणों का सन्निवेश देखा जाता है। पान, सुपारी, चूने और कत्थे में से किसी में लाल रंग नहीं होता किंतु उन्हें एक साथ चबाने से लाल रंग की उत्पत्ति हो जाती है। गुड़ में मादकता नहीं होती किंतु उसके सड़ने पर मादकता आ जाती है। जिस तरह भौतिक तत्वों के विशेष ढंग से मिश्रित होने पर जीव का शरीर बनता है, उसी तरह उसमें चेतना का संचार भी हो जाता है। मानव–शरीर के नष्ट होने पर चेतना भी नष्ट हो जाती है, उसका कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहता। इसलिए मृत्यु के बाद कर्मों के फल–भोग की कोई संभावना नहीं। ईश्वर का अस्तित्व भी प्रत्यक्ष ज्ञान से अप्रमाणित है, इसलिए उसके द्वारा संसार की सृष्टि का प्रश्न ही नहीं उठता। ईश्वर की आराधना और स्वर्ग की कामना निरर्थक हैं। वेदों और पुरोहितों में श्रद्धा रखना भी मूर्खता है। दुःख से मिश्रित होने के कारण सुख त्याज्य नहीं है। भूसे के कारण अन्न का परित्याग नहीं किया जाता। पशुओं द्वारा चरे जाने के भय से अनाज बोकर फ़सल उगाना बंद नहीं किया जाता। इसलिए जीवन को अधिक से अधिक सुखमय बनाना और दुःख से अधिक से अधिक बचने का प्रयास करना ही जीवन का लक्ष्य है।

जैन दर्शन :– जैन दर्शन प्रत्यक्ष के अतिरिक्त अनुमान को भी प्रमाण मानता है। इससे और आगे बढ़कर वह 'शब्द' को भी प्रमाण मानता है। आध्यात्मिक विषयों का गूढ़ ज्ञान प्रत्यक्ष और अनुमान से संभव नहीं। विश्वासयोग्य पुरुषों के उपदेश ही शब्द प्रमाण हैं जिनसे सत्य का ज्ञान हो सकता है। जैन दर्शन ईश्वर को नहीं मानता किंतु 24 तीर्थंकरों को सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान, इसलिए उनके उपदेशों को शब्द प्रमाण मानता है। जैन दर्शन स्याद्वादी है। उसके अनुसार कोई भी वस्तु एक दृष्टि से भावात्मक है तो दूसरी दृष्टि से अभावात्मक। भिन्न–भिन्न दृष्टियों से विचार करने पर एक ही वस्तु के भिन्न–भिन्न धर्म ज्ञात होते हैं। सभी प्राणियों के प्रति दया तथा अन्य मतों के प्रति आदर भाव जैन दर्शन का विशेष गुण है।

बौद्ध दर्शन :– गौतम बुद्ध के उपदेशों पर आधारित बौद्ध दर्शन ईश्वर पर कोई विचार नहीं करता। बौद्ध दर्शन का लक्ष्य अप्रत्यक्ष दार्शनिक प्रमेयों– आत्मा, जगत्, पाप–पुण्य, मोक्ष––पर विचार करना नहीं, मनुष्य के दुःखों के अंत का उपाय ढूँढ़ना है। जन–साधारण के लिये महात्मा बुद्ध के उपदेशों का सार चार आर्य सत्यों में निहित है– एक, सांसारिक जीवन में दुःख है; दो, दुःखों का कारण है; तीन, दुःखों से निवृत्ति संभव है,

*प्रख्यात चिंतक एवं लेखक, 40/891, कुवेम्पू नगर, हिण्डाल्गा, बेलगावी, कर्नाटक–591108।

और चार, दुःखों से निवृत्ति का उपाय है। दुःखों से निवृत्ति के आठ मार्ग हैं– एक, सम्यक् दृष्टि; दो, सम्यक् संकल्पः तीन, सम्यक् स्मृति; चार, सम्यक् वाक्; पाँच, सम्यक् कर्म; छः, सम्यक् आजीव; सात, सम्यक् व्यायाम; आठ, सम्यक् समाधि। ये अष्टांग साधन अविद्या तथा तृष्णा को दूर करते हैं। इनके फलस्वरूप निर्मल बुद्धि, दृढ़ संकल्प और शांति की प्राप्ति होती है। इस प्रकार दुःख का पूर्ण विनाश हो जाता है और पुनर्जन्म की संभावना समाप्त हो जाती है। इसी अवस्था को निर्वाण कहते हैं। निर्वाण की प्रकृति क्या है, बुद्ध इस पर चुप हैं। निर्वाण सांदृष्टिक है, जिसे प्राप्त हो जाता है उसी को अनुभूत होता है।

मीमांसा दर्शन :– छः वैदिक दर्शनों में जैमिनि–प्रणीत मीमांसा (या पूर्व मीमांसा) वेदों के कर्मकांड पर आधारित है। मीमांसा के अनुसार वेद मानव–कृत नहीं हैं, वे अपौरुषेय और नित्य हैं, ऋषियों द्वारा उनका महज़ प्रकाश हुआ है। ज्ञान के लिए वेद शब्द–प्रमाण हैं। यदि ज्ञान में संदेह हो तो उसे ज्ञान नहीं कहा जा सकता। इसलिए ज्ञान में विश्वास का तत्व अनिवार्य है। ज्ञानेंद्रियों के निर्दोष होने पर वस्तुओं के सम्पर्क से प्राप्त होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान है। भौतिक जगत् की सत्ता प्रत्यक्ष प्रमाणित है। भौतिक जगत् अनादि और अनंत है। न इसकी कभी सृष्टि हुई, न कभी प्रलय होता है। इसलिए जगत्–स्रष्टा परमात्मा या ईश्वर का अस्तित्व नहीं। सांसारिक वस्तुओं का निर्माण आत्माओं के पूर्वार्जित कर्मों के अनुरूप भौतिक तत्वों से होता है। कर्म एक स्वतंत्र सत्ता है जिससे संसार परिचालित होता है। वैदिक विधि–निषेध का अनुपालन ही धर्म है। बिना किसी प्रत्याशा के वेदविहित कर्मों के निष्पादन और वेद–निषिद्ध कर्मों के त्याग से पूर्वकृत दुष्कर्मों एवं उनके फलित का क्षय हो जाता है। वेद–विहित यज्ञादि कर्म एक शक्ति उत्पन्न करते हैं जिसे 'अपूर्व' कहते हैं जिसके कारण हर कर्म का फल भविष्य में मिलता है। इसी के चलते मनुष्य द्वारा इस लोक में किये गये कर्मों के फल का उपभोग परलोक में भी संभव है। भौतिक जगत् की तरह आत्मा भी नित्य और अविनाशी है। शरीर से युक्त होकर वह चैतन्य बनती है। मुक्त आत्मा विदेह और चेतना–विहीन होती है किंतु उसमें चैतन्य की शक्ति रहती है (?); यदि आत्मा को मर्त्य मान लिया जाये तो स्वर्ग की कामना (?) निरर्थक हो जाती है जब कि स्वर्ग या विशुद्ध सुख की प्राप्ति ही परम पुरुषार्थ या मोक्ष है।

(शेष पाँच वैदिक दर्शनकृ न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग और वेदांत (या उत्तर मीमांसा)– वेदों के ज्ञानकांड पर आधारित हैं। वस्तुतः वेदांत के मूल सिद्धांत उपनिषदों में सन्निहित हैं, बादरायण ने अपने ब्रह्मसूत्र में इन्हीं को संकलित किया है।)

न्याय दर्शन :– न्याय दर्शन ईश्वर की सत्ता को तर्क से सिद्ध करने का प्रयास करता है। इसके लिए वह प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान (सादृश्य) तथा शब्द प्रमाण (वेदवाक्य) का सहारा लेता है। न्याय दर्शन का लक्ष्य समय और काल से अबाधित आत्मा को शरीर एवं जन्म–मृत्यु के चक्र से मुक्त करना है। इस दर्शन में चेतना आत्मा का नित्य नहीं, आगंतुक गुण है जो मन और इंद्रियों के माध्यम से किसी विषय से संपर्क होने पर उद्भूत होता है। मुक्तात्मा इन संपर्कों से रहित होने पर इनके संज्ञान से, और उससे उपजी आसक्ति से भी, मुक्त हो जाता है। तत्वज्ञान से प्राप्त यह अपवर्ग (मोक्ष के समकक्ष) की अवस्था है जिसमें आत्मा चेतनाहीन होने से सुख–दुःख दोनों से निरपेक्ष हो जाती है। न्याय के अनुसार जन्म–मृत्यु का चक्र हमारे कर्मों का परिणाम है जो कार्य–कारण सम्बंध से सुख–दुःख के कारक बनते हैं। व्यक्ति के कर्मों के समुच्चय से 'अदृष्ट' की सृष्टि होती है जो भिन्न–भिन्न व्यक्तियों के सौभाग्य–दुर्भाग्य का निर्धारक होता है। किंतु अदृष्ट जड़ और अचेतन है, इसलिए इस कार्य–कारण सम्बंध को सुनिश्चित करनेवाली कोई सत्ता होनी चाहिए। वही ईश्वर है जो जगत् का निमित्त कारण है, उपादान कारण कर्मशील मनुष्य है।

वैशेषिक दर्शन :– कणाद का वैशेषिक दर्शन न्याय का सगोत्र है। वैशेषिक का उद्देश्य भी प्राणियों के लिए अपवर्ग की प्राप्ति है जो ईश्वर के निमित्त कारण से बने जगत् के सुख–दुःख से मुक्ति की अवस्था है। वैशेषिक की विशेषता यह है कि उसमें पदार्थ और गति के सम्बंध में प्रकृति–वैज्ञानिक दृष्टिकोण केंद्रीभूत है। वैशेषिक दर्शन की ब्रह्मांडीय अवधारणा में आधुनिक भौतिकी का ज्ञान अनुस्यूत है। कणाद ने प्रतिपादित किया कि सभी वस्तुओं में लघुतम, अविभाज्य कण परमाणु है जो अन्य परमाणुओं से संयुक्त होकर अणु के रूप में विद्यमान रहता है। उनके अनुसार परमाणु शाश्वत हैं; उन्हें न तो निर्मित किया जा सकता है, न नष्ट किया जा सकता है। कणाद समस्त तत्वों को सात श्रेणियों में वर्गीकृत करते हैं– द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्यता,

विशेषता, समवाय और अभाव। फिर वे द्रव्य की नौ श्रेणियों का उल्लेख करते हैं– क्षिति, जल, अग्नि, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। इनमें से आकाश, काल, और दिक् इस अर्थ में विलक्षण हैं के ये अदृश्य, शाश्वत और विभु (सर्वव्यापी) हैं। कणाद का परमाणुवाद पाश्चात्य भौतिकवादी परमाणुवाद से इस अर्थ में भिन्न है कि जहाँ पाश्चात्य परमाणुवाद में गति किसी चेतन सत्ता से नियमित न होकर स्वतःस्फूर्त होती है, कणाद में उसके पीछे दैवी सत्ता का हाथ होता है। न्याय दर्शन की तरह वैशेषिक में भी दैवी सत्ता सुनिश्चित करती है कि जीव के कर्मों का फल अदृष्ट के रूप में प्रकट हो। और वही दैवी सत्ता सृष्टि तथा प्रलय का कारक है।

सांख्य दर्शन :– कपिल का सांख्य दर्शन द्वैतवादी और निरीश्वरवादी है। कपिल के अनुसार संसार दो तत्वों से बना हैकृपुरुष और प्रकृति। दोनों का अस्तित्व एक–दूसरे से निरपेक्ष है। पुरुष शुद्ध चेतन है, जो उसका अर्जित गुण नहीं, वास्तविक स्वरूप है। पुरुष मन तथा इंद्रियों से भिन्न है। वह नित्य है। यह स्वयं न कुछ करता है, न उसमें कोई परिवर्तन होता है। वह बस जगत् के व्यापार का अवलोकन करता है। प्रकृति के परिणामों का भोक्ता पुरुष प्रत्येक जीव के शरीर में अभिविनिष्ट है। भोक्ता पुरुष एक नहीं, अनेक हैं किंतु शुद्ध चेतन पुरुष एक ही है। त्रिगुणमयी, जड़ प्रकृति संसार का आदि कारण है। सत्व (शुभ, दया और सकारात्मकता), रज (आवेश, क्रोध और क्रियमाणता) एवं तम (अज्ञान, प्रमाद और नकारात्मकता) इसके तीन गुण हैं। हर व्यक्ति का चरित्र प्रकृति के इन्हीं तीनों गुणों के भिन्न–भिन्न अनुपात और उनकी अंतर्प्रक्रिया का परिणाम है। पुरुष की तरह प्रकृति भी नित्य है किंतु यह निरंतर परिवर्तनशील है। प्रकृति स्वयंभू है, इसलिये उसका कोई बाह्य कारण नहीं है। प्रकृति के तीन गुण ही सृष्टि के आदि कारण हैं। जड़ प्रकृति और चेतन पुरुष के संयोग से, कार्य–कारण सम्बंध (सत्कार्यवाद) के अनुसार, बिना किसी दैवी हस्तक्षेप के, सृष्टि होती है और चलती है। कपिल ने तत्वों की कुल संख्या 25 बताई है। पाँच तन्मात्र– ध्वनि, स्पर्शानुभूति, आकार, स्वाद और गंध। पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, पाँच कर्मेंद्रियाँ, पाँच महाभूत– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश। मन, अहंकार, महत् (बुद्धि), प्रकृति, और पुरुष। इनमें से केवल पुरुष शुद्ध चेतन है जो भोग्य का भोग करता है। पुरुष के अतिरिक अन्य सभी 24 तत्त्व प्रकृति में ही निहित हैं। कपिल के अनुसार वेदों में केवल प्रकृति का संदर्भ है, ईश्वर का नहीं। इसीलिए निरीश्वरवादी होते हुए भी कपिल का दर्शन वैदिक दर्शन है।

कपिल का सांख्य सूत्र स्पष्ट रूप से निरीश्वरवादी है. वह विस्तार से ईश्वर के अस्तित्व का खंडन करता है। ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करने के लिए कपिल चार ठोस तर्क देते हैंः

1. घड़े के निर्माण में मिट्टी की तरह ईश्वर सृष्टि का उपादान कारण (Material Cause) नहीं हो सकता। इसलिए कि उपादान अपना स्वरूप और अपनी स्वतंत्र पहचान खोकर ही कार्यरूप में परिणत होता है, जब कि ईश्वर की अवधारणा अविनाशी और अपरिवर्तनीय की है।
2. घड़े के निर्माण में कुम्हार की तरह ईश्वर सृष्टि का निमित्त कारण (Functional Cause) भी नहीं हो सकता। इसलिए कि ईश्वर की अवधारणा नित्य निर्विकार की है जब कि कार्य–प्रक्रिया और उसके परिणाम के संस्कार से कर्ता निर्विकार नहीं रह सकता।
3. ईश्वर की अवधारणा जीव की स्वतंत्र संकल्प शक्ति के लिए कोई अवकाश नहीं छोड़ती। वह तो 'ईश्वर' का दास बन जाता है, ईश्वर की इच्छा या कृपा के बिना वह कुछ भी नहीं कर सकता। ऐसे में न तो वह सत्य का साक्षात्कार कर सकता है, न त्रिगुणमयी प्रकृति का बंधन तोड़कर जीवन के लक्ष्य मुक्ति को प्राप्त कर सकता है.
4. ईश्वर के अस्तित्व को फ़ौरी तौर मानते हुए कपिल प्रश्न उठाते हैं– वह सृष्टि क्यों करेगा? एक, अपनी ज़रूरत के लिए। वह तो अपने–आप में पूर्ण है, पूर्णकाम है, उसे किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं। दो, जीव के हित के लिए? सृष्टि से जीव का क्या हित हो सकता है? सृष्टि में इतनी अनिश्चितता, इतनी अधमता, इतना तम, इतनी बुराई, इतना अन्याय, इतना असत् और अज्ञान है कि जीव को जड़ किंतु अतिशय मायाविनी प्रकृति का बंधन तोड़कर शुद्ध चेतन बनने और इस तरह मुक्त होने के लिए कठिनतम संघर्ष करना पड़ता है। तो ऐसी सृष्टि का कर्ता ईश्वर कैसे हो सकता है?

इस तरह कपिल का सांख्य निरीश्वर सांख्य है। उसे सत्कार्यवाद भी कहते हैं. इसके अनुसार कार्य कारण में ही विद्यमान होता है. घड़े में मिट्टी विद्यमान है। यदि मिट्टी न होती तो किसी भी सूरत में घड़ा नहीं बन सकता था। बालू से तेल नहीं निकाला जा सकता। आकाश मथने से मक्खन नहीं बन सकता। एक ही वस्तु के व्यक्त और अव्यक्त गुणों के चलते हम उन्हें कार्य और कारण मान लेते हैं। कपड़ा अपने धागों से अलग वस्तु नहीं है। मिट्टी का घड़ा भी अंततः मिट्टी ही है और पत्थर की मूर्ति अंततः पत्थर ही है।

योग दर्शन :– पतंजलि का योग दर्शन कपिल के सांख्य दर्शन का पूरक है। यह मनुष्य के अपने स्वरूप (शुद्ध चेतन पुरुष) में अवस्थित होने या कैवल्य प्राप्त करने का विस्तृत रोडमैप है, जो सभी वैदिक दर्शनों के लिए प्रासंगिक है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि उसके आठ चरण हैं। इसी को अष्टांग योग कहते हैं। इनमें से 'आसन' स्थिर और सुविधापूर्वक बैठने की मुद्रा मात्र है (स्थिर सुखमासनम्– योगसूत्र, 2:46)। पतंजलि के नाम से जिन आसनों की आज व्यावसायिक धूम है उनका कोई संबंध पतंजलि के योगसूत्र से नहीं है, वे हठयोग से आयातित हैं।

पतंजलि के योग और कपिल के सांख्य में एकमात्र अंतर पतंजलि द्वारा ईश्वरीय अवधारणा का उल्लेख है। किंतु पतंजलि न तो इस सम्बंध में कपिल की आपत्तियों का समाहार करते हैं, न ही ईश्वर को सृष्टि का कर्ता, नियंता और संहारक के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। उनके अनुसार असंप्रज्ञात समाधि के लिए विश्वास, वीर्य और स्मृति की आवश्यकता होती है जो तीव्र संवेग से प्राप्त होती है। वैकल्पिक रूप से यह संवेग ईश्वर के प्रति समर्पण से भी तीव्र होता है (ईश्वरप्रणिधानाद्वा–1:23)। इस तरह पातंजल योग को सेश्वर सांख्य की संज्ञा दिये जाने के बावजूद वह ईश्वर की मात्र ओष्ठसेवा करता है।

वेदांत दर्शन और अद्वैत वेदांत :– वेदों के ज्ञानकांड का चरम वेदांत है। शंकर ने ब्रह्मसूत्र, गीता और प्रमुख उपनिषदों (प्रस्थानत्रयी) के भाष्य से अद्वैत वेदांत को सर्वोच्च प्रतिष्ठा दिलाई। इसके अनुसार समस्त ब्रह्मांड में एक ही परमचेतन तत्व व्याप्त है जो अनादि और अनंत है। पदार्थ के ख़ास समुच्चय में वह अभिनिविष्ट हो जाता है, उससे उत्पन्न नहीं होता। हर व्यक्ति के अभ्यंतर में उसका निवास है. सृष्टि से बाहर उसका कोई पता ठिकाना नहीं कि जाकर उससे मिल लें, उसका साक्षात्कार कर लें.

शंकर ने कपिल के सांख्यसूत्र में प्रतिपादित सत्कार्यवाद को स्वीकार कर लिया जिसके अनुसार कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व अपने कारण में निहित होता है। कपिल के सत्कार्यवाद में कार्य की उत्पत्ति के पश्चात् कारण के उसमें निहित होने के बावजूद कार्य की भिन्न और स्वतंत्र सत्ता हो जाती है, जिसे परिणामवाद कहा जाता है। शंकर ने इस परिणामवाद के बिंदु पर कपिल से भिन्न मत प्रतिपादित किया। शंकर के अनुसार यदि कारण से कार्य की भिन्नता स्वतंत्र है तो सत्कार्यवाद खंडित हो जाता है। वस्तुतः कारण से कार्य की भिन्नता प्रतीति मात्र है। मिट्टी से बना घड़ा वस्तुतः मिट्टी ही है। इस तरह सृष्टि का आदि कारण हर कार्य में उपस्थित है, वस्तुतः कारण ही कार्य है। उसकी भिन्नता मात्र एक प्रतीति या भ्रम या विवर्त है। इस तरह कपिल का सत्कार्यवाद वास्तविक सृष्टि तक न ले जाकर मात्र सृष्टि की प्रतीति या विवर्त तक ले जाता है। इसी विवर्तवाद के आधार पर शंकराचार्य जगत् के आदि कारण परम चेतन तत्व (ब्रह्म) को सृष्टि की वास्तविक सत्ता मानते हैं और जगत् को प्रतीति या भ्रम मात्र मानते हैं। इस प्रतीति का कारण माया की वह रहस्यमयी शक्ति है जो अनादि तो है किंतु ब्रह्म की तरह अनन्त नहीं। वह ज्ञान से निरस्य है। यह परम सत्ता सच्चिदानंद है। सत्, चित् और आनंद ब्रह्म के गुण नहीं, उसके युगपत् स्वरूप हैं। वे एक–दूसरे पर निर्भर नहीं, एक–दूसरे के कारक नहीं, एक–दूसरे के साथ–साथ हैं। सत् त्रिकालाबाधित है, चित् बोधगम्य है और वैज्ञानिकता का सूचक है, आनंद चेतना की निर्बाध अवस्था है।

शंकर के अनुसार वस्तुजगत् महज़ प्रतीति का विषय है, ज्ञाता–ज्ञेय भेद पर आधारित है। प्रतीति का पर्दा हटने पर केवल ब्रह्म रह जाता है और ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान का एकत्व स्थापित हो जाता है। इस तरह ब्रह्म अनुभूति–जन्य है किंतु तर्क का अविरोधी है। इसलिए वह विज्ञान का भी अविरोधी है। संसार शाब्दिक अर्थ में मिथ्या नहीं है, सदसत्– मिश्रित है, नित्य नाशवान् है। जो नित्य परिवर्तनशील और नाशवान् है वह तात्त्विक रूप से सत् नहीं है। तात्त्विक रूप से सत् केवल आदि कारण है जो चेतन है और शाश्वत तथा

अविनाशी है। वही Being है। सिर्फ़ वही सत्य है, इसलिये वह अद्वैत है। शेष जगत Becoming है, अध्यास है, नश्वर है, माया है, जो आदि कारण को, शुद्ध चेतन को, अद्वैत को, आच्छादित कर लेती है। माया भी अनादि है किन्तु अनंत नहीं हैं, ज्ञान से निरस्य है। माया का निरसन ही जीवन्मुक्ति है।

चूंकि कोई भी वस्तु शून्य से उत्पन्न नहीं हो सकती, इसलिये सृष्टि के लिये एक आदि तत्व अनिवार्य है। सिर्फ़ वही सत्य है। वह चेतन है क्योंकि चेतना सृष्टि के आरम्भ से ही उसमें संगर्भित है, प्रकट भले बाद में हो। मानव चेतना में ही माया के निरसन और आदि चेतन की अनुभूति संभव है। वही अनुभूति सत्य की अनुभूति है। इसीलिए श्रुतियों के चार महावाक्य हैं––'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि', 'प्रज्ञानम् ब्रह्म, 'अयमात्मा ब्रह्म'– जो इसकी पुष्टि करते हैं।

2 - मानव चेतना का खेलः सभ्यता और संस्कृति का विकास

चेतना ही हम प्राणियों को जड़ प्रकृति से भिन्न बनाती है। और अन्य प्राणियों की चेतना से अधिक विकसित होने के कारण ही मनुष्य एक विशिष्ट प्राणी है। मानव चेतना का एक प्रकृत और विशिष्ट गुण है जिज्ञासा। मनुष्य ऐसा प्राणी है जिसकी चेतना में अनंत जिज्ञासा भरी हुई है। वह सब कुछ जान लेना चाहता है– प्रकृत्या। जानना भी दो तरह का है। एक तो अपनी बेहतरी के लिए उस जानकारी का उपयोग करने हेतु। इस श्रेणी की ज्ञान पिपासा मानव सभ्यता के जन्म और विकास की कारक है. शिकारी और संग्रहकर्ता से पशुपालन एवं पशुचारण का घुमन्तू जीवन, जंगल की घासों के बीज से कृषिकर्म की शुरुआत, गृह निर्माण और उपयोगिता, सुरक्षा एवं सुविधा की दृष्टि से उसमें सतत सुधार, पहिये का आविष्कार इत्यादि मानव सभ्यता के विकास में मील के पत्थर हैं।

कला और सौंदर्य के उपादानों की खोज और उनके उपयोग से ऐसा सृजन जिसका लक्ष्य किसी बाह्य उपयोग के बजाय सृजन में ही निहित हो, संस्कृति की विकास यात्रा के चरण है। दोनों में घालमेल भी है। जैसे गृहनिर्माण में उपयोगिता का तत्त्व सभ्यता का और सौंदर्य बोध को तृप्त करने का तत्त्व संस्कृति का घटक है। लेकन मनुष्य की बहुत सारी जिज्ञासाएं शुद्ध रूप से ज्ञान पिपासा को शांत करने के लिए होती हैं. ज्ञान के लिए ज्ञान। उनकी देन संस्कृति की घटक होती है क्योंकि उनका लक्ष्य किसी स्थूल उपयोगिता से जुड़ा नहीं होता।

मानव चेतना की देन सभ्यता एवं संस्कृति दोनों से जुड़ी ज़रूरत के कारण ही मनुष्य ने समाज में रहना सीखा और सामूहिक प्रयास से सभ्यता–संकृति, ज्ञान–विज्ञान का विशाल ताना–बाना खड़ा किया, जो उसे जंगल में रहनेवाले पाषाण–युग के आदिम मानव से इतनी दूर ले आया है। अन्य प्राणी जहां थे, वहीं रह गए। लेकिन दुनिया में हर चीज़ दोधारी है। मनुष्य की चेतना जितनी विकसित है, उतनी ही भरमाती भी है। इतना भरमाती है कि मनुष्य आजिज़ आ जाता है। इसी का लाभ उठाकर समय समय पर होशियार लोगों ने उसकी जिज्ञासा को दबाने के लिए स्वयं को सर्वशक्तिमान ईश्वर का संदेशवाहक घोषित कर दिया। उन्होंने कहा, तुम्हारी चेतना में उठनेवाली जिज्ञासाएं शैतानी हैं, मेरे द्वारा लाए गए संदेश के अनुसार चलने में ही तुम्हारा निस्तार है। इससे तुम्हें यहाँ तो सुकून मिलेगा ही, मरने के बाद भी तुम मज़े में रहोगे। इसके फ़ायदे–नुक़सान दोनों हुए। वह अलग विषय है।

चेतना, जिससे हम (अपनी–अपनी सीमा के भीतर) वस्तुजगत को जानते हैं, इतनी रहस्यमय है कि उसे जानना सबसे कठिन है। कारण, जानने का साधन चेतना और जिसे जानना है वह भी चेतना। चेतना जो भी जान पाती है, ज्ञाता और ज्ञेय के पार्थक्य भाव से ही जान पाती है। यदि हम खुद अपने–आप से प्रश्न करें कि मेरी चेतना क्या है, वह कहां है तो भौचक रह जाएंगे। हम अपने शरीर के अंग प्रत्यंग को तो जान सकते हैं किंतु चेतना को नहीं। उसका कोई आकार प्रकार नहीं, शरीर में उसके निवास का पता नहीं। बताया गया कि हमारे मस्तिष्क में उसका निवास है। किंतु मस्तिष्क के टुकड़े टुकड़े में ढूंढ आएं, वह मिलेगी नहीं। कारण, मस्तिष्क सहित शरीर भौतिक है, चेतना अभौतिक। वह अलग कैटेगरी है जिसका हमें प्रत्यक्ष

ज्ञान साधारणतः नहीं हो सकता। भौतिक अर्थ में चेतना ''कुछ नहीं'' है। खुद में कुछ नहीं किंतु उसी के सहारे हमारा सब कुछ है। मेरी चेतना ही मैं हूं।

इसी पहेली को लेकर पूरब और पश्चिम दोनों के दार्शनिक प्राचीन काल से आज तक दो खेमों में बंटे हुए हैं।

भौतिकवादी मानते हैं कि चेतना जड़ पदार्थों के एक ख़ास समुच्चय से उत्पन्न होती है और (मृत्यु के समय) उस समुच्चय के बिखर जाने से लुप्त हो जाती है। मार्क्सवादी भी भौतिकवादी हैं। वे एक क़दम आगे बढ़कर कहते हैं, चेतना भौतिक पदार्थों का परिणाम ही नहीं, इसमें जितने विक्षेप आते हैं, वे सब भौतिक स्थितियों की देन हैं। उत्पादन–प्रणाली का स्वामित्व और उससे उत्पन्न भौतिक परिस्थितियां ही चेतना की प्रकृति को निर्धारित करती हैं। इस तरह उन्होंने वर्ग–चेतना और वर्ग–चरित्र की अवधारणा दी और वर्ग–संघर्ष की द्वंद्वात्मकता को इतिहास की मूल नियामक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया। इसके विपरीत अध्यात्मवादी या प्रत्ययवादी चेतना को पदार्थ से स्वतंत्र मानते हैं, बल्कि वे तो यहाँ तक जाते हैं कि बहिर्जगत् की अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता ही नहीं। बहिर्जगत् वही है जिसका बोध हमारी चेतना को होता है, इसीलिए भिन्न–भिन्न व्यक्ति की चेतना बहिर्जगत् को भिन्न–भिन्न देखती है। यदि चेतना न होती तो हमारे लिए बहिर्जगत् का कोई अस्तित्व ही न होता।

क्वांटम भौतिकी ने परमाणु के भीतर सदा गतिशील इलेक्ट्रॉन के क्वांटम फ़ील्ड का पता लगाया और इलेक्ट्रॉन की गतिशीलता के कारण उसकी स्थिति और गति का वेग दोनों का एक साथ निरीक्षण करने में अक्षम रही। यह भी पता लगा कि ब्रह्मांड के कुछ इलेक्ट्रॉन के क्वांटम फ़ील्ड परस्पर उलझे हुए हैं। तो अब तक ज्ञात सूक्ष्मतम स्तर पर बहिर्जगत् इतनी तेज़ी से बदल रहा है कि दूसरी बार देखने पर पहलेवाला नहीं रह जाता। हम जिस शयन कक्ष को छोड़कर प्रसाधन कक्ष में गए थे, लौटने पर वही शयनकक्ष नहीं रहा। जब दो लोग कोई वस्तु देखते हैं तो वे एक ही वस्तु नहीं देखते।

इस बिंदु पर अध्यात्मवादी ताल ठोंकते हुए मैदान में कूद पड़े। बोले, हम तो पहले से ही कहते रहे हैं कि बाह्य जगत् वस्तुगत सत्ता नहीं है, वह वही है जो हमारी चेतना देखती है। चेतना भौतिक पदार्थों के समुच्चय से उत्पन्न नहीं हो सकती, यह पदार्थों के उस समुच्चय की अवस्था में केवल अभिनिविष्ट हो जाती है, उसका स्रोत सार्वभौम चेतना है।

भारतीय दर्शन की आध्यात्मिक परंपरा में वस्तुजगत् को प्रतीत्य समुत्पाद (Dependent Origination) की संज्ञा दी गई है जिसकी प्रकृति आभासी है।

श्रोदिन्गर (Schrodinger) जैसे कुछ क्वांटम भौतिकशास्त्री क्वांटम भौतिकी के शिखर पर पहुंचकर निराश होने के बाद उपनिषद् वेत्ता शोपेनहावर की मारफ़त भारतीय वेदांत दर्शन की ओर मुड़ गए। उनके अनुसार चेतना वस्तुजगत् पर निर्भर नहीं करती। सारी वैयक्तिक चेतनाएं अपने आद्य रूप में एक ही हैं; वे सार्वभौम चेतना की भिन्न भिन्न अवस्थितियां हैं। और हर वैयक्तिक चेतना की क्वांटम अवस्था एक विशेष अनुगूंज स्तर (Resonance Level) पर सार्वभौम चेतना को अभिव्यक्त करने की संभावना से लैस है।

इतना तो स्पष्ट है कि हमारी चेतना की सूक्ष्मता की धार के भिन्न भिन्न स्तर हैं जो व्यवहार में व्यक्त होते रहते हैं। अनुभूति, भावना, विवेक, अहं आदि आदि।

3 – ब्रह्मांड के सूक्ष्मतम कणों की प्रकृति पर क्वान्टम भौतिकी के अद्यतन प्रमेय

मार्ग कंटकाकीर्ण है और लम्बा भी। विडम्बना यह कि जैसे–जैसे आगे बढ़ते हैं, वह और भी कंटकाकीर्ण, और भी लम्बा प्रतीत होने लगता है।

सूक्ष्म से सूक्ष्मतर की यात्रा में क्वांटम सिद्धांत को पकड़ने की कोशिश हमें क्वांटम क्षेत्र तक ले जाती है जहाँ इलेक्ट्रॉन और क्वार्क (प्रोटॉन और न्यूट्रॉन के सूक्ष्मतर कण) का तरंगन, घूर्णन और कणों तथा प्रति–कणों के ऊर्जा में रूपांतरण का खेल चलता रहता है। क्वांटम भौतिकी के अवतरण के साथ क्लासिक भौतिकी का एक नया अध्याय शुरू हुआ क्योंकि क्वांटम प्रयोगों के निरीक्षण के साथ एक अभूतपूर्व समस्या खड़ी हो गई। क्वांटम भौतिकी के प्रयोगों में प्रयोगकर्ता या निरीक्षक की चेतना प्रयोग के परिणाम मे निहित कई विकल्पों में से एक ख़ास विकल्प की ओर झुकने लगी। इस तरह प्रयोग के दौरन और प्रयोगांत पर निष्कर्ष–निर्धारण में निरीक्षक की चेतना तथा निरीक्ष्य प्रयोग एवं उसके परिणाम में एकल और अनन्य सम्बंध स्थापित होने लगा। इससे भिन्न–भिन्न निरीक्षकों के निष्कर्ष में भिन्नता आने लगी। दूसरे शब्दों में निरीक्षक की चेतना निरीक्षण के निष्कर्षों को प्रभावित करने लगी जब कि निर्जीव पदार्थों और उनसे बनी वस्तुओं की अंतर्प्रक्रिया और उसके परिणाम के निरीक्षण में नहीं करती थी। इसीलिए क्वांटम भौतिकी क्लासिक भौतिकी से अधिक जटिल विधा बनकर एक नये अनुशासन के रूप में सामने आई।

पहले आ चुका है कि अपने–अपने क्वांटम क्षेत्र से उद्वेलित इलेक्ट्रॉन और उनके प्रति–कण कभी स्थिर नहीं होते। और निरंतर गतिशील वस्तु के आकार–सहित उसकी स्थिति तथा रफ़्तार दोनों का एक साथ निर्धारण असम्भव है। यदि हम वस्तु की ठीक–ठीक स्थिति और उसके आकार का पता करना चाहें तो उसकी रफ़्तार अनिर्धारित रह जाती है; उसकी रफ़्तार को ठीक–ठीक नापना चाहें तो उसकी स्थिति का निर्धारण नहीं हो पाता। इस तरह क्वान्टम सिद्धांत के साथ अनिश्चितता का सिद्धांत (Uncertainty Principle) अविच्छेद्य रूप से जुड़ गया जिससे वैज्ञानिक–समुदाय आज तक जूझ रहा है।

कुछ वैज्ञानिक उपनिषदों और अद्वैत वेदांत की ओर झुक गये हैं जहाँ उन्हें दर्शन और विज्ञान के चरम का संगम नज़र आता है। कई इस अनिश्चितता को शुद्ध वैज्ञानिक पद्धति से पार करने में लगे हैं।

इस बिंदु पर आइंस्टाइन का वह अदम्य आशावादी और विडंबनात्मक बयान बेहद महत्वपूर्ण हो उठता है– 'प्रकृति के बारे में सबसे अबोधगम्य तथ्य यह है कि प्रकृति बोधगम्य है (The most incomprehensible fact about nature is that it is comprehensible.)। आइंस्टाइन को मनुष्य के मस्तिष्क की बोध–क्षमता पर असीम आस्था थी, और वे समय–समय पर अपने अमोघ सहज बोध (Gut Feeling) के इज़हार के लिए भी जाने जाते हैं। इसीलिए अन्य अधिकांश वैज्ञानिकों की तरह अपने को नास्तिक मानने के बजाय वे स्वयं को अज्ञेयवादी (Agnostic) कहना पसंद करते थे। तो प्रकृति जो भी हो, जैसी भी हो, मनुष्य के लिए बोधगम्य है। इसका निहितार्थ मनुष्य की अति संभावनाशील चेतना (वह जैसे भी पैदा हुई हो) को क्वांटम फ़ील्ड के समांतर एक बुनियादी वास्तविकता (Primary Reality) बना देता है। चेतना की सीमा यह है कि वह साधारणतः समय और स्थान के आयाम से सीमित होती है जब कि बुनियादी वास्तविकता इनका अतिक्रमण करती है। क्या चेतना में समय और स्थान का अतिक्रमण करने की संभावना निहित नहीं है?

यहाँ प्रकृति के दो अन्य रहस्यों का उल्लेख ज़रूरी लगता है– कृष्ण विवर (Black Holes) और समय के आरपार यात्रा की संभाव्यता।

कृष्ण विवर (ब्लैक होल) :– कल्पना करें कि तोप का गोला कोई सीधे ऊपर की ओर दागता है। वह जैसे–जैसे ऊपर जायेगा, पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के कारण उसकी रफ़्तार कम होती जायेगी और एक बिंदु पर उसका ऊपर जाना रुक जायेगा, वह नीचे गिरना शुरू कर देगा और एक कालबिंदु पर धड़ाम से नीचे आ गिरेगा। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के संदर्भ में हर वस्तु की एक निर्धारित गति है जिसे निष्क्रमण गति (Escape Velocity) कहते हैं, उस गति से ऊपर की ओर प्रक्षेपित वस्तु कभी नीचे नहीं आयेगी। पृथ्वी के लिए वह निष्क्रमण गति 11 किलोमीटर प्रति सेकंड है। इसी तरह हमारे सूर्य के लिए वह निष्क्रमण गति 617 किलोमीटर प्रति सेकंड है। ये दोनों गतियाँ किसी भी वस्तु को ऊपर फेंकने की गति से अधिक किंतु प्रकाश की गति से बहुत कम हैं जो (लगभग) 300,000 किलोमीटर प्रति सेकंड है। इसीलिए हमारे सूर्य के केंद्र से 15 करोड़ किलोमीटर दूर पृथ्वी उसकी ओर खिंची हुई, अपनी कक्षा में घूमती रहती है और पृथ्वी से 3,84400 किलोमीटर दूर चंद्रमा उसके चारों ओर घूमता रहता है। किंतु ब्रह्मांड में कुछ ऐसे तारे (यानी सूर्य)

हैं जिनका द्रव्यमान हमारे सूर्य से इतना अधिक है कि उन पर वस्तुओं की निष्क्रमण गति प्रकाश की गति से अधिक है। उन तारों को हम देख नहीं सकते क्योंकि वे जिस प्रकाश को छोड़ते हैं वह उनकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति से उन्हीं की ओर खिंच उठता है। ऐसे तारे द्रव्यमान की अधिकता के कारण कभी स्वयं भी ढह सकते हैं। तारों के इस तरह ढहने से ही कृष्ण विवर बनता है जो पारंपरिक भौतिकी के लिए एक चुनौतीपूर्ण रहस्य है। अमेरिकन सैद्धांतिक भौतिकशास्त्री (Theoretical Physicist) जॉन ह्वीलर (1911–2008) ने कृष्ण विवर के गुणों पर काफ़ी शोध करने के बाद कई मान्यताएँ दी हैं। ऐसे तारे अपनी आयु के अधिकांश में ऊष्मा के दबाव और नाभिकीय ईंधन से स्वतः स्थिर रहते हैं किंतु जब यह ईंधन ख़त्म हो जाता है, सिकुड़ने लगते हैं। भारतीय मूल के अमेरिकन भौतिकशास्त्री सुब्रह्मण्यम चंद्रशेखर (1910–1995) ने, जिन्हें भौतिकी में (विलियम फ़ावलर के साथ) 1983 का नोबल पुरस्कार मिला था, प्रतिपादित किया कि हमारे सूर्य से 1.4 गुना बड़े तारे तक तो सिकुड़कर बौने तारों जैसे बने रह सकते हैं, किंतु उनसे भारी तारे सिकुड़ने पर अनंत घनत्ववाले बिंदु बन जाते हैं और टूटकर ढह जाते हैं।

जब ऐसा होता है, तारों का मलबा कृष्ण विवर बनाकर उसमें अदृश्य हो जाता है। मलबे का प्रबल गुरुत्वाकर्षण कृष्ण विवर के आसपास की वस्तुओं को भी खींच लेता है। हर कृष्ण विवर बाहर एक निश्चित परिधि तक की वस्तुओं, प्रकाश तक को अपनी ओर खींच लेता है और लौटने नहीं देता। चूँकि किसी भी वस्तु की गति प्रकाश की गति से अधिक नहीं हो सकती, इस परिधि में आते ही सभी वस्तुएँ कृष्ण विवर में खिंच उठती हैं, और हमेशा के लिए खो जाती हैं। कृष्ण विवर की इस प्रकृति के कारण कई अन्य ढहनेवाले तारे पहले ढहे हुए तारे के कृष्ण विवर में समाकर उसे असीमित रूप से बढ़ा सकते हैं। हमारी नीहारिका आकाश गंगा के केंद्र में एक ऐसा ही कृष्ण विवर है जो हमारे सूर्य से 40 लाख गुना द्रव्यमान के तारे से बना है। कृष्ण विवरों की नियत परिधि में जाने के बाद अनुमानतः काल और स्थान के आयाम लुप्त हो जाते हैं, किंतु निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि उनमें जाने के बाद कोई लौटा नहीं।

समय के आरपार :– यह खोज बहुत पुरानी नहीं है कि ब्रह्मांडीय यात्रा के संदर्भ में समय और स्थान की हमारी अवधारणा का तरलीकरण, बल्कि व्यतिक्रम तक हो जाता है। इसका ज्ञान तब हुआ जब आइंस्टाइन ने 1915 में सापेक्षता सिद्धांत प्रतिपादित किया।

इसका लघु रूप पृथ्वी पर लम्बी यात्रा में भी नज़र आ जाता है। गोल होने से उसकी सतह त्रि–आयामी है, तीन आयामों में से गोलाई का आयाम साधारणतः नहीं दिखता। जब हम किसी दिशा में चलते हैं, सीधे न जाकर नीचे या ऊपर भी जा रहे होते हैं। इसीलिए आकाश में हवाई मार्ग सीधे न होकर गोलाई लिए हुए होते हैं।

आइंस्टाइन को 1905 में ही यह बोध हो गया था कि स्थान और समय परस्पर जुड़े हुए हैं। किसी घटना का स्थान बताते समय हम केवल तीन आयामों का ज़िक्र करते हैं––दिशा, दूरी और समुद्र से ऊँचाई। समय और कुछ नहीं, चौथा आयाम है। इसीलिए अंतरिक्ष के किसी बिंदु के बारे में सोचते समय हमें समय और स्थान दोनों के बारे में एक साथ सोचना अनिवार्य हो जाता है। इसी युग्म को आकाश–समय (space-time) कहते हैं। आश्चर्य है कि संस्कृत में 'दिक्काल' शब्द का प्रयोग सहज रूप से होता रहा है। दो व्यक्तियों द्वारा किसी आकाशीय घटना को एक ही समय घटित तभी बताया जा सकता है जब दोनों व्यक्ति स्थिर हों। जब वे एक–दूसरे के संदर्भ में गतिमान हों, दोनों के लिए घटना का समय अलग–अलग हो जाएगा। अंतरिक्ष में दूरियाँ इतनी हैं कि उसमें एक बिंदु से दूसरे बिंदु की यात्रा में लगनेवाले समय का कोई अर्थ नहीं रह जाता। यह विचलन केवल उस स्थिति में नहीं होगा जब हम प्रकाश से तेज़ चलनेवाले अंतरिक्ष–यान से यात्रा करें। यदि हमारा यान प्रकाश से अधिक तीव्र गति से नहीं चलता, पृथ्वी से आकाशगंगा के (अपने सूर्य के अतिरिक्त) निकटतम तारे की यात्रा में जाने–आने का समय कम से कम आठ साल होगा। और यदि आकाशगंगा के केंद्र में स्थित तारे तक जाने–आने की यात्रा करें तो 50,000 साल लग जायेंगे, जब कि हमें पूरी यात्रा कुछ ही सालों में पूरी करने का एहसास होगा। पर लौटने पर हम पायेंगे कि जिनको भी हम जानते थे सब जाने कब मर–खपकर इतिहास बन चुके और भुला भी दिये गये।

सापेक्षता सिद्धांत और क्वांटम भौतिकी में अनिश्चितता का सिद्धांत :– आइंस्टाइन ने 1915 में सामान्य सापेक्षता के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस सिद्धांत के अनुसार समय और स्थान में निहित द्रव्यों के गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से उनके बीच यात्रा करने में आकाश–समय का तरलीकरण या विचलन हो जाता है। प्रयोंगों से सिद्ध हो गया कि आइंस्टाइन के गुरुत्वाकर्षण–सम्बंधी सिद्धांत ने न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण–जन्य गति के नियमों की कई गुत्थियाँ सुलझा दीं। उससे गुरुत्वाकर्षणीय तरंगों, आकाश–समय पर गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव और बुध जैसे कुछ ग्रहों की कक्षा में स्वल्प अनियमितताओं की व्याख्या हो गई। आधुनिक अंतरिक्ष–भौतिकी के लिए यह सिद्धांत एक अहम औज़ार के रूप में सामने आय। इससे कृष्ण विवरों कुछ आकाशीय खित्तों में गुरुत्वाकर्षण की सघनता से वहाँ प्रकाश तक की पहुँच न होने और कुछ आकाशीय पिंडों से निकलनेवाले अतिशय विकिरण का कारण गम्य हो गया, किंतु आइंस्टाइन के सामान्य सापेक्षता सिद्धांत का क्वांटम भौतिकी के नियमों से संगतीकरण और क्वांटम गुरुत्वाकर्षण के अपने आप में सुसंगत सिद्धांत का प्रतिपादन अभी शेष है।

अब क्वांटम सिद्धांत में निहित उन अनिश्चितताओं का एक जायज़ा ले लिया जाय जिन्होंने वैज्ञानकों को वेदांत की ओर उन्मुख किया। क्वांटम ब्रह्मांड ने भौतिकी की अनेक धारणाओं को खंडितकर उसकी निश्चितताओं और आश्वस्तियों को तार–तार कर दिया। सम्पूर्ण ब्रह्मांड–जड़, चेतन और ख़ाली आकाश–एक जैसे गतिमान और ऊर्ज्वस्वित लघु कणों से व्याप्त है जो कण और ऊर्जा साथ–साथ हैं। और आश्चर्य यह कि पूरे ब्रह्मांड की समेकित ऊर्जा शून्य है। इस आधार पर इस संभावना पर काम चल रहा है कि हर कण के क्वांटम क्षेत्र का स्रोत पूरे ब्रह्मांड में व्याप्त कोई बुनियादी, एकल क्वांटम क्षेत्र हो और ब्रह्मांड के सभी सूक्ष्म कण परस्पर गुँथे हुए हों। विद्युत्चुम्बकीय विकिरण अविभाज्य ऊर्जाखंडो (क्वांटा) में होता है जिन्हें फ़ोटॉन का नाम दिया गया है। वैज्ञानिकों ने प्रयोगशाला में लैज़र किरणपुंज (Beam) का प्रयोग कर एक ख़ास तरह के क्रिस्टल से दो समानधर्मा फ़ोटॉन उत्पन्न किए और उन्हें दो भिन्न दिशाओं में अग्रसर कर दिया। इस तरह के समानधर्मा फ़ोटॉनों को भौतिक रूप से गुँथे हुए (Entangled) क्वांटम कहते हैं। जब इनमें से एक फ़ोटॉन के किसी गुण का मापन किया गया तो दूसरे फ़ोटॉन ने स्वतः उसके पूरक गुण को व्यक्त कर दिया। दोनों फ़ोटॉनों के बीच लम्बी दूरी होने के बावजूद दोनों गुणात्मक रूप से ही नहीं, क्रियात्मक रूप से भी गुँथे हुए पाये गए। और यह दूरी ब्राह्मांडीय दूरियों, यानी प्रकाश की गति का अतिक्रमण कर सकती है। यह दूरसंवहन (Tele-Portation) का क्वांटम प्रतिफल है जो इंगित करता है कि सभी क्वांटम क्षेत्र परस्पर गुंथे हुए हैं, जिसका एक ही निहितार्थ हो सकता है, कि सभी का स्रोत एक एकीकृ त क्वांटम क्षेत्र है जो ब्रह्मांड की बुनियादी वास्तविकता है।

इस बिंदु पर मानव चेतना की प्रकृति और ब्रह्मांडीय प्रकृति के अतर्संबंध का एक विहंगावलोकन प्रासंगिक होगा।

भौतिकी में नोबल पुरस्कार से सम्मानित आइरिश आस्ट्रियाई भौतिकशास्त्री एरविन श्रेन्दिगर (Erwin Schrodinger, 1887–1961) क्वांटम भौतिकी के पाश्चात्य वैज्ञानिकों के उस समूह के प्रतिनिधि माने जा सकते हैं जिन्होंने क्वांटक भौतिकी के विकास में बहुमूल्य काम करने के साथ–साथ उसकी बोधगम्यता के लिए मानव–चेतना की समांतर वास्तविकता को अकाट्य पाया और भारतीय उपनिषदों के ज्ञान का उल्लेख करते हुए उसमें निहित चेतना और पदार्थ के अद्वैत के प्रति आदर व्यक्त किया।

श्रोन्दिगर ने 1922 में लिखे अपने एक शोधपत्र में वर्णक्रमीय (Spectral) रेखाओं के संदर्भ में सापेक्षी डॉप्लर प्रभाव (जब इलेक्ट्रोन–तरंग का निरीक्षक उसके स्रोत की ओर बढ़ता है, तो उसी के सापेक्ष तरंग की आवृत्ति भी बढ़ती जाती है) पर एक समीकरण विकसित किया जो प्रकाशी क्वांटा और ऊर्जा तथा उसके संवेग पर आधारित था। यह समीकरण उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसी वर्ष उन्होंने अपने दूसरे शोधपत्र में परमाणु के भीतर इलेक्ट्रोन कक्षा (Orbit) का रेखागणितीय दृष्टि से विश्लेषण किया जो आगे चलकर तरंग यांत्रिकी की महत्वपूर्ण विशेषताओं के निर्धारण में सहायक सिद्ध हुआ। सांख्यिकीय यांत्रिकी (Statistical Mechanics), ऊष्मा–गतिकी (Thermodynamics), वैद्युत्–गतिकी (Electrodynamics), सामान्य सापेक्षता (ळमदमतंस त्मसंजपअपजल), अंतरिक्ष विज्ञान (Cosmology), एकीकृत क्वांटम क्षेत्र सिद्धांत (Unified

Quantum Field Theory) और (रंगों के अवबोध पर आधारित) मनोवैज्ञान के रंग–सिद्धांत (Colour Theory) पर उनका काम अप्रतिम है। उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें और शोधपत्र लिखे हैं। इसके अतिरिक्त अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'जीवन क्या है?' (What is Life) में श्रोन्दिगर ने आनुवंशिकी (Genetics) और जैवीय परिघटना (Phenomenon of Life) को भौतिकशास्त्र की दृष्टि से परखा और विज्ञान के दार्शनिक पक्ष पर विचार करते हुए, प्राचीन, पौर्वत्य दार्शनिकों एवं नैतिक अवधारणाओं को स्वीकार्य पाया।

श्रोन्दिगर आर्थर शोपेनहाउअर (Arthur Shopenhauer) और बरुच स्पीनोज़ा (Baruch Spinoza) के दर्शन से प्रभावित थे। वस्तुतः शोपेनहाउअर ने ही उन्हें भारतीय दर्शन, विशेषकर उपनिषदों और अद्वैत वेदांत से परिचित कराया था। श्रोन्दिगर ने मस्तिष्क और पदार्थ (Mind and Matter) विषय पर दिये गए अपने एक व्याख्यान में कहा, "स्थान और समय के आरपार फैला संसार हमारी ही अनुकृति है (यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे?)... यदि संसार वस्तुतः हमारे निरीक्षण–कर्म पर आधारित है तो अरबों संसार होने चाहिए– हम सब का एक– एक संसार। लेकिन ऐसा कैसे हुआ कि हमारा और आपका संसार वही है, एक ही है... वह क्या है जो इन सभी संसारों को एक–दूसरे के समतुल्य बनाता है?" आगे श्रोन्दिगर ने औपनिषद महावाक्य 'तत्वमसि' के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए कहा, "आप अपने को ज़मीन पर सीधे फेंक सकते हैं, पृथ्वी माता पर लेट सकते हैं, इस दृढ़ विश्वास के साथ कि आप उनके साथ हैं और वे आपके साथ हैं। श्रोन्दिगर ने निष्कर्ष दिया, "चेतना की व्याख्या भौतिक शब्दावली में नहीं हो सकती क्योंकि चेतना निरपेक्ष रूप से (Absolutely) मूलभूत (Fundamental) सत्ता है। किसी भी इतर संदर्भ से इसकी व्याख्या नहीं हो सकती।"

श्रोन्दिगर के इन्हीं शब्दों के साथ शायद हम मान सकते हैं कि क्वांटम यांत्रिकी के कंटकाकीर्ण पथ का अंत हुआ और आगे वह हमवार ज़मीन है जिस पर हम कपिल और उनके सर्वांग पूरक शंकर का स्वागत कर सकते हैं, किंतु कपिल और शंकर ही नहीं, नये–नये रंग भरती एक पूरी परंपरा है, जिसमें कबीर हैं, मौलवी रूमी हैं, अनलहक़ का घोष कर अपनी गर्दन कटवाने वाले वली मंसूर हैं, मिर्ज़ा ग़ालिब हैं और हैं अनेक सूफ़ी संत जिन्होंने अपनी प्रतीति के लिये ज़ान की बाज़ी लगा दी। दुनिया जैसी है, मुक्त चिंतन और पूर्ण पारदर्शिता का आत्यंतिक मूल्य मांगती है।

4 – ब्रह्मांड की मानव-केंद्रीयता का सिद्धांत (Anthropic Principle)

पिछली क़िस्त में हम ब्रह्मांडीय प्रकृति की विज्ञान–प्रसूत क्वांटम 'माया' से साक्षात्कार तथा पदार्थ एवं ऊर्जा के एकत्व के एहसास के बाद श्रोन्दिगर के साथ अद्वैत वेदांत की ओर अभिमुख हुए थे। (क्वांटम के साथ माया का शब्द–युग्म नया ज़रुर है किंतु इसमें निहित विचार शीर्ष वैज्ञानिकों का है।) नोबल पुरस्कार–सम्मानित डेनमार्क के भौतिकशास्त्री नील्ज़ बॉ (Neils Bohr, 1885–1962) का एक चुटकुला–नुमा कथन प्रसिद्ध है– 'अगर कोई व्यक्ति कहता है कि उसके दिमाग़ में चक्कर आये बिना वह क्वांटम भौतिकी के बारे में सोच सकता है, तो इससे यही ज़ाहिर होता है कि उसने इसका कुछ भी नहीं समझा (If anybody says he can think about quantum physics without getting giddy, that only shows he has not understood the first thing about it.)

तो उपाय क्या है? इस संदर्भ में ब्रिटिश अमेरिकन भौतिकशास्त्री और गणितज्ञ फ़्रीमैन डाइसन (Freeman Dyson, 1923–2020) की एक अर्थगर्भित उक्ति है– 'किसी न किसी रूप में ब्रह्मांड को पता रहा होगा कि हम (मनुष्यगण) आनेवाले हैं (The universe in some sense must have known that we are coming)।" मतलब तो यही हुआ कि ब्रह्मांड की रचना इस तरह हुई है कि उसे मनुष्य और केवल मनुष्य समझ सकता है। दूसरे शब्दों में ब्रह्मांड अपनी रचना और प्रकृति में मानव–केंद्रित (Anthropic) है, उसके पीछे एक प्रबुद्ध योजना है।

नोबल पुरस्कार से सम्मानित हंगेरियन भौतिकशास्त्री यूजीन विग्नर (Eugene Wigner, 1902–1995) का प्रसिद्ध कथन है– 'प्रमुख बात यह है कि हमारी चेतना और विचार–प्रक्रिया मूलभूत अवधारणाएँ हैं,

दरअसल बाह्य जगत् हमारी चेतना का धारित (Content) है, और इसलिए (उसे समझने में) चेतना (की भूमिका) को नकारा नहीं जा सकता।' यह कथन शांकर दर्शन के कितना निकट है! अमेरिकन भौतिकशास्त्री ओक जॉन ह्वीलर (John Wheeler, 1911–2008) ने क्वांटम भौतिकी के विस्तृत अध्ययन के बाद कहा था, 'यह अकाट्य है कि प्रेक्षक (Observer) उत्पत्ति (की प्रक्रिया) का सहभागी होता है... क्वांटम भौतिकी इसका प्रमाण है कि वास्तविकता की किसी भी उपयोगी अवधारणा को परिभाषित करने में हमें प्रेक्षक की अपरिहार्य भूमिका को ध्यान में रखना होता है।'

नोबल पुरस्कार से सम्मानित ब्रिटिश भौतिकशास्त्री, गणितज्ञ और वैज्ञानिक दार्शनिक रोज़र पेनरोज़ (Roger Penrose, जन्मः 8 अगस्त 1931; आयु 94 वर्ष) ने मानव–मस्तिष्क की संरचना के बारे में एक अति महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष दिया है। उनके अनुसार मानव–मस्तिष्क की सर्वोत्कृष्ट परतों में क्वांटम–संसक्त अवस्था (Quantum Coherent State) चिपकी हुई है। एक ख़ास तरह की क्वांटम–संसक्ति बड़े स्तर पर मस्तिष्क के काफ़ी हिस्सों में काम करती है। पीछे हमने देखा था कि इलेक्ट्रॉन में विद्युत्चुम्बकीय विकरण को आत्मसात् और विकीर्ण करने की प्रक्रिया निरंतर नहीं चलती, यह अविभाज्य ऊर्जा–खंडों (क्वांटा) में होती है, जिसे क्वांटम–उछाल (Quantum Leap) कहते हैं। इसी के समांतर निद्रा में जाने से ठीक पहले का क्षण हमें कभी याद नहीं आता। तो हमारी चेतना में भी क्वांटम–उछाल का तत्व उसी तरह काम करता है जैसे परमाणु के भीतर इलेक्ट्रॉन में।

वस्तुतः क्वांटम सिद्धांत के विकास ने हमारे अकादमिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण में आमूल परिवर्तन ला दिया है। क्वांटम प्रयोगों में प्रयोगकर्ता की चेतना समान रूप से संभाव्य समांतर परिणामों में से किसी एक के चयन को प्रभावित करती है। इस तरह प्रेक्षक और प्रेक्षित बुनियादी स्तर पर जुड़ जाते हैं और उनमें सहभागिता का सम्बंध बन जाता है।

चेतन मनुष्य क्या है? इस ब्रह्मांड (जड़+चेतन+रिक्त आकाश) का एक अविभाज्य अंश? किंतु एक अनूठा और अनन्य अंश। मानव चेतना का एक अंतर्निहित गुण यह है कि उसमें जानने की अपरिमित एषणा अंतर्निहित है। वह स्वयं को और विश्व के हर अज्ञात को जान लेना चाहती है। यह चेतना के पदार्थ से उत्पन्न होने के बावजूद पदार्थ की समानधर्मा होने का लक्षण तो नहीं हुआ। पदार्थ से उत्पन्न चेतना में शरीर के भरण–पोषण और आराम–ऐश्वर्य की जैविक चाहत से परे ज्ञान के लिए ज्ञान की पिपासा क्यों ? फिर क्वांटम सिद्धांत के अनुसार मनुष्य का हर अवयव, उसके शरीर की हर कोशिका उन्हीं सूक्ष्म कणों से निर्मित हैं जो ऊर्जा के क्वांटम क्षेत्र की उपज हैं और वह क्वांटम क्षेत्र ब्रह्मांड के एकीकृत क्वांटक क्षेत्र से जुड़ा हुआ है। उसमें ऊर्जा एवं कण के गुण एक साथ हैं और वह निरंतर गतिशील है तथा ब्रह्मांड के एकीकृत क्वांटम क्षेत्र का सर्वस्व उसमें मौजूद है। यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे (चरक संहिता?)।

इसके अतिरिक्त मानव–चेतना के गुणों और संभावनाओं में काफ़ी हद तक एकरूपता के बावजूद हर मनुष्य की चेतना अन्य सभी मनुष्यों की चेतना से किसी न किसी अर्थ में भिन्न होती है, वैसे ही जैसे उसका रूपाकार अन्य मनुष्यों के रूपाकार से किसी न किसी अर्थ में भिन्न होता है। कारण, उसकी हर कोशिका में उसका ख़ास जीन–समुच्चय (Genome) मौजूद होता है जिसे लेकर वह पैदा होता है और जो मृत्य–पर्यन्त उसे परिचालित करता है। जीनोम क्या है, क्या वह महज़ पदार्थ है? नहीं, जीनोम वह ख़ाका (Blueprint) है जो मानव शरीर और मानव चेतना के विकास को एक ख़ास अनुपात में बनाये रखते हुए उसकी मूलभूत क्रियाओं और भौतिक अस्तित्व को नियमित–संचालित करता है। अपने भिन्न–भिन्न जीनोम के साथ हम सभी क्वांटम क्षेत्र की मारफ़त ब्रह्मांड से और उसके चलते परस्पर भी जुड़े हुये हैं। और शंकर के अद्वैतवाद का निहितार्थ भी यही है।

क्वांटम सिद्धांत के संदर्भ में नौ प्राचीन भारतीय दर्शनों में कपिल के निरीश्वर सांख्य और शंकर के अद्वैत वेदांत को एक साथ क्यों चुना गया? दोनों ही दर्शन किसी भी तरह के अतर्क्यवाद और मतांधता से मुक्त हैं, संसार को तथ्यात्मक मानते हैं, मानव–चेतना से पृथक् किसी सर्वशक्तिमान, मानव–तुल्य ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं करते। ऐसा ईश्वर जो मनुष्य की भाँति अभ्यर्थना से खुश होकर पुरस्कृत करता है और

विमुखता से रुष्ट होकर दंड देता है, दोनों के लिए अनजान है। कपिल और शंकर दोनों ही अवतारों–सहित देवी–देवताओं, स्वर्ग–नर्क की अवधारणाओं पर आधृत नहीं हैं। पूजा–पाठ, विधि–विधान से निरपेक्ष हैं। मनुष्य को अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं चुनना और स्वयं उस पर चलना है। क्वांटम भौतिकी के कई वैज्ञानिकों की तरह दोनों मानव–चेतना को वास्तविक और बुनियादी सत्ता मानते हैं जो प्रकृत्या स्वतंत्र है, निर्णय लेती है और भौतिक पदार्थों के अवांछित प्रभाव से मुक्त होने की संभावना से संगर्भित है।

मेरी अल्प मति में कपिल के सांख्य और शंकर के अद्वैत वेदांत में कोई तात्विक अंतर नहीं है। दोनों का मार्ग मानव–चेतना के उन्नयन का मार्ग है। कपिल के दर्शन में इस मार्ग का लक्ष्य त्रिगुणमयी, जड़ प्रकृ ति के बंधन से मुक्त, शुद्ध चेतन पुरुष (मनुष्य) का अपने वास्तविक स्वरूप में अवस्थित होना या कैवल्य (एकत्व) प्राप्त करना है। शंकर में यह लक्ष्य आत्मस्वरूप का अवबोध है, जो विश्व–स्वरूप भी है, जिसमें नानात्व की प्रतीति ख़त्म हो जाती है और एकमात्र वास्तविक सत्ता अद्वैत (ब्रह्म, जिसे कोई भी नाम, जैसे ग्, दे सकते हैं) का बोध हो जाता है। वह वास्तविक सत्ता सर्वव्यापी है, अनादि और अनन्त है– एकीकृत क्वांटम क्षेत्र की तरह। अकारण नहीं कि कपिल के सांख्य को निरीश्वर सांख्य और शंकर को प्रच्छन्न बौद्ध कहा गया। दोनों का साध्य आत्मबोध है, किंतु ऐसा आत्मबोध जो तर्क का अविरोधी है। बुद्धि और तर्क साध्य को इंगित करते हैं किंतु साध्य की सिद्धि अवबोध से ही होती है। अवबोध का साधन मोटे तौर पर वही है जो पतंजलि द्वारा निर्धारित अष्टांग योग का हैकृयम, नियम. आसन, प्राणायम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि (पातंजल योगसूत्र, 2:29)।

जैसा कि पहले आ चुका है, कपिल में पुरुष का शुद्ध चेतन स्वरूप उसका अर्जित गुण नहीं, सहज स्वभाव है, जो जड़ प्रकृति के संसर्ग से विरूपित हो जाता है। यहाँ यह स्पष्ट कर दिया जाए कि शुद्ध चेतन पुरुष मन तथा इंद्रियों से भिन्न है। कपिल में मन और इंद्रियाँ प्रकृति के ही अंश हैं जो प्रकृति के त्रिगुणों के प्रभाव में रहते हैं। शुद्ध चेतन पुरुष नित्य है। यह स्वयं न कुछ करता है, न उसमें कोई परिवर्तन होता है। वह बस जगत् के व्यापार का अवलोकन करता है। प्रकृति के परिणामों का भोक्ता पुरुष प्रत्येक जीव के शरीर में अभिविनिष्ट है। भोक्ता पुरुष अनेक हैं किंतु शुद्ध चेतन पुरुष एकल अवधारणा है– मानव–जीवन का आदर्श, जिसे प्राप्त करना हर व्यक्ति का इष्ट है। जड़ किंतु त्रिगुणमयी (सत्व, रज और तम से अनुस्यूत) प्रकृति ही संसार का आदि कारण है। प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र प्रकृति के इन्हीं तीन गुणों के अनुपात और उनकी अंतःप्रक्रिया का परिणाम है। पुरुष की तरह प्रकृति भी नित्य है किंतु यह निरंतर परिवर्तनशील है। यही सुख–दुःख की कारक है। इस अनिश्चयात्मक स्थिति से मुक्त होकर शुद्ध चेतन पुरुष की सुखदुःखातीत साम्यावस्था प्राप्त करना ही मानव जीवन का लक्ष्य है।

दोनों दार्शनिक बाह्य संसार की सत्ता को स्वीकार करते हैं। इस संसार की गति और प्रकृति को, उसमें छिपी शक्तियों को समझने और उनका उपयोग करने की ओर उन्मुख विज्ञानवाद से उनका कोई विरोध नहीं। किंतु संसार परिवर्तनशील है, इसमें हर वस्तु नाशवान् है। यह अंतिम सत्य नहीं हो सकता। दोनों मानते हैं कि संसार कार्य–कारण सम्बंध से परिचालित होता है जिसे दर्शन में सत्कार्यवाद कहा जाता है। सत्कार्यवाद आनुषंगिक भेद के साथ बौद्ध दर्शन के प्रतीत्यसमुत्पाद (पाली में पतिच्चसमुप्पाद) की अवधारणा से भी मेल खाता है। मिट्टी से बना घड़ा अंततः मिट्टी ही है। वस्त्र अपने धागों से अलग नहीं है और धागे कपास की रुई से अलग नहीं है।

शंकर के अनुसार कपिल के सत्कार्यवाद में एक स्खलन है। वे कार्य और कारण यानी परिणाम को भिन्न मान लेते हैं जबकि कार्य महज़ एक प्रतीति, एक भ्रम, एक विवर्त है; हर कार्य तत्वतः कारण ही है। इस तरह, शंकर के अनुसार कपिल का सत्कार्यवाद दरअसल सत्कार्यवाद न रहकर परिणामवाद में अंतरित हो जाता है। इसके विपरीत शंकर का सत्कार्यवाद विवर्तवाद में ले जाता है। शंकर के अनुसार प्रकृति के व्यापार का एक आदि कारण होना चाहिए जिसे सत्कार्यवाद के अनुसार पूरी सृष्टि के व्यापार में व्याप्त होना चाहिए। और उसी को मूलभूत सत्य होना चाहिए। शंकर का आदि कारण क्या है?

कोई वस्तु शून्य से उत्पन्न नहीं हो सकती। इसलिए आदि कारण को नित्य होना चाहिए। वह आदि कारण विश्व–चेतना ही हो सकती है जो मानव चेतना में प्रतिबिम्बित होती है। वह पदार्थ से भिन्न है, कार्य–कारण शृंखला के नाते पदार्थ से आवृत हो जाती है, ढक उठती है। इस आवरण का और उससे आवृत चेतना का बोध ही अद्वैत का बोध है, वही आत्मज्ञान है– अयम् आत्मा ब्रह्म। वही ब्रह्मज्ञान भी है– प्रज्ञानं ब्रह्म।

कपिल जिसे शुद्ध चेतन पुरुष का आत्मस्वरूप में अवस्थित होना कहते हैं– वह शंकर के आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान से तात्विक रूप से भिन्न कहाँ है? और दोनों का क्वांटम सिद्धान्त के एकीकृत क्वांटम क्षेत्र से कितना कम फ़ासला है? जो है, वह भी ख़त्म हो जाएगा। होना ही है।

कहा गया है कि आत्मज्ञान में शुद्ध चेतना वस्तु को नकारती नहीं, उसके परे चली जाती है (उसे Transcend करती है)। वस्तुजगत मिथ्या नहीं, वह चेतना का युगपत् है, दोनों साथ–साथ हैं, किंतु वस्तुजगत् अनित्य (नाशवान्) है, इसलिए सतत परिवर्तनशील है, वह माया–शबल है, माया की वजह से चितकबरा लगता है। जैसा कि विवेकानंद जी ने कहा, माया मिथ्या नहीं, तथ्यात्मक कथन (Statement Of Fact) है, किंतु अमोघ सत्य तथ्य से परे है। वह स्थानातीत है– कण–कण में व्याप्त है। कालातीत है– भूत, भविष्य, वर्तमान सभी में व्याप्त है। अनिर्वचनीय है– वाणी, शब्द और भाषा से परे है। साधारण ज्ञान के लिए ज्ञाता और ज्ञेय का पार्थक्य ज़रूरी है किंतु आत्मज्ञान वह अवस्था है जिसमें ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान एक हो जाते हैं। रहीम का पद है– बिंदु में सिंधु समाना, को अचरज कासे कहौं हेरनहार हेराना (हेरनहार–द्रष्टा या ज्ञाता)।

कपिल और शंकर में एक अहम भेद अवश्य है। कपिल में शुद्ध चेतन की अपने स्वरूप में अवस्थिति दुख–सुःख दोनों से निरपेक्ष कर देती है क्योंकि दुःख सुख दोनों मिश्रित हैं, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, बिना सुख से निरपेक्ष हुए दुःख से निरपेक्ष नहीं हुआ जा सकता। इसके बरअक्स शंकर में आत्मज्ञान की अवस्था सत्, चित्, आनंद की है, जो उसके गुण नहीं, स्वभाव हैं और युगपत् स्वभाव हैं। जो सत् है, वही चित् है और वही आनंद है। सत् माने त्रिकालाबाधित सत्य। चित् माने प्रत्यक्ष ज्ञान जो वैज्ञानिकता का सूचक है। दोनों की सहज परिणति है आनंद (Bliss)। भारतीय दर्शन परम्परा में इस पर काफ़ी विमर्श हुआ है कि जीवन्मुक्ति की अवस्था सुख़–दुख़ से परे है अथवा केवल सुखाश्रयी है। क्या इन दोनों दर्शनों ने अतीन्द्रिय ज्ञान के लिए कोई स्पेस छोड़ा है? जब कबीर ने कहा– ('एक कहूँ तो है नहीं, दो कहूँ तो गारि /है जैसा तैसा रहे, रहे कबीर विचारि'।।) वे किस दुविधा की बात कर रहे थे? 'उसे' एक नहीं कह सकता क्योंकि एक कहते ही वह स्व से भिन्न हो जाएगा (आत्मज्ञान में ज्ञाता ज्ञेय से पृथक् नहीं हो सकता)। दो कह नहीं सकता, क्योंकि उसके समांतर दूसरी सत्ता को खड़ी करना उसके लिए गाली हो जायेगी। कबीर विचार करके कहते हैं, वह जैसा है वैसा ही रहे। वस्तुतः वह न एक है, न दो, वह है अद्वैत। बहुत सोचकर शंकर ने यह शब्द चुना है... कबीर पढ़े–लिखे नहीं थे। तो अद्वैतवाद का मूलतत्व उन्हें कहाँ से मिला होगा? वही अतींद्रिय बोध।

अतींद्रिय ज्ञान का कोई सर्वमान्य प्रमाण नहीं हो सकता। समाज में ऐसे प्रसंग ज़रूर देखे–सुने गए हैं जहाँ पूर्ण विश्वसनीय व्यक्तियों के अतीन्द्रिय ज्ञान का प्रतिफल वैसे ही पूर्ण विश्वसनीय व्यक्तियों के सामने आया है। पहले की मेरी एक पोस्ट में तिवारी जी के सामने एक आचार्य द्वारा मूक प्रश्नों का सही उत्तर देने का प्रसंग आता है। विशेष बात यह कि क्वांटम सिद्धांत के अनुसार इसकी व्याख्या हो सकती है। मनुष्य की चेतना की संभावनाएँ अनंत हैं। समय महज़ एक आयाम है जिसकी अनुभूति हमें भूत, भविष्य, वर्तमान के त्रिखंड में होती है जो हमारी मानसिक सीमा का परिणाम है, किन्तु चूंकि सूक्ष्म कणों के क्वांटम फ़ील्ड हर व्यक्ति में एक ही तरह से काम करते हैं और वे एकीकृत क्वांटम फ़ील्ड से जुड़े हुए हैं, चेतना के अनुशासन की किसी प्रविधि से दूसरे की जिज्ञासा और संकल्प को जान लेने की क्षमता को पूर्णतः ख़ारिज़ नहीं किया जा सकता। चूँकि एकीकृत क्वांटम फ़ील्ड स्थानातीत और कालातीत हैं, भविष्य में होनेवाले घटित को जानने का भी कोई अनुशासन हो सकता है। किंतु इतना तो निश्चित है कि भारतीय परंपरा के अनुसार धंधे के रूप में अपना लेने पर ये 'सिद्धियाँ' अनिष्टकारी होती हैं, उपर्युक्त आचार्य के भ्राता के साथ भी ऐसा ही हुआ था।

क्वांटम फ़ील्ड सिद्धांत इस तरह के कामों में लिप्ति का लक्ष्य और तज्जन्य मानसिकता के माध्यम से चेतना की इस असामान्य क्षमता को भी प्रभावित कर देता है।

सवाल उठता है, क्या एक बार आत्मज्ञान और शुद्ध चेतन का बोध हो जाने के बाद मनुष्य उसी बोध में सतत क़ायम रह सकता है? कभी न कभी उसे कर्मजगत् में उतरना ही पड़ेगा। शंकर के जीवन के बारे में विश्वनीय सामग्री न के बराबर है। उनका जीवनकाल और आयु भी निर्विवाद नहीं है। जनश्रुतियों के अनुसार उन्होंने महज़ 32 वर्ष की आयु पायी थी। और प्रस्थानत्रयी के भाष्य के अलावा उन्होंने लोककल्याण की भावना से भारत के कोने–कोने में भ्रमण करते हुए चार पीठों की स्थापना की और चार धाम की यात्रा को प्रतिष्ठा दिलाई। इन्हीं स्रोतों के अनुसार उन्होंने कई स्तोत्रों की भी रचना की जिनमें सौंदर्यलहरी साहित्यिक दृष्टि से असाधारण रूप से ललित और उत्कृष्ट है।

कपिल के जीवन के बारे में अपुष्ट स्रोतों के सिर्फ़ इतना ज्ञात है कि उनका जन्म द्वारका (गुजरात) के पास प्रभास क्षेत्र में हुआ था और वे छठी शताब्दी ई.पू. में सक्रिय रहे।

क्या एक बार शुद्ध चेतन स्वरूप में अवस्थित होने के बाद मनुष्य प्रकृति–व्यापार का केवल 'अवलोकन' करते हुए रह सकता है? मुंडक उपनिषद् के–

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यन्नन्यो अभिचाकशीति।' (3.1.1)

–से लिया गया यह आदर्श निश्चय ही लक्षणात्मक है। अनासक्त भाव से जीवनोपयोगी कार्य तो करने ही पड़ेंगे। कुछ विद्वानों के अनुसार उपर्युक्त दार्शनिक उपलब्धियों के बाद दोनों दार्शनिक कर्म–क्षेत्र में उतरे और लोकमंगल की दृष्टि तथा सर्वे भवंतु सुख़िनः की भावना से काम करते रहे। एक विद्वान के अनुसार शंकर की मान्यता थी कि शुद्ध मन से किया गया सत्कर्म आत्मज्ञान में बाधक नहीं, सहायक होता है।

स्व के विश्व में दिव्यांतरण के आदर्श के चलते अद्वैतवाद को सर्वोच्च नैतिकता का अकाट्य स्रोत माना जाता है, जिसमें विश्व कल्याण के लिए, निष्काम भाव और शुद्ध अंतःकरण से सत्कर्म करने का सार्वभौम नैतिक मूल्य अन्तर्निहित है।

मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना शाश्वत सत्य है, और वादे वादे जायते तत्वबोधः एक मानवीय सम्भावना।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।

'पुष्प और पत्थर की अभिलाषा'
देशभक्ति तथा मातृभूमि प्रेम का चरमोत्कर्ष

प्रो. हसमुख परमार*

हमारे भीतर भरे हुए सारे भाव, किसी विशेष पर्व–प्रसंग, संदर्भ–स्मरण यानी विशेष आधार–आलंबन मिलते ही जागृत होकर उठते–बढ़ते और हमारे द्वारा किसी न किसी माध्यम से व्यक्त होते हैं। देश के प्रति, मातृभूमि के प्रति गाढ़ा लगाव स्वाभाविक है, अतः उसकी स्वाधीनता व सुरक्षा की चिंता उतनी ही स्वाभाविक, किंतु उससे भी ज्यादा स्वाभाविक है अपने देश की स्वाधीनता व सुरक्षा के संघर्ष काल में, लम्बे संघर्ष और लडाई के बाद राष्ट्र को मिली आजादी को राष्ट्रीय पर्वों–त्यौहारों के दिन तथा अपने आत्म बलिदान से इन पर्वों–त्यौहारों का निमित्त बने सपूतों की जन्म व मृत्यु तिथियों के दिन इस देशभक्ति के जज़्बे का उफान तथा इसकी अभिव्यक्ति। और इसमें भी साहित्य के सर्जकों का तो ऐसे अवसरों पर देशप्रेम व राष्ट्रीय चेतना का स्वर बड़ा ही बुलंद होकर बड़ी प्रखरता से उनकी रचनाओं में प्रकट होता है।

वैसे साहित्य के नियमित पाठक होने के नाते कुछ कालजयी साहित्यिक रचनाओं का स्मरण तो किसी न किसी निमित्त होता ही रहता है, लेकिन कुछ खास अवसरों पर, उन अवसरों की मूल संवेदना से जुडी कुछ खास रचनाओं को विशेष रूप से याद करना, उनको गुनना तथा उन पर कुछ कहना–लिखना हमारा स्वभाव है और एक दायित्व भी। इस स्वभाव व दायित्व के चलते 15 अगस्त–स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर दो विशेष रचनाएँ–कविताएँ, एक हिन्दी की कालजयी रचना– माखनलाल चतुर्वेदी रचित 'पुष्प की अभिलाषा' तथा गुजराती के मूर्धन्य कवि 'दाद' की रचना 'घडवैया मारे ठाकोरजी नथी थावुं (घडवैया मुझे ठाकोर जी नहीं होना है) को याद करते हुए एक बार और इन रचनाओं के रचयिताओं की राष्ट्रीय भावना तथा रचनाओं की संवेदना से गुजरते हैं।

दोनों रचनाओं की भाषा अलग, दोनों का रचनाकाल अलग, दोनों के सृजन की पृष्ठभूमि अलग लेकिन दोनों रचनाओं का मूल स्वर और केन्द्रीय भाव एक है। देशभक्ति तथा मातृभूमि प्रेम का एक ऊँचा मानक प्रस्तुत करने वाली ये दोनों कविताएँ जिनमें माखनलाल चतुर्वेदी ने एक पुष्प के माध्यम से और 'कवि दाद' ने एक पत्थर के माध्यम से, और उनकी अभिलाषा में अपनी तथा हर देशभक्त की अभिलाषा को प्रकट करते हुए देशप्रेम तथा मातृभूमि के प्रति लगाव की एक उम्दा मिशाल प्रस्तुत की है।

देश व मातृभूमि के प्रति हमारी प्रेम भावना का एक महत्वपूर्ण पक्ष है जिसमें देश व मातृभूमि की रक्षा हेतु अपना आत्म बलिदान देने वाले वीरों का स्मरण कर उनके प्रति मान–सम्मान की तथा उनके लिए कुछ कर गुजरने की उदात्त भावना हम अपने भीतर कायम रखें। उक्त दोनों रचनाओं में यही बात विशेष रूप से प्रस्तुत की गई है।

'भारतीय आत्मा' के रूप में अपनी एक विशिष्ट पहचान रखने वाले माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा के प्रमुख हस्ताक्षर हैं। राष्ट्रीय भावना से सराबोर इस कृती व्यक्तित्व के जीवन का और उनके सृजन कर्म का महत् उद्देश्य था स्वाधीनता और राष्ट्रप्रेम। अतः उनके काव्य में राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना अत्यधिक पुष्ट रूप में अभिव्यक्त हुई है। उनका लेखन भारत के विराट मुक्ति आंदोलन का जीवंत दस्तावेज है। चतुर्वेदी जी की यह देशभक्ति काव्यसृजन तक ही मर्यादित नहीं रही बल्कि वे स्वयं स्वाधीनता आंदोलन में बतौर स्वतंत्रतासेनानी अपनी भूमिका का निर्वहण करते हुए कई बार जेल भी गए और वहाँ से भी अपनी कलम से स्वाधीनता की चाह व चेतना को जन–मन में फूँकते रहे। उनकी जिस अमर रचना 'पुष्प

***स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर, आणंद (गुजरात)।**

की अभिलाषा' का हम यहाँ विशेष स्मरण कर रहे हैं उसकी रचना भी उन्होंने 18 फरवरी 1922 को बिलासपुर जेल में की थी।

अपने राष्ट्रदेवता के प्रति, अपनी मातृभूमि के प्रति पूरी प्रतिबद्धता, निष्ठा व समर्पण भाव को कवि ने इस कविता में एक पुष्प की अभिलाषा के माध्यम से प्रस्तुत किया है। भारतभूमि पर खिले एक पुष्प में भारत की स्वतंत्रता की प्रबल इच्छा तथा स्वातंत्र्य संग्राम में अपने प्राणों से भी अधिक देश की चिंता करने वाले वीरों के प्रति वह भी अपने राष्ट्रधर्म को निभाने के लिए पूरी तरह तैयार है।

दरअसल फूलों की उपयोगिता को लेकर समाज में उसके महत्व को व्यक्ति–वस्तु की शोभा–सजावट, व्यक्ति व देवी–देवताओं के प्रति प्रेम तथा भक्ति, दिवंगत के प्रति अत्यंत भावपूर्ण श्रद्धांजलि प्रभृति के अंतर्गत देखा जाता है, किंतु यहाँ तो पुष्प को इस तरह के किसी काम में अपने उपयोग तथा प्राप्त महत्व की चाह बिल्कुल नहीं है–

चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी–माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर सर चढ़ूँ भाग्य पर इठलाऊँ,

इस तरह की चाह हो भी कैसे सकती है !? जब अपने देश का जन–जन और मातृभूमि का कण–कण सिर्फ और सिर्फ स्वतंत्रता की ही चाह रखता हो और वही उसका एक मात्र ध्येय हो। ऐसे समय में राष्ट्रीय भावना से पूर्णतया सराबोर कवि ह्रदय ....स्वाधीनता का प्रबल अभिलाषी और इस स्वाधीनता के महासंग्राम में अपने बलिदान के लिए तत्पर पुष्प की अभिलाषा तो है–

मुझे तोड देना वनमाली !
उस पथ में देना तुम फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक।

पद्मश्री दादूदान प्रतापदान गढ़वी (1940–2021) यानी गुजराती भाषा के 'कवि दाद', जिनका एक सर्जक के रूप में गुजराती काव्य तथा गुजराती फ़िल्मी गीत, साथ ही गुजराती लोक साहित्य तथा लोक गायकी में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उनके द्वारा रचित 'घडवैया मारे ठाकोर जी नथी थावुं' अर्थात् 'घडवैया मुझे ठाकोर जी नहीं होना है'। (घडवैया– निर्माता–निर्माणकर्ता और यहाँ विशेषतः वह शिल्पकार जो पत्थर को उसके उपयोग के अनुसार विविध आकार देता है) गुजराती साहित्य की खासकर राष्ट्रीय भावना–मातृभूमि प्रेम से ओतप्रोत रचनाओं की प्रथम पंक्ति की रचना है।

दरअसल यह एक शौर्यगीत है जिसके सृजन की पृष्ठभूमि को लेकर कहा जाता है कि ई.1962 के भारत–चीन युद्ध के दरमियान हमारे राष्ट्र की, हमारी भारतमाता की हिफ़ाजत के लिए दिन रात लड रहे, आत्म बलिदान दे रहे वीर योद्धाओं के शौर्य व पराक्रम का गान करने तथा उन शहीदों के आत्म बलिदान के प्रति जन मन में एक विशेष मान–सम्मान की भावना प्रकट हो उस उद्देश्य से यह गीत कवि 'दाद' ने लिखा। और एक तथ्य यह भी मिलता है कि उक्त विषय व संवेदना को लेकर इस गीत को लिखने का अनुरोध कवि दाद से गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र के नाट्यकार हेमु गढ़वी ने किया था।

हमने प्रारंभिक पंक्तियों में ही कहा है कि दोनों कविताओं ('पुष्प की अभिलाषा' और 'घडवैया मुझे ठाकोर जी नहीं होना है') के सर्जक, भाषा, सृजन काल तथा सृजन की पृष्ठभूमि अलग, परंतु दोनों रचनाओं की संवेदना और संदेश एक ही। और उसे प्रस्तुत करने का ढंग भी लगभग एक जैसा ही। माखनलाल जी जहाँ पुष्प की अभिलाषा के माध्यम से प्रस्तुत करते है तो कवि दाद उसे एक पत्थर की इच्छा बताते हुए।

वैसे देखें तो एक पत्थर के लिए उसका भगवान की मूर्ति बनकर मंदिर में स्थापित होना बड़े सौभाग्य व महिमा–महत्ता की बात है। किंतु यह भी न भूलें कि देवी–देवता व उनकी भक्ति जितना ही महत्व

है राष्ट्रदेवता का, मातृभूमि का। और कभी–कभी तो किसी विशेष स्थिति में राष्ट्रधर्म व मातृभूमि प्रेम सबसे बड़ा धर्म तथा सर्वोपरि भावना हो जाते है।

माखनलाल चतुर्वेदी द्वारा प्रस्तुत पुष्प की अभिलाषा की तरह यहाँ कवि दाद ने एक पत्थर की इच्छा व्यक्त की है। पत्थर अपनी इच्छा घडवैया के समक्ष रखते हुए कहता है कि मुझे ठाकोर जी नहीं यानी भगवान की मूर्ति होकर नहीं बल्कि पाळिया होकर पूजे जाने की इच्छा है। (पाळिया– देश–राष्ट्र–मातृभूमि –जन्मभूमि या किसी और के रक्षण हेतु लड़ते हुए शहीद हुए शूरवीरों की याद में बनाया गया पत्थर का स्मारक, जो गाँव व नगर के बाहर, गाँव–नगर के प्रवेश द्वार के आगे खुले मैदान–जगह में बनाया जाता है। यह शहीदों के शौर्य–पराक्रम– साहस–वीरता का प्रतीक होता है। यह 'पाळिया' विशेषतः गुजरात के सौराष्ट्र क्षेत्र में स्थापित हुए ज्यादा मिलते हैं) पत्थर की इच्छा देखिए–

धड धींगाणे जेना माथा मसाणे अेना पाळिया थइने पूजावुं
घडवैया मारे ठाकोर जी नथी थावुं....
होम हवन के जगन जापथी मारे नथी धरावुं
बेटडे बापना मोढां न भाळ्या अेवा कुमळा हाथे खंडावुं
घडवैया मारे
.....
धड जिसका युद्ध मैदान में मस्तक श्मशान में
उनका पाळयि बन पूजा जाऊँ
घडवैया...
घडवैया मुझे ठाकोर जी नहीं होना है।
होम–हवन या यज्ञ–जाप से मुझे नहीं होना तृप्त
जिस बेटे ने बाप का मुँह नहीं देखा उसके कोमल हाथ से जड़ा जाऊँ
घडवैया मुझे ठाकोर जी नहीं होना है।.....

ऐसे वीर जो युद्धभूमि में लडते हैं, लड़ते लड़ते उनके सिर कट जाते हैं लेकिन सिर कट जाने के बाद भी उनके धड लडते हैं, ऐसे किसी शूरवीर का पाळिया बनने की इच्छा है पत्थर की, नहीं कि ठाकोरजी की मूर्ति। तभी तो अपने को आकार देने वाले– अपने निर्माता–शिल्पकार को वह कहता है कि भगवान की मूर्ति नहीं शहीदों का पाळिया बनना है। पत्थर को उस ठाकोरजी की मूर्ति नहीं बनना जिसे पीले पीतांबर–रेशमी किमती वस्त्र व महँगे आभूषण पहनाये जाते हैं, उसे तरह तरह के भोग–चढावा, पूजापाठ, होम–हवन के साथ लोग पूजते हैं, पत्थर तो चाहता है कि युद्ध में वीरगति प्राप्त करने वाले किसी शूरवीर के नवजात शिशु के कोमल हाथों के स्पर्श से उस वीरयोद्धा के पाळिया रूप में स्थापित हो जिसे लोग उस वीर के शौर्य को याद कर उसके प्रति सम्मान का भाव प्रकट करते हैं।

☙★❧

ईश्वरीय संकल्पना एवं लोकजीवन में भक्ति की प्रसारता संबंधी अगौना के आलोचक का सैद्धांतिक अभिमत

डॉ. जितेन्द्र कुमार गिरि*

भक्ति, समाज अथवा व्यक्ति–विशेष के धार्मिक विश्वासों, ईश्वर संबंधी मान्यताओं तथा विश्वासों आदि के अनुरूप होती है, जबकि संदर्भित समाज अथवा व्यक्ति का धार्मिक विश्वास बहुत हद तक धर्म के स्वरूप, उसकी परम्पराओं, मान्यताओं, विश्वासों, पूजा पद्धतियों, भौगोलिक परिस्थितियों, ऐतिहासिक घटनाओं आदि पर आधारित होता है, अतः स्वाभाविक है कि प्रत्येक समाज या भौगोलिक क्षेत्र में भक्ति के स्वरूप और पद्धति में अनैक्य परिलक्षित होता हो। आधुनिक विज्ञान के सिद्धांतों के प्रवर्तन से पूर्व या फिर जगत् विषयक विज्ञान की सैद्धांतिक अथवा वैचारिक प्रतिस्थापनाओं की सीमा से आगे ब्रह्मांड में होने वाले प्रत्येक घटना–व्यापार या परिवर्तन के नियंत्रण–संचालन को अपरा अथवा पारलौकिक सत्ता से सम्बद्ध कर देने से ईश्वरीय संकल्पना का प्रादुर्भाव हुआ। आदिम युग में सृष्टि के जिस घटना–व्यापार की बोधगम्यता में मनुष्य की जिज्ञासिक वृत्ति का शमन नहीं हो पाया, जिन घटनाओं, परिवर्तनों का वास्तविक कार्य–कारण उसे ज्ञात नहीं हो सका, उसे वह किसी पारलौकिक सत्ता द्वारा नियंत्रित–संचालित मानने लगा। यहीं से दैवीय संकल्पना का जन्म हुआ। इस ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास मात्र से मनुष्य को परोक्षतः किसी कार्य को करने अथवा उसकी आवश्यकताओं, आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु उपयुक्त साहस, धैर्य, आत्मबल, आशा और विश्वास प्राप्त होने लगा। यद्यपि उसके कठिन से कठिनतम कार्य की सिद्धि उसके व्यक्तिगत साहस, धैर्य, आत्मबल आदि से हो रही थी लेकिन इसका सम्पूर्ण श्रेय उसने ईश्वर को दिया, जिससे कालांतर में ईश्वरीय संकल्पना और भी सुदृढ़ हुई। परम्परा, परिवेश, विश्वास, जनश्रुति आदि के आधार पर ईश्वर के अनेक स्वरूप प्रचलित हुए। इन बहुसंख्यक स्वरूपों में से किसी एक स्वरूप में विश्वास को धर्म कहा गया, जिसके अनंतर हिंदू, मुस्लिम, ईसाई, क्रिश्चियन, सिख आदि धर्मों का आविर्भाव हुआ। मनुष्य अपने धर्म में प्रचलित नियमों, सिद्धांतों, परम्पराओं तथा प्रक्रियाओं के माध्यम से ईश्वरीय अनुकम्पा प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगा, जिसके उपरांत पूजा–पाठ, अर्चना–उपासना की परम्परा प्रवर्तित हुई। इसी पूजा–पाठ, अर्चना–उपासना आदि की प्रक्रिया एवं पद्धति को समेकित रूप में भक्ति की संज्ञा प्रदान की गयी, जोकि धार्मिक विश्वास एवं क्रियाकलाप आदि के रूप में साधक भक्त द्वारा साध्य ईश्वर तक पहुँचने के लिए प्रयोग में लाया जाने वाला सर्वोत्तम साधन एवं सुगम मार्ग माना गया। क्योंकि ईश्वर के प्रति श्रद्धा प्रकट करने से तथा धर्म का पालन करते रहने से अप्रत्यक्षतः मनुष्य को एक तरह की आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती रहती है इसीलिए वह अपने धर्म से अंतर्संबंधित क्रियाकलापों–विश्वासों अर्थात् भक्ति के द्वारा उस असीम सत्ता के प्रति विश्वास प्रकट करता रहता है, जिसकी प्रक्रियागत बोधगम्यता (भक्ति संबंधी ज्ञान) उसे संबंधित धर्म के मूलधर्म ग्रंथों से प्राप्त होती है, दृष्टांततः सनातन हिंदू धर्म में ईश्वर की उपासना या भक्ति संबंधी पूजा–अर्चना व उपासना का विधान उपनिषदों, पुराणों, वेदों तथा रामायण और महाभारत आदि धर्म ग्रंथों में वर्णित–उल्लिखित सिद्धांतों एवं प्रक्रियाओं के सापेक्ष होता है।

भक्ति की प्रकृति का निर्धारण धार्मिक विश्वासों के द्वारा किया जाता है, जबकि धार्मिक विश्वास समाज के भौगोलिक परिवेश और इतिहास के अनुसार अलग–अलग होते हैं, इसलिए भक्ति के स्वरूप में भिन्नता स्वाभाविक है। यद्यपि प्रत्येक धार्मिक विश्वास अपने मूल धर्म से ही प्रादुर्भूत होते हैं, परंतु फिर भी इनमें आराध्य का नाम, स्वरूप, उनके पराक्रम, उनसे संबंधित, मान्यताएँ या विश्वास आदि मूलधर्म से सर्वथा पृथक भौगोलिक क्षेत्र–विशेष के प्राकृतिक पर्यावरण एवं सामाजिक परिवेश के सापेक्ष होते हैं अर्थात् धार्मिक प्रक्रिया के रूप में भक्ति की प्रकृति और पद्धति के निर्धारण में स्थानीय भौगोलिक विविधता के अतिरिक्त

*** स्वतंत्र लेखक, विचारक एवं मीमांसक, कुशभवनपुर (सुल्तानपुर) उ.प्र. पिन–227304।**

प्राकृतिक अनुकूलता–प्रतिकूलता का विशेष अवदान रहता है। इस तरह से कह सकते हैं कि किसी समाज में धार्मिक क्रियाकलाप के रूप में भक्ति अपने दो स्वरूपों में विद्यमान रहती है। इसकी पहली प्रकृति मूलधर्म ग्रंथों में वर्णित व्यवस्था–विधान के अनुरूप होती है, जैसे–हिन्दू धर्म के अंतर्गत आने वाले राम, हनुमान, शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती आदि देवी–देवताओं की भक्ति अर्थात् धार्मिक क्रियाकलाप या उपासना पद्धतियाँ धर्म शास्त्रीय विधानों के अनुरूप होती हैं। हिन्दू धर्म के संदर्भ में इसे ही भक्ति का बुनियादी स्वरूप कहा गया है। भक्ति का दूसरा स्वरूप मूल से पृथक लेकिन उसके नियमों, सिद्धांतों तथा मान्यताओं, विश्वासों आदि से साम्य रखने वाला होता है। भक्ति का यह स्वरूप स्थानीय स्थितियों–परिस्थितियों, परम्पराओं, मान्यताओं तथा धार्मिक विश्वासों से सम्बद्ध होता है। इस तरह की भक्ति भावना में आराध्य देवी–देवता, शिव, हनुमान, कृष्ण, पार्वती, दुर्गा आदि देवी–देवता न होकर, उस स्थान–विशेष के लोगों के व्यापक कल्याणार्थ कार्य करने वाला कोई मनुष्य भी हो सकता है, लोगों को मारकर खा जाने वाला कोई शेर भी हो सकता है, बाढ़ जैसी विभीषिका की उत्तरदायी कोई नदी भी हो सकती है, असमय काल–कवलित कोई स्त्री या पुरूष जो कि मान्यताओं के अनुसार भूत–प्रेत, शेरनी, सूखा, महामारी, बाढ़, बीमारी आदि रूपों में अप्रत्यक्षतः संदर्भित समाज का संरक्षण या विनाश करने की सामर्थ्य रखता हो–भी हो सकता है और उस परिवेश की प्रकृति के अंतर्गत आने वाले वन, पर्वत, नदी, पहाड़ आदि भी हो सकते हैं, जो स्थानीय लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति तथा उनके जीवन के संरक्षण और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के कारण देवता के रूप में प्रतिष्ठित कर दिए गए हों। भक्ति की इस दूसरी प्रकृति में आराध्य देवी–देवताओं के चयन–निर्धारण में प्राकृतिक, भौगोलिक या सामाजिक परिस्थितियाँ आधारिक भूमिका का निवर्हन करती हैं। उदाहरणतः–किसी स्थान विशेष पर वनों की अधिकता वहाँ के लोगों की दैनंदनीय आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ उनमें विविध प्रकार का भय भी उत्पन्न करती है, जिससे उन वनों के संरक्षण और स्वयं को भय से बचाने के लिए स्थानीय लोग वनदेवी या वन देवता की कल्पना कर उनकी पूजा–अर्चना विषयक कुछ नियमों, मान्यताओं, कार्यकलापों आदि का विधान कर लेते हैं। भक्ति की इसी प्रकृति में स्थानीय देवी–देवताओं से संबंधित कुछ दंतकथाएँ भी प्रचरित–प्रसरित हो जाती हैं, जिनके माध्यम से वन देवी या वनदेवता के कोपभाजन का भय दिखाकर इनके प्रति भक्ति की भावना को सुदृढ़ करने के साथ–साथ वनों के संरक्षण को भी सुनिश्चित किया जाता है। इसी तरह बाढ़, सूखा, अकाल आदि प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षित रहने के लिए इन्द्र देवता, गंगा मैया आदि की कल्पना करके विश्वासपूर्वक इनकी भक्ति करने से लोगों में विजय परिस्थितियों का सामना करने का साहस एवं सामर्थ्य प्रादुर्भूत होता है। दरअसल भक्ति की यह दूसरी प्रकृति धर्मग्रंथों में उल्लिखित मूल भक्ति का स्थानीकरण अथवा क्षेत्र–विशेष की प्रकृति परम्पराओं, मूल्यों, आदर्शों आदि को संरक्षित रखते हुए किसी तरह की भयाक्रांतता एवं हानिकारक घटकों से स्थानीय लोगों को बचाती है। लेकिन भक्ति की यह कोटि उसी सीमा तक भक्ति के अंतर्गत परिगणित हो सकती है जहाँ तक व्यापक लोकमंगल से सम्बद्ध हो। यदि इस भक्ति से कुछ सीमित लोगों को ही तात्कालिक लाभ हो रहा हो तथा समाज पर इसका दीर्घकालीन नकारात्मक प्रभाव पड़ना सुनिश्चित हो तो यही भक्ति अंधविश्वास, कुरीति, कुप्रथा आदि में परिवर्तित हो जाती है। मेरी व्यक्तिगत विचार–सरणि के अनुसार लोकजीवन में भक्ति के उद्भव और विकास की प्रक्रिया, प्रकृति और पद्धति लगभग वही होती है, जिसका अभी तक सैद्धांतिक, क्रमबद्ध, व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक एवं अभिकथनात्मक विवेचन–विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

आलोचना सम्राट एवं अगौना अधिवासी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भक्ति को एक ऐसी शक्ति मानते थे जिसमें साधक को साध्य की ओर आकर्षित करने अथवा जिसमें साधक को साध्य की ओर उत्प्रेरित करने की सामर्थ्य होती है। इनकी भक्ति विषयक वैचारिकी समेकित प्रकृति में वह आधारशिला है जिस पर गोस्वामी तुलसीदास, सूरदास, जायसी की व्यावहारिक समीक्षा तथा साहित्येतिहास के भक्तिकालीन प्रकरण, 'श्रद्धा और भक्ति', 'तुलसी का भक्ति मार्ग' तथा 'धर्म और विकासवाद' निबंध की सैद्धांतिक मीमांसा का विशाल प्रासाद निर्मित हुआ है। भक्ति का विकास, श्रद्धा और भक्ति, तुलसी का भक्ति मार्ग आदि निबंधों में उन्होंने लोकजीवन में भक्ति के बीजारोपण के सिद्धांत एवं स्वरूप आदि का व्यवस्थित और मनोवैज्ञानिक विवेचन–विश्लेषण किया है। शुक्ल जी श्रद्धा और प्रेम के योग को ही भक्ति मानते हैं तथा यह भक्ति न तो अकेले श्रद्धा से ही और न ही अकेले प्रेम से प्रादर्भूत हो सकती है, बल्कि दोनों के सामंजस्य से ही इसका

जन्म हो सकता है। इसी भक्ति के माध्यम से किसी तीसरे की भक्ति का अधिकारी बना जा सकता है, ठीक वैसे ही, जैसे कि राम के अनन्य भक्त हनुमान अपने स्वामी की विशेष भक्ति करके रामभक्तों की भक्ति के अधिकारी बने। अपने आचार–व्यवहार द्वारा दूसरों की भक्ति के अधिकारी बनकर ही विशिष्ट प्रतिभाशाली व्यक्ति लोकमंगल के कार्यों में प्रवृत्त होते हैं, इसीलिए तो आचार्य शुक्ल भक्ति का विशेष सामाजिक महत्व समझते हैं– ''इससे भक्ति के सामाजिक महत्व को, इसकी लोक–हितकारिणी शक्ति को स्वीकार करने मे किसी को आगा पीछा नहीं हो सकता। सामाजिक महत्व के लिए आवश्यक है कि या तो आकर्षित करो या आकर्षित हो।''[1] आचार्य शुक्ल ने **विश्व–प्रपंच** की भूमिका सहित अपने समग्र सृजन–कर्म में जहाँ–तहाँ प्रसंगानुरूप ईश्वर और धर्म की उत्पत्ति के संदर्भ में अपनी सैद्धांतिक–वैचारिक निष्पत्तियाँ दी हैं, जिनसे उनकी भक्ति संबंधी विचारोद्भावनाएँ भी जुड़ी हुई हैं। यद्यपि ईश्वर, धर्म और भक्ति का विकास एक–दूसरे की अस्मिता और अस्तित्व को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से हुआ, लेकिन अन्यों की तुलना में भक्ति, धर्म और ईश्वर की आधारशिला होती है, जिसके माध्यम से मनुष्य अपने साध्य का समीपस्थ बनकर उसकी शक्तियों को अनुकम्पा के रूप में अपना पहरेदार बना लेता है। भक्ति के माध्यम से आत्म–शोधन का मार्ग भी खुलता है क्योंकि भक्त भगवान के सम्मुख अपना आदर्श चरित्र प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। आचार्य शुक्ल का मानना है कि 'दैन्य' अर्थात् साध्य के महत्त्व के साथ स्वयं के लघुत्व की भावना भक्ति की पहली शर्त होती है। मानव–मन की परिकल्पना में स्वयं के हितों की रक्षा की भावना से ही ईश्वर एवं धर्म की कल्पना की गयी। दरअसल स्थिति–रक्षा, विधान, दया, दाक्षिण्य, प्रेम, कोध आदि जो मनोवृत्तियाँ मनुष्य को अपने में दिखाई देती हैं, उन्हीं का उत्कृष्ट और पूर्ण रूप वह ईश्वर में देखता है तथा उसकी इसी महान प्रवृत्ति के कारण वह उसके प्रति श्रद्धावान एवं भक्तिवान होता है। आचार्य शुक्ल ईश्वर की भावना वहीं मानते हैं जहाँ धर्म की भावना हो। इस 'धर्म' के तीन क्षेत्र होते हैं आप्त शब्द, बुद्धि एवं हृदय, भक्ति हृदय से ही संबंधित होती है– ''भक्ति हृदय से की जाती है। बुद्धि से भक्ति करना ऐसा ही है जैसे नाक से खाना और कान से सूँघना।''[2] शुक्लजी जगत् के प्रत्येक घटना व्यापार को दर्शन की परिधि के अंतर्गत ही मानते हैं। **'विश्व–प्रपंच'** की भूमिका के अंत में उन्होंने जगत् की उत्पत्ति के संबंध में दार्शनिकता का विवेचन–विश्लेषण करते समय ईश्वर एवं धर्म की उद्भाविक प्रक्रिया की भी व्याख्या–विवेचना की है। इसी तरह 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य', 'काव्य में रहस्यवाद', 'धर्म और विकासवाद', 'तुलसी का भक्तिमार्ग', 'मानस की धर्म भूमि', 'श्रद्धा और भक्ति' आदि निबंधों, गोस्वामी तुलसीदास जायसी एवं सूरदास नामक व्यावहारिक कृतियों तथा साहित्येतिहास के भक्तिकालीन प्रकरण आदि में भी उन्होंने परमात्मा, धर्म और भक्ति के विकास को भारतीय दर्शन से सम्बद्ध रखते हुए दर्शाया है। इन्हीं कृतियों में भक्ति के उदय की प्रकृति, प्रवृत्ति, प्रक्रिया आदि का सूक्ष्मातिसूक्ष्म दार्शनिक विवेचन किया गया है जिनके अध्ययन–अनुशीलन से सारांशतः उद्भाषित होता है कि शुक्ल जी भक्ति को व्यवहारतः मनुष्य के द्वारा स्वयं की रक्षा का विधान तथा सिद्धांततः ब्रह्मांड की अलौकिक शक्ति के प्रति दार्शनिक पद्धति से कृतज्ञता ज्ञापन या श्रद्धा–समर्पण मानते हैं। वैसे तो निर्गुण–निराकार को वे भक्ति का विषय ही नहीं मानते थे तथा भक्ति के क्षेत्र में उन्हें रहस्य, गुह्य आदि का विधान कदापि स्वीकार्य नहीं था परंतु क्योंकि उनकी दृष्टि में दर्शन का क्षेत्र अतिव्यापक होता है तथा दर्शन ने पारलौकिक सत्ता को स्वीकृति प्रदान कर दी है, इसलिये शुक्ल जी ने भी भक्ति कालीन कवियों की निर्गुणता, निराकारिता एवं रहस्यवादिता आदि को भक्ति की प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार करते हुए कबीर, रैदास, जायसी आदि को संत या भक्त कवि ही माना।

आचार्य शुक्ल भक्ति में रहस्यवाद की तरह ही **अंतःसाधना** की पद्धति को भी अस्वीकार्य मानते हैं। उनकी दृष्टि में 'घट के भीतर' की अवधारणा से ही **गुह्य** या **रहस्य** की भावना का जन्म होता है जिससे भक्ति का सीधा एवं स्वाभाविक मार्ग खण्डित हो जाता है। अतः जगत् की सत्ता को भी बाह्य जगत् द्वारा नियंत्रित–संचालित मानने वाले शुक्ल जी वेदों, उपनिषदों, पुराणों आदि को ही धर्म एवं भक्ति का आदि विश्लेषक मानते हुए भक्ति को लोकजीवन से घनिष्ठतः अंतर्संबंधित बतलाते हैं। उनके मतानुसार भारतीय धर्मग्रंथों में भक्ति का मार्ग उभयात्मक अर्थात् सगुण या **व्यक्त निर्गुण** या **अव्यक्त** दोनों रहा है लेकिन मनुष्य के इंद्रियजन्य अनुभव तक ही ब्रह्मा को सगुण एवं व्यक्त माना जा सकता है, उसके आगे तक की सत्ता के लिए निर्गुण, निराकार आदि निषेधवाचक शब्दों का सहारा लिया जाता है। उपनिषदों ने पूजा–पाठ से आगे

बढ़कर उपासना की पद्धति का प्रवर्तन किया, जिसमें कर्म में हृदयतत्त्व को अधिक स्थान देने की प्रवृत्ति से ही भक्ति मार्ग का आरम्भ हुआ। तथा इस भक्ति मार्ग के प्रवर्तन की परम्परा का आरम्भिक उल्लेख महाभारत के 'शांतिपर्व' के 'नारायणीयोपाख्यान' के अंतर्गत हुआ दिखाई देता है। यही कारण है कि भक्ति की विवेचना के समय आचार्य शुक्ल गीता, भागवत्पुराण, महाभारत, शांडिल्यसूत्र, नारदसूत्र, नारदपांचरात्र आदि छोटे–बड़े धर्मग्रंथों से एतद्विषयक विचारों–दृष्टांतों का उल्लेख करना नहीं भूलते हैं। क्योंकि उनका मानना है कि ज्ञान के सानिध्य में जो उत्कृष्ट भक्ति की उद्भावना होती है या भक्ति की उत्कृष्टता के लिए उसमें जिस ज्ञान का सौहित्य अनिवार्य होता है, वह हमारे परम्परागत धर्मशास्त्रों में उल्लिखित भक्ति में प्रचुरता से दिखाई देता है। ज्ञान और भक्ति की एकता या सहचर्य के कारण ही हमारे यहाँ वैष्णव भक्तिमार्ग योग–मार्ग से अलग हो सका है। शुक्ल जी मानते हैं कि धर्म भावना का भावात्मक या रसात्मक विकास ही भक्तिमार्ग का विशुद्ध रूप होता है तथा भारत में रहस्यमार्गी भक्तों की जो परम्परा दिखाई देती है, वह मूलतः विदेशी है। उनकी दृष्टि में– ''भारतीय भक्तिमार्ग के सर्वसाधारण में प्रचार की व्यवस्था (प्रोपेगैंडा) श्रवण और कीर्तन द्वारा ही सदा से रही है; उपदेशक तर्क या वादविवाद द्वारा नहीं। कीर्तन को वंदन या स्तवन से भिन्न समझना चाहिए। वंदन या 'स्तवन' व्यक्तिगत वस्तु है। वह उस पूजा का अंग है जो व्यक्ति केवल अपनी ओर से अपने लिए करता है, पर कीर्तन का संबंध जन समुदाय की मर्मानुभूति (ग्रुप एक्सीपिरिएंस) से होता है।''[3] दरअसल शुक्ल जी धर्म की भावात्मक अनुभूति को ही भक्ति मानते हैं। इसी भक्ति में कर्म और ज्ञान का सहचर्य हो जाने से धर्म, कर्म, ज्ञान एवं भक्ति नामक तीन अलग–अलग धाराओं में प्रवाहित होता है। इन तीनों के यथेष्ठ सामंजस्य से ही वह अपना पूर्ण एवं सजीव स्वरूप प्राप्त करता है। यदि इस धर्म में कर्म की की अनुपस्थिति रहे तो वह लूला–लँगड़ा दिखाई देगा और यदि वह ज्ञान विहीन होगा तो उसे अंधा कहा जाएगा। इसी तरह यदि उसमें भक्ति का अभाव रहेगा तो वह हृदय विहीन अथवा निष्प्राण बन जाएगा। अतः स्पष्ट है कि शुक्ल जी धर्म को हृदय विहीनता या जड़ता से बचाने के लिए उसमें भक्तिभावना का सम्मिलन आवश्यक मानते हैं। अपने साहित्येतिहास ग्रंथ के भक्तिकालीन प्रकरण में आचार्य शुक्ल ने कर्म और भक्ति को ही सारे जनसमुदाय की संपत्ति मानते हुए भक्ति का सूत्रपात महाभारत काल में तथा विस्तृत प्रवर्तन पुराणकाल में माना है, जो कि तब से लेकर आज तक कहीं दबती तो कहीं उभरती, किसी तरह चली भर आ रही है। परमसत्ता के प्रति भक्ति की इसी प्रवृत्ति, प्रक्रिया एवं प्रकृति की बुनियाद पर आचार्य शुक्ल की समाज परिकल्पना का वह सैद्धांतिक– वैचारिक ढाँचा सुस्थिर है जिसमें गोस्वामी जी के 'रामराज्य', जायसी की 'प्रेम–पीर' तथा सूरदास की 'नवीन प्रसंगोद्भावना' व्यापक लोकमंगल के आश्रय से सौन्दर्यीकरण करती दिखाई है।

सन्दर्भ–सूची :–

1. चिंतामणि (भाग–1) श्रद्धा–भक्ति, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2016पृ0सं0–23।
2. वही,–27।
3. सूरदास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, संवत–2058 वि0ए पृ0सं0–43।
4. साहित्य का समाजशास्त्रीय चिन्तन, संपादक–निर्मला जैन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय संस्करण–2009
5. दूसरी परम्परा की खोज, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–1983
6. चिंतामणि (भाग–3), संपादक–डॉ0 नामवर सिंह, मनीष पब्लिकेशन, दिल्ली संस्करण–2013
7. चिंतामणि (भाग–3), संपादक–डॉ0 नामवर सिंह, मनीष पब्लिकेशन, दिल्ली संस्करण–2013
8. आलोचना में सहमति–असहमति, मैनेजर पाण्डेय,, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण–2013

बाल काव्य मीमांसा के नवीन प्रतिमान स्थापित करती
प्रो. प्रभा पंत की कविताएँ : एक अनुशीलन

विजयलक्ष्मी*

'कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है'– कविवर सुमित्रानन्दन पंत के इस परिभाषिक कथन के भावार्थानुसार कवि के भावानुभावाओं, विचारों और संवेदनाओं के चरमोत्कर्षी स्वरूप का शब्दांकित रूप ही कविता के नाम से जाना जाता है, लेकिन बालकाव्य की स्थिति इससे कुछ भिन्न होती है। दरअसल बाल कविताएँ कुछ विशिष्ट उद्देश्यों यथा, बाल मनोविज्ञान के अनुसार बच्चों को शिक्षा देने, उनके ज्ञान में वृद्धि करने, उनका मनोरंजन करने अथवा उनका चारित्रिक एवं नैतिक विकास करने आदि की दृष्टि से लिखी जाती हैं। सामान्यतः बालकाव्य का सर्जक भी अपनी वय के आरम्भिक सोपान पर अपरिहार्यतः बालक अथवा बालिका रहा होता है, लेकिन इस किस्म की कविताओं के लेखन तक बाल्यकाल संबंधी उसकी स्वानुभूतियाँ अतीत का स्मरण बन चुकी होती हैं। उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर सारांशिक स्वरूप से कहा जा सकता है कि रचना प्रक्रिया, रचनात्मक उद्देश्य तथा संवेदना अथवा विषयवस्तु आदि के स्तर पर सामान्य काव्य लेखन और बाल काव्य–लेखन में अल्पाधिक विभेद अवश्य होता है; क्योंकि जब इन दोनों प्रकार के काव्य लेखन में रचना–प्रक्रिया से लेकर उद्देश्य तक सैद्धान्तिक एवं प्रक्रियागत कुछ बुनियादी अन्तर अवश्य होता है, तब ऐसे में स्वाभाविक है कि दोनों के लेखन संबंधी नियमों–निर्देशों तथा समीक्षा संबंधी मानदण्डों में भी कुछ सैद्धान्तिक और घटकीय विभेदों के आधार पर बाल कविताओं का मानदण्ड स्थापित करने तथा बाल काव्य का नया सौन्दर्यशास्त्र निर्मित एवं विकसित करने का प्रयास किया जाता हो।

उपर्युक्त परिच्छेद के अन्त में बाल काव्य संबंधी जिस सौन्दर्यशास्त्र और प्रतिमान की बात की गयी हैं, उसे गढ़ने एवं विकसित करने में जितना काव्य–मीमांसा का योगदान रहा है उसमें कमोवेश उतना ही योगदान कवियों–कवयित्रियों ने भी दिया हैं। ध्यातव्य है कि समकालीन हिन्दी बाल–साहित्य के अन्तर्गत जिन अगणित कवियों और कवयित्रियों की प्रभावशाली लेखनी से निःसृत संख्यातीत सर्जनाओं के सहारे बाल काव्य विधा अपने प्रकर्ष की ओर बढ़ रही है, उनमें से एक प्रोफ़ेसर प्रभा पंत की कविताएँ इन्हीं प्रवृत्तियों की पोषक–संरक्षक रही हैं। अपनी कारयित्री एवं भावयित्री प्रतिभा के साहित्य से निर्मित विशिष्ट रचनाधर्मिता के सहारे समकालीन हिन्दी बाल काव्य और कहानी विधा को अनेक निधीय महत्त्व की सर्जनाओं के द्वारा समृद्धि प्रदान करने वाली प्रभा पन्त की कविताएँ अपनी अन्यतम विषेषताओं के कारण न केवल परम्परागत बाल साहित्य की संवेदना के आयामों का अतिक्रमण करने का साहस करती दिखाई देती हैं अपितु अपनी इन्हीं विशिष्टताओं के सहारे उनकी कविताएँ बालकाव्य लेखन और समालोचन का प्रतिमान गढ़ने तथा बाल–काव्य का नितांत नवीन सौन्दर्य शास्त्र विकसित करने का कार्य करती दिखाई देती हैं।

जैसा कि पूर्वपीठिका में उल्लिखित हो चुका है कि कविश्रेष्ठ सुमित्रानन्दन पंत का काव्यगत सिद्धांत यथावत अथवा पूर्णरूपेण बाल–कविताओं की रचना–प्रक्रिया एवं उद्देश्य आदि पर लागू नहीं हो सकता है; लेकिन इस संदर्भ में प्रोफ़ेसर प्रभा पंत की कविताएँ अपवाद ही कही जा सकती हैं। कारण यह है वय की दृष्टि से डॉ0 प्रभा पंत भले ही प्रौढ़ रचनाकार हों, लेकिन अपनी बाल कविताओं में वे भाव विचार, आवश्यकता, अनुभूति, संवेदना और मनोविज्ञान आदि प्रत्येक संदर्भो में बाल स्वरूप में ही उपस्थिति रही हैं। उनकी कविताओं की संवेदना में सहानुभूति पक्ष से अधिक स्वानुभूति की अभिव्यक्ति का पक्ष प्रबल रहा है, अर्थात् उनकी कविताओं में जिन बाल–विषयों को अभिव्यक्ति हुई है उनकी रचनाकार, डॉ0, प्रोफेसर और

*** शोधार्थी–हिन्दी विभाग, मोतीराम बाबूराम राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड–263139।**

प्रौढ़ वय की प्रभा पंत न होकर असंख्य जिज्ञासाओं, अपरिपक्व संवेदनाओं तथा विचारों, अस्थिर मनोदशा और भौतिक दुनियादारी से सर्वथा अनजान बालिका प्रभा पंत है। व्यक्तित्त्व के इसी रूपांतरण अर्थात् बच्ची बनकर बच्चों के लिए किए गए काव्य–लेखन के कारण ही उनकी कविताएँ न केवल समग्र बाल समुदाय की स्वप्नुभूतियों, आवश्यकताओं और मनोवृत्तियों आदि की यथार्थपरक अभिव्यक्ति में सफल रही हैं। उनकी कविताएँ बाल–संवेदना एवं मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के सर्वथा अनुरूप होने के कारण सर्वकालिक प्रासंगिकता वाली भी बन गई हैं।

केवल कुमाऊँ अथवा उत्तराखण्ड ही नहीं, अपितु समग्र भारत के समसामायिक हिन्दी बाल साहित्य का आधार स्तम्भ है प्रभा पंत। सर्जनात्मक व्यक्तित्व से कवि और कहानीकार, व्यवसायिक व्यक्तित्त्व दृष्टि से प्रोफेसर एवं शोध–निर्देशक डॉ0 प्रभा पंत का निजी व्यक्तित्त्व जितना अधिक विविधताओं से परिपूर्ण रहा है, उतना ही अधिक वैविध्य इनके सार्वजनिक व्यक्तित्त्व में भी दृष्टिगोचर होता है। अपनी विशिष्ट अध्यापन शैली के लिए विख्यात प्रोफ़ेसर प्रभा पंत ने एक ओर जहाँ कृत्रिम बौद्धिकता, चैट–जीपीटी और पुस्तकीय मोहभंग की दुनिया में छात्र–छात्राओं को साहित्य एवं बाल साहित्य के पठन–पाठन के प्रति रुचि जाग्रत की है, वहीं अनेक शोधार्थियों को बाल साहित्य के विविध आयामों पर शोध के लिए प्रेरित और निर्देशित करके, न केवल बाल साहित्य से संबंधित एक बड़े अभाव की पूर्ति की है अपितु एतद्विषयक अनेक समस्याओं का निदान भी प्रस्तुत किया है।

उनकी कविताओं की बात करें, तो बाल–संवेदना और बाल मनोविज्ञान के मध्य सर्वोत्कृष्ट समन्वय संस्थापित करती तथा बाल काव्य समीक्षा के नवीन प्रतिमान गढ़ती कविताएँ अभी तक चार काव्य–संग्रहों में प्रकाशित हो चुकीं हैं। इनमें से 'बच्चे मन के सच्चे' शीर्षक उनका प्रथम काव्य–संग्रह सन् 2014 ई0 में जगदम्बा पब्लिशिंग कंपनी दिल्ली से प्रकाशित हुआ। जिसमें विविध विषयों से संदर्भित रंगीन चित्रों सहित कुल बीस कविताएँ संकलित थीं। अपनी लोकप्रियता के कारण इसका दूसरा संस्करण सन् 2022 में प्रकाशित हुआ। 'तुम्हें सुनाऊँ एक कहानी' इनका दूसरा बालकाव्य संग्रह, सन् 2020 इंड़िया नेटबुक पब्लिकेशन से प्रकाशित हुआ। इस पुस्तिका में बच्चों को नैतिकता एवं मूल्यबोध का पाठ पढ़ाती, तथा उनका एक आदर्श चरित्र गढ़ती, सचित्र कुल दस कविताएँ हैं। तीसरा काव्य संग्रह 'बचपन जीन दो' भी जगदम्बा पब्लिशिंग कंपनी दिल्ली से प्रकाषित हुआ है, जिसका प्रकाशन वर्ष सन् 2022 ई0 है। रंगीन चित्रों से सुसज्जित कुल बाईस कविताओं के इस काव्य–संकलन में बच्चों की स्वाभाविक वृत्ति एवं बाल आकांक्षा से सरोकार रखने वाली अत्यंत सरल एवं सहजग्राहय रचनाएँ शामिल हैं। इनका चौथा और अन्तिम काव्य संग्रह 'मुझको सूरज बनना है।' शीर्षक से इसी वर्ष प्रकाश पब्लिकेशन हल्द्वानी द्वारा प्रकाशित किया गया है। इसमें मनुष्यता, प्रकृति, पर्यावरण और देश प्रेम आदि विविध विषयों से संबंधित कुल पंद्रह बाल कविताएँ हैं।

इस तरह से कुल चार काव्य संकलनों तथा सड़सठ कविताओं में फैला डॉ0 प्रभा पंत का बालकाव्य संसार जितनी अधिक संख्यात्मक समृद्धि लिए हुए है, उतना ही अधिक विषयगत विविधता से भी संयुक्त है। जैसा कि पूर्व में अभिकथित हो चुका है कि डॉ0 प्रभा पंत की कविताएँ अपनी अनेक अनन्य विशेषताओं के सहारे बाल–काव्य मीमांसा का नया प्रतिमान गढ़ने तथा नया नवीन सौन्दर्यशास्त्र विकसित करने का कार्य करती हैं। इस अभिकथन के व्यवहारिक परीक्षण के लिए इनकी बाल कविताओं में विद्यमान प्रतिमानिक तत्त्वों की छानबीन आवश्यक हो जाती है; अतः यहाँ बाल काव्य–समीक्षा के प्राचीन मानदण्डों पर एक सरसरी दृष्टि डालना प्रासंगिक होगा।

बाल काव्य समीक्षा के प्राचीन मानदण्ड भारतीय साहित्य की समृद्धशाली परम्परा अर्थात् संस्कृत की प्राचीन काव्यशास्त्रीय परम्परा में ही निहित रहे हैं। जिसमें बच्चों के लिए सृजित कविताओं को नैतिकता, शिक्षा, मनोरंजन, सांस्कृतिक व मानवीय मूल्य तथा ज्ञान–विस्तार आदि के संवाहक के रूप में देखा जाता रहा है। बालकाव्य मीमांसा संबंधी ये प्रतिमान राजशेखर, भरतमुनि, भामह तथ आनन्दवर्धन आदि प्राचीन काव्य मीमांसकों के मीमांसा सिद्धान्तों से प्रेरित–प्रभावित रहे हैं। इसमें राजशेखर की काव्य मीमांसा तथा भरतमुनि के नाट्यशास्त्र को इन प्रतिमानों का सिद्धांत ग्रंथ माना जा सकता है। यद्यपि उस समयावधि में बाल–साहित्य अथवा बाल काव्य का स्वतन्त्र साहित्यिक अस्तित्त्व नहीं था, लेकिन बच्चों के दृष्टिगत इस

समय लिखी गयी लोरियाँ, गीत एवं नैतिक कहानियाँ आदि इसी श्रेणी में आती थी। दरअसल प्राचीन काव्यशास्त्र में काव्य की आत्मा और शरीर को लेकर हुए वाद–प्रतिवाद में रस, अलंकार, ध्वनि, छंद, वक्रोक्ति एवं औचित्य नामक जिन छह सम्प्रदायों की स्थापना हुई थी, उन सभी ने इन्हीं तत्त्वों की वर्तमान संबंधी प्रमुखता और गौणता को काव्य मीमांसा का मानदण्ड बताया था।

इन प्रतिमानिक तत्त्वों के अतिरिक्त लोक परम्पराओं का निर्वहन, नैतिकता और मनोरंजन आदि मानदण्डीय घटक भी प्राचीन बाल काव्य मीमांसा के प्रतिमानों में सम्मिलित थे। इन प्रतिमानिक घटकों के प्रभाव एवं लोकभाषा में बच्चों को सुलाने, उन्हें शिक्षा देने तथा सांस्कृतिक मूल्यों से जोड़ने के लिए रचित लोकगीतों तथा लोरियों में शान्त व करुण रस का उपयोग बच्चों में भावानात्मक स्थायित्त्व लाने तथा ममत्व का बोधक कराने का कार्य करता था। इसी तरह से बच्चों को जहाँ नैतिकता, धार्मिकता एवं सामाजिक मूल्यों का पाठ पढ़ाने के उद्‌देश्य लिखी गई बाल कविताएँ उनकी नैतिक चेतना और संवेदनशीलता को बढ़ाती हैं, वही कविताओं की संगीतात्मकता ध्वनि, छंद और लय आदि के सहारे काव्य को बच्चों के लिए आकर्षक, मनोरंजक एवं यादगार बनाती हैं। इसी तरह से प्रकृति चित्रण संबंधी कविताएँ बच्चों में प्रकृति के प्रति प्रेम जगाती हैं, तो हास्य और मनोरंजन प्रधान बाल कविताएँ बच्चों को हँसाने तथा उनका मनोरंजन करने के साथ ही उनमें आनन्द एवं उत्साह का संचार करती हैं। अतः स्पष्ट है कि उनमें नैतिकता का विकास करने, मूल्यबोध कराने तथा प्रकृति से उनकी प्रभावी सम्बद्धता को बढ़ाने की वकालत करने वाले घटक ही बाल–काव्य समीक्षा के पुराने प्रतिमानिक तत्त्व है जो सरलता, लयात्मकता, रसात्मकता तथा नैतिक संदेशों के साथ बच्चों के संवेदनात्मक एवं बौद्धिक विकास को प्रोत्साहित करते है।

उपर्युक्त परिच्छेद में बाल काव्य–मीमांसा के जिन प्राचीन प्रतिमानिक घटकों का उल्लेख किया गया है ये सभी अपनी विविध प्रकृतियों में डॉ0 प्रभा पंत की कविताओं में अंतर्भुक्त रहे हैं। यद्यपि इनकी कविताओं में इन तत्त्वों की वर्तमानता प्रकृति और प्रतिमान दोनों रूपों में रही है, लेकिन इनके अतिरिक्त भी अनेक ऐसी विशिष्टताएँ भी हैं, जो इन कविताओं का सौंदर्यवर्द्धन करती दिखाई देती है। प्रो0 प्रभा पंत की कविताओं से संदर्भित ये नूतन मानदण्ड बालकाव्य को केवल मनोरंजन एवं हास्य तक ही सीमित न रखकर इसे बच्चों की शिक्षा और रचनात्मकता तक ले जाते है। जिससे बच्चों की भावना कल्पना, बौद्धिक–स्तर तथा सौन्दर्य बोध आदि को उनकी रुचियों के अनुरूप, सरलता, लयात्मकता तथा चित्रात्मकता प्राप्त होती है। इस तरह से कह सकते है कि बाल साहित्य के अन्तर्गत काव्य मीमांसा का नया प्रतिमान गढ़ने वाली कविताएँ बच्चों के मानसिक, भावनात्मक एवं बौद्धिक–स्तर के दृष्टिगत हास्य एवं मनोरंजन के साथ–साथ सार्थक अर्थो में नैतिकता एवं सांस्कृतिक मूल्य आदि को भी नितांत नवीन स्वरूपों में प्रस्तुत करती हैं। इस श्रेणी की कविताएँ भाषा–शैली तथा विषयवस्तु आदि के संदर्भ में परम्परागत कविताओं की सापेक्षता में अधिक प्रयोगात्मक किस्म की होती हैं जिससे ये बच्चों के लिए सरल व रोचक होने के साथ ही प्रेरणादायक भी होती है। डॉ0 प्रभा पंत की बाल कविताओं में काव्य–मीमांसा के प्रतिमान संबंधी जिन नवीन आयामों अथवा तत्वों की उपलब्धता दृष्टिगोचर होती है वे सभी बच्चों की संवेदनाओं, आधुनिक संदर्भो में उनके मनोविज्ञान तथा बौद्धिक स्तर आदि के अनुरूप रचे गए हैं। यहाँ इस तरह के सभी प्रतिमानिक तत्त्वों का संक्षिप्त और विश्लेषणात्मक परिचय दिया जा रहा हैं–

बाल संवेदनाओं का अंतर्वेशन :– प्रभा पंत की कविताएँ बच्चों की भावनाओं, उनकी विविध विषयी जिज्ञासा एवं कल्पनाशीलता आदि को केन्द्र में रखकर लिखी गई हैं। सरल व सहज भाषा तथा लयात्मक प्रकृति में लिखी ये कविताएँ बच्चों को आसानी से समझ में आने के साथ ही उनकी संवेदना को निखारने तथा भावना एवं बुद्धि को स्थायित्त्व प्रदान करने का कार्य करती हैं। उनकी 'पेड़','आगे बढ़ती जाऊँगी', अच्छा बच्चा, पापा तुम्हारा मुस्कुराना, बडा होकर, संग उनके मुस्काऊँगी, बचपन जीन दो, पृथ्वी दिवस, यदि होती मैं,वर्षा की बूंदे, जगमगाते दीप, शिक्षक दिवस, मानव को मानव समझे हम, मुझको सूरज बनना है, पर्यावरण के प्रहरी, तथा तिरंगा हम लहराएँगे, इत्यादि शीर्षक कविताएँ इसी प्रवृत्ति की पोषक है। 'बड़ा होकर' नामक कविता की अधोलिखित पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं–

''बडा होकर माँ मैं तुमको/बनाकर रानी बैठाऊँगा।

होगी जहाँ सेवा तुम्हारी/एक ऐसा महल बनवाऊँगा।।''[1]

सांस्कृतिक मूल्यों का पुनर्जन्म :– प्रो.पंत की बाल कविताएँ युगीन आवश्यकताओं तथा परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप भारत के सांस्कृतिक मूल्यों का पुनर्जन्म करके उन्हें सरलता के साथ बच्चों तक पहुँचाती हैं। जिससे न केवल बच्चों में मूल्यबोध विकसित होता है, अपितु उनका एक वैश्विक दृष्टिकोण भी निर्मित होता है। कविता 'मैं पैर तुम्हारे दबाऊँगा' की अधोलिखित काव्य पंक्तियाँ सांस्कृतिक मूल्यों के पुनर्जन्म का सर्वोत्तम दृष्टांत कही जा सकती हैं–

''बोलो माँ मुझे बताओ न

खाना तुम ही क्यों बनातीं/धोती हो सारे कपड़े तुम्ही?
झाडू पोंछा तुम ही करतीं/क्यों माँजती हो बर्तन तुम्हीं?

चलो माँ, लेटो अब बिस्तर में/मै पैर तुम्हारे दबाऊँगा।
थक गयी हो काम करके तुम/मैं चाय बनाकर लाऊँगा।''[2]

आधुनिकता एवं वैज्ञानिकता :– समसामयिक परिस्थितियों आवश्यकताओं एवं मनोवृत्तियों आदि के अनुरूप ही प्रभा पंत की बाल–कविताएँ आधुनिकता एवं वैज्ञानिकता से सरोकार रखती हैं। आधुनिकता के नाम पर जहाँ इन कवितओं की संवेदना में पर्यावरण संरक्षण, लैंगिक और सामाजिक समानता तथा जागरूकता आदि की विद्यामानता रही है, वहीं कम्प्यूटर, इंटरनेट, चिकित्सा और पृथ्वी दिवस आदि विषय इन कविताओं के वैज्ञानिक पक्ष से संदर्भित रहे हैं। 'पर्यावरण के प्रहरी'शीर्षक कविता में कवयित्री ने पर्यावरण संरक्षण जैसे आधुनिक अथवा समसामयिक विषय का महत्त्वांकन अग्रलिखित प्रकार से किया है–

''नन्हा पौधा बढ़ते–बढ़ते/विषाल वृक्ष बन जाएगा।
ऑक्सीजन हमें भी देगा/काम ये सबके आएगा।।
सच्चे सखा है वृक्ष हमारे/जीवन में खुषहाली इनसे।
पर्यावरण के है ये प्रहरी/पृथ्वी में हरियाली इनसे।''[3]

पंत की अन्य कविताओं में भी प्रकृति और पर्यावरण चाँद, तारे, सूर्य, पृथ्वी, पेड, वर्षा, तितली, वन, तथा नदी अपने असंख्य घटकों के साथ सर्वत्र विद्यमान रहा है। ऐसे में जलवायु परिवर्तन को लेकर जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र फ्रेमवर्क कन्वेंशन जैसे वैश्विक सम्मेलनों पर की जाने वाली लम्बी–लम्बी वार्ताओं तथा कभी न प्राप्त होने वाले कागजी लक्ष्यों की सापेक्षता में कवयित्री की 'पृथ्वी दिवस' शीर्षक कविता बच्चों के मन–मस्तिष्क को अधिक गहराई से प्रभावित करती हैं–

''बाईस अप्रैल दिन विशेष, धरती का आभार जताएँ।
पृथ्वी दिवस विश्व मनाता, हम भी गौरव गान सुनाएँ।
पर्वत, जंगल, मरूस्थल, झरने, नदी–सागर धरती के अंग।
इनसे जुड़ा है जीवन हमारा, चलें मिलकर इनके संग–संग।''[4]

पर्यावरण–संरक्षण के अतिरिक्त प्रभा पंत की बाल कविताएँ बच्चों को स्त्री–पुरुष (लैंगिक) समानता तथा सामाजिक जागरूकता का भी पाठ पढ़ाती नजर आती हैं, जो कि वैश्विक संदर्भो में आधुनिकता की सबसे प्रबल पहचान कही जा सकती है। इसी तरह से चिकित्सा, अनुसंधान, टेलीविजन, कम्प्यूटर व मोबाइल फोन आदि वैज्ञानिक घटकों की विद्यमानता भी उनकी बाल कविताओं में सर्वसुलभ रही है, जो कि बच्चों की आधुनिक दृष्टि व संवेदना को विज्ञान का आधार प्रदान करने का कार्य करती है।

शिक्षा, ज्ञान एवं रचनात्मकता का समन्वयः–प्रभा पंत की बाल कविताएँ बच्चों का मनोरंजन करने के साथ ही उन्हें शिक्षा एवं विविध विषयों का ज्ञान तो प्रदान करती ही हैं साथ ही उनकी रचनात्मकता को निखार कर उनके बौद्धिक विकास को भी सुनिश्चित करती हैं। इस तरह से उनकी कविताओं में शिक्षा ज्ञान एवं नवाचार के मध्य विलक्षण सामंजस्य दिखाई देता है। दृष्टांत के तौर पर 'डॉक्टर बनूँगी' नामक उनकी कविता की अधोलिखित काव्य–पंक्तियाँ दर्शनीय हैं–

''बडी होकर डॉक्टर बनूँगी/दवा सभी को बाँटूगी।

बड़ों को दूँगी कड़वी गोली, बच्चों को मीठी बाँटूगी।
अमीरों से लूँगी खूब रूपये, गरीबों को मुफ्त दवा दूँगी।
सताएगा जब कोई उनको, इंजेक्शन उसे लगा दूँगी।''[5]

प्रो. पंत की कविताओं में बालकाव्य–मीमांसा संबंधी उपर्युक्त विवेचित–विश्लेषित नवीन प्रतिमानिक घटकों के अतिरिक्त सरलता और चित्रात्मकता, नैतिकता एवं प्रेरणास्पदता, सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्ता, कौतुहलता व मनोरंजनकता, आधुनिकता और नवीनता, सरलता तथा लिपिबद्धता, प्रयोगात्मता, नवाचार एवं कल्पनाशीलता तथा ध्वन्यात्मकता इत्यादि मानदण्डीय तत्त्व भी यंत्र–तंत्र बिखरे मिल जाते हैं। यद्यपि पंत की कविताओं में इन प्रतिमानिक कारकों की उपस्थिति किसी तरह के नवीन काव्य मीमांसकीय मानदण्ड की स्थापना का आधार नहीं रही है, लेकिन इनसे उनकी कविताओं में काव्य–समीक्षा के नवीन प्रतिमान स्थापित करने वाले जो प्रवृत्तिपरक अथवा कारणिक तत्त्व विद्यमान रहे हैं, उनकी सुदृढ़ता एवं स्थायित्त्व को बल अवश्य प्राप्त होता है।

उपर्युक्त विवेचन–विश्लेषण के उपरांत निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि समकालीन हिन्दी बालकाव्य के सशक्त हस्ताक्षरों में से एक प्रोफेसर, शोध–निर्देशक, सर्जक आदि बहुआयामी व्यक्तित्त्व की पोषक–संरक्षक प्रभा पंत की लेखनी ने अपनी उत्कृष्ट रचनाधर्मिता रूपी नाव पर सवार होकर, हिन्दी बालकाव्य के असीम सागर में दूर तक विचरण किया है, और उसका यह विहार अभी भी निर्बाध गति से जारी है। बाल कविता का नया सौन्दर्यशास्त्र निर्मित करने वाली उनकी कविताओं में काव्यालोचन के पुराने सिद्धान्तों, प्रतिमानों तथा नियमों–निर्देशों आदि के अतिरिक्त नूतन–पुरातन सभी काव्यगत प्रवृत्तियाँ अपनी विविध प्रकृतियों के साथ विद्यमान तो रही ही है, साथ ही बाल संवेदनाओं का अंतर्वेशन, सांस्कृतिक मूल्यों का पुनर्जन्म, आधुनिकता एवं वैज्ञानिकता तथा शिक्षा, ज्ञान एवं रचनात्मकता का विलक्षण समन्वय आदि कुछ ऐसी काव्य–प्रवृतियाँ भी इनकी कविताओं में सर्वसुलभ रही है। ऐसे में ये कविताएँ न केवल समकालीन बाल कवियों की मार्ग प्रस्तावक बनने की सामर्थ्य रखती है अपितु बाल काव्य–लेखन और समालोचन के नवीन प्रतिमान संस्थापित करती हुई भी दिखाई देती है।

संदर्भ–सूची :–

1. बचपन जीने दो (बड़ा होकर), डॉ0 प्रभा पंत पृष्ठ संख्या– 21।
2. वही (मैं पैर तुम्हारे दबाऊँगा) पृष्ठ संख्या– 27।
3. मुझको सूरज बनना है (पर्यावरण के प्रहरी), डॉ0 प्रभा पंत पृष्ठ संख्या– 9।
4. बचपन जीन दो (पृथ्वी दिवस), डॉ0 प्रभा पंत पृष्ठ संख्या– 34।
5. बच्चे मन के सच्चे (डॉक्टर बनूँगी) डॉ0 प्रभा पंत पृष्ठ संख्या– 5।

ꙮ★ꙮ

यशपाल के उपन्यास 'दादा कामरेड' में सामाजिक चिंतन का स्वरूप

पूजा*

शोध सारांश :– यशपाल प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य की प्रगतिशील परम्परा के अग्रणी लेखकों में से एक है। इसके साथ ही वे राजनीतिक और साहित्यिक, दोनों क्षेत्रों में क्रांतिकारी रहे हैं। वे मार्क्सवाद से प्रभावित थे। जिसकी स्पष्ट झलक उनके साहित्य में नजर आती है।

यशपाल का उपन्यास 'दादा कामरेड' मार्क्सवादी दृष्टिकोण से प्रभावित उपन्यास है। उनके इस उपन्यास में मुख्यतः दो स्वर मुखरित होते है– मार्क्सवाद और स्त्री स्वतंत्रता। उनके उपन्यास के पात्र अपने और सर्वहारा मजदूर वर्ग के अधिकारों के लिए संघर्ष करते नजर आते है। उपन्यास का नायक हरीश जो स्वाधीनता के लिए पहले क्रांतिकारी पार्टी में काम करता था। हथियार के बल पर वह क्रांति कर रहा था परंतु बाद में वह नए विचारों से प्रभावित होता है, और हिंसा के बजाय सामाजिक क्रांति पर बल देता है। वह चाहता है कि जीविका के साधनों पर मजदूर वर्ग का अधिकार हो और सत्ता पूंजीपतियों के हाथों से निकलकर मजदूर वर्ग के हाथ में आ जाए। उत्पादन में भागीदारी जिस वर्ग की हो लाभ भी उसी को मिले। उपन्यास में उन्होंने दर्शाया है कि स्त्री का भी अपना अस्तित्व होता है। वह किसी की वस्तु नहीं होती, जिस पर कोई अधिकार प्राप्त करें उसका भी अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है। उपन्यास में वर्णित स्त्रियां बिना डरे सभी परिस्थितियों का सामना करती है। वह पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर काम करती है और अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है।

बीज शब्द :– मार्क्सवाद, प्रगतिशील, स्त्री अस्तित्व, स्त्री स्वतंत्रता, सामाजिक क्रांति, कामरेड, क्रांतिकारी, सर्वहारा, पूंजीपति, गांधीवादी समाजवाद, मार्क्सवादी समाजवाद।

मूल आलेख :– समय के साथ समाज में परिवर्तन होते हैं। पुरानी रूढ़िवादी परंपराओं को त्याग कर मनुष्य नए विचारों के अनुरूप स्वयं को ढालता है। समय के साथ मान्यताओं को बदलना आवश्यक है, तभी समाज में परिवर्तन संभव है। 'दादा कामरेड' में इसी प्रश्न पर विचार करने का अनुरोध यशपाल करते हैं। इस संबंध में डॉक्टर सरोज बजाज का कथन है– "यशपाल के अनुसार इस उपन्यास का उद्देश्य पुरानी रूढ़िवादी मान्यताओं को समय तथा परिस्थितियों के साथ बदलने का है। अगर समय के साथ मान्यताएं नहीं बदली जाएगी तो समाज का ढांचा किस तरह बदलेगा? उस समय स्त्रियां भी राजनीति में भाग ले रही थी। एक तरह से स्त्री को पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने की स्वतंत्रता दी जा रही थी, तो उसकी स्वतंत्रता के साथ यह आशंका का बंधन कैसा? स्त्री और पुरुष के बीच मतभेद कैसा? जिनको प्राकृतिक शाश्वत मान्यताएं दी है उनकी आलोचना कैसी?"[1]

स्त्री स्वाधीनता के लिए संघर्ष :– उपन्यास की पात्र 'यशोदा' एक आम गृहिणी है। जिसके लिए उसका पति परमेश्वर है। उसका सम्पूर्ण जीवन उसके परिवार के लिए समर्पित होता है। जब हरीश पुलिस से भागकर उसके यहां शरण लेता है तो उसकी ममतामई छवि नजर आती है। वह जानती थी कि उसे शरण देकर वह स्वयं को जोख़िम में डाल रही थी। वह किसी भी तरह उसे बचाना चाहती थी। वह सभी घरवालों से छिपकर उसको सामान उपलब्ध कराती है। कहीं न कहीं उसके मन में क्रांतिकारी के प्रति सद्भावना होती हैं कि वे देश की स्वाधीनता के लिए अपनी जान जोखिम में डालते है। वह सोचती है, "जिस प्रकार उसका अपना लड़का उदय निस्सहाय है उसे अपनी मां और दादी की सहायता की जरूरत होती है वैसे ही हरीश भी किसी दूसरी मां का लड़का है जो मौत के विकराल दांतों से निकल भागने की चेष्टा में उसके आंचल में आ पड़ा है"।[2]

***शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

यशपाल ने यशोदा की सास द्वारा जो गीत गंवाया है– 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई'। उनका यह गीत क्रांतिकारी के लिए संदेश है कि उठो सुबह हो गई अपनी क्रांति के पथ पर अग्रसर हो जाओ। यही पतिव्रता नारी यशोदा आगे चलकर हरीश और शैल के संपर्क में आकर कांग्रेस में शामिल होती है। वह अपनी पहचान बनाना चाहती है। हिन्दुस्तानी स्त्री का जीवन उसके विचारों का केंद्र उसका परिवार होता है। जब यशोदा रोज़ अखबार पढ़ने लगती है तो उसे संसार से एक संबंध अनुभव होने लगता है। उसके विचारों का क्षेत्र विस्तृत होता है। शैल से मिलकर यशोदा भी कांग्रेस की मेंबर बन जाती है। डॉ रामदरश मिश्र के अनुसार "शैल नए ढंग की लड़की है पुरुषों और नारियों दोनों के लिए। उसके नएपन पर पुरुष भी चकित है और यशोदा जैसी पुरानी संस्कार की नारी भी, किंतु शैल के आचार को देखकर नाक भौं नहीं सिकोडती, उसे अच्छा लगता है"।[3] वह जब 'संसार की स्त्रियां' और 'बंदी जीवन' को पढती है तो उसके मन में 'स्व' की भावना उत्पन्न होती है। जो स्वयं को अब तक दूसरों की संपत्ति समझती थी। वह अब अपने को अपने विचारों को महत्त्व देती है। हरीश यशोदा को कहता है "आप स्त्रियों में अपना क्षेत्र बनाइए। जो चीज़ स्त्रियों में घर कर जाती है, उसे कोई शक्ति उखाड़ नहीं सकती।"[4] वे स्त्रियों को भी समान अधिकार देने की बात करते हैं। चाहे वह यशोदा जैसी स्त्री हो जो अपने जीवन को बस परिवार के प्रति समर्पित रखती है या फिर शैल जैसी स्वतंत्र विचारों वाली स्त्री जो अधिकारों के लिए संघर्ष करती है। वे दोनों को साथ लाकर उनको उनकी व्यक्तिगत पहचान से अवगत कराते हैं।

स्त्री अस्तित्व के लिए संघर्ष :– 'शैल' स्वतंत्र विचारों वाली स्त्री है। शैल के लिए यशपाल उपन्यास के "दो शब्द" में लिखते हैं–"आचरण के कुछ प्रेमियों को शैल के व्यवहार में नग्नता दिखाई देगी। इस प्रकार का चरित्र पेश करना भी आदर्श की दृष्टि से घृणित समझेंगे। हो सकता है, शैल उनकी सहानुभूति न पा सके, परंतु यह शैल है कौन? दादा कामरेड की शैल स्वयं कुछ न होकर घृणा से नाक भौं सिकोडने वालों की अतृप्त परंतु जागरूक सक्रिय प्रवृत्ति ही है"।[5]

शैल समाज में उसके प्रति तरह–तरह की बातें सुनने के बावजूद वह मज़दूरों के हितों के लिए संघर्ष करती है। वह खुद को किसी की संपत्ति नहीं बनाना चाहती। पुरुष स्त्री को सिर्फ संभोग की वस्तु समझते हैं। समाज उसे बस इतनी स्वतंत्रता देता है कि वह अपना मालिक चुन लें और उसकी गुलाम बन जाए। उसके जीवन में अनेक प्रेमी रहे, परंतु वह प्रेम द्वारा अपने जीवन का विस्तार चाहती थी ना कि उनके द्वारा लगाए बंधनों से अपने जीवन को सीमित करना।

स्त्रियों में राजनीतिक और सामाजिक चेतना :– यशपाल की स्त्री पात्रों की आलोचना करते हुए रामविलास शर्मा का कथन है– "जैनेंद्र ने सुनीता में जो भाभीवाद शुरू किया था यशपाल जी ने मानो वही सूत्र दादा कामरेड में पकड़ लिया था। वही आतंकवादी, वही साड़ी जंपर उतार परिस्थिति। दादा कामरेड से लेकर मनुष्य के रूप तक यशपाल ने यथार्थ के किस अंश को प्रतिबिंबित किया है"?[6] परंतु यशपाल कहते हैं कि 'जब तक स्त्री अपनी स्त्री होने की गुलामी को नहीं समझती उसे अपनी नियति मानती रहेगी, तब तक उसका शोषण होता रहेगा'। यशपाल अपनी स्त्री पात्रों में न सिर्फ सामाजिक अपितु राजनीतिक चेतना की भी बात करते हैं। स्त्रियां किसी की संपत्ति नहीं होती उनका भी अपना जीवन होता है। उनको भी समाज में बराबर के अधिकार दिए जाने चाहिए। स्त्री पुरुष संबंध तो मात्र एक नैसर्गिक प्रक्रिया है, जिसे नकारा नहीं जा सकता, परंतु इससे वे स्त्री की अधीनता स्वीकार नहीं करते। रामविलास शर्मा की बात को नकारते हुए मधुरेश का कथन है–" रामविलास शर्मा यशपाल के पात्रों को जनजीवन का प्रतिनिधि नहीं मानते उनके लिए वे उस वर्ग के लोग हैं, जिनके लिए सेक्स और आत्मा पीड़ा की समस्याएं ही प्रधान है"।[7]

समाज में स्त्री की स्थिति :– उपन्यास की पात्र 'नैनसी' क्रिश्चियन युवती है।सबके बीच होते हुए भी उसे अकेलापन महसूस होता है। वह हरीश उर्फ़ मिराजकर के प्रति आकर्षित होती है, परंतु उसकी तरफ से कोई प्रतिक्रिया न पा उसका मन विक्षिप्त हो उठता है। एक दफ़े नैनसी उलाहने से कहती हैं– 'वाह भाड़े पर आई हूँ'? समाज में नारी की सोचनीय स्थिति को दर्शाता है। वह आर्थिक रूप से सक्षम हैं। परंतु वे स्त्रियां जो निम्न वर्ग से ताल्लुक रखती हैं। उनके साथ कितना दुर्व्यवहार होता है। उनको मन बहलाव की वस्तु समझा जाता है। यशपाल ने समाज में तीन तरह की स्त्रियाँ बताई है– 'निम्न वर्ग की जो पुरुष के बराबर

कार्य करके भी उसकी गुलामी करती है। दूसरी मध्यम वर्ग की जो सिर्फ घर का काम करती है, जो काम नौकर भी कर सकता है। वे भी पुरुष की गुलामी करती है। तीसरी उच्च श्रेणी की स्त्रियां जो सिर्फ पुरुष की मनबहलाव और संतान उत्पत्ति की वस्तु मात्र होती है'। सभी स्तरों पर स्त्रियों को समाज ने सदा दबा कर रखा है।

जो भी यशोदा के साथ हो रहा था वह उसे नियति मान रही थी। कांग्रेस की मेंबर बनने के बाद यशोदा का व्यवहार परिवर्तित होता है। वह अपने बेटे को हरीश की तरह बनाना चाहती थी वह अपने पूर्व परिचित संसार से कोई संबंध नहीं रखना चाहती थी। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था 'जैसे उसकी नाव लंगर तोड़ाकर प्रवाह धारा में बही चली जा रही थी। अमरनाथ को भी अब समझ आ गया था कि अगर वह यशोदा पर बंधन लगाते हैं, तो वह बंधन केवल शारीरिक हो सकता है'। "अब यशोदा अपने आपको पति के चरणों की धूल न मानकर स्वयं मनुष्य बनने की बात सोच रही है। यशोदा में दोष कुछ न पा सकने पर भी अब यशोदा केवल मात्र उनकी ही वस्तु नहीं रह गई थी। उन्हें जान पड़ता है कि अब वे पत्नी के सामने मालिक ना रहकर एक साधारण व्यक्ति रह गए है"।[8]

उपन्यास में अभिव्यक्त मार्क्सवाद :– जिस प्रकार रूस, फ्रांस आदि देशों में लोगों ने अपने हक के लिए जन आंदोलन किए हैं, हमें भी उसी प्रकार जनता के बीच रहकर उन्हें साथ लेकर आंदोलन करना चाहिए। केवल बम, पिस्तौल आदि के माध्यम से जनता की सहानुभूति तो प्राप्त की जा सकती है, परन्तु स्वराज्य लाने के लिए जनता के संयुक्त प्रयत्न की आवश्यकता है। इस संबंध में मधुरेश का कथन है–" यशपाल स्वयं उन क्रांतिकारियों में से थे जिनकी आस्था क्रांति के आतंकवादी तरीकों से उठ चुकी थी और जो व्यापक जनसंपर्क एवं जन सहयोग के माध्यम से सामाजिक राजनीतिक परिवर्तन की दिशा में गहराई से सोच रहे थे"।[9] मजदूर वर्ग को चित्रित करते हुए यशपाल अख्तर के माध्यम से बताते हैं कि वहां की स्थिति कितनी भयावह है। पूरा समय कड़ी मेहनत करने के बाद भी अपने परिवार के लिए दो वक्त का भोजन भी ठीक से नहीं जुटा पाते और उनके परिवार की स्त्रियों का किस प्रकार शोषण होता है। हरीश सोचता है कि "मजदूरों की इस शक्ति को जो आकाश में गरजने वाली बिजली की भांति दुर्दमनीय है किस प्रकार के संगठन द्वारा क्रांति के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है?"10 जीवन निर्वाह के साधनों पर मजदूर वर्ग का अधिकार होना चाहिए। सत्ता पूंजीपतियों के हाथों से निकलकर मजदूर वर्ग के हाथ में आनी चाहिए। उत्पादन में भागीदारी जिस वर्ग की होती है, उसे ही लाभ नहीं मिलता उनका शोषण किया जाता है। हरीश के माध्यम से अपना उद्देश्य स्पष्ट कर कहते हैं कि "जब किसी राष्ट्र का शोषण दूसरे राष्ट्र के लिए हो रहा हो शोषित देश की प्रजा के लिए अवसर कहाँ से हो? हम लोग जीवित हैं जानवरों की तरह, जिनके जीवन का व्यवहार दूसरों के उपयोग के लिए होता है। इसी अवस्था को हमें दूर करना है। यदि ऐसी चेतना देशभर में फैला सके तभी हमारा उद्देश्य सफल हो सकता है। ऐसे आदमी चाहे जहाँ हो कांग्रेस में दूसरी जगह वे सब हमारी श्रृंखला होंगे"।[11]

विशंभर नाथ उपाध्याय का कथन है "यशपाल वर्गहीन तथा शोषण मुक्त समाज की परिकल्पना के साथ संबंधों में स्वतंत्रता के भी हामी थे क्योंकि हमारे समाज में संबंधों के क्षेत्र में शोषण की रक्षा नैतिकता के नाम से होती है। अतः नई समाज की नैतिकता भी नयी होगी। इसमें सामंती विधि निषेध नहीं होगा"।[12]

उपन्यास में हरीश उर्फ सुल्तान, रफीक, अख्तर, कृपाराम, रॉबर्ट , शैल मजदूर वर्ग के अधिकारों के लिए आवाज उठाते है। जो वर्ग पैसा पैदा करता है, मेहनत करता है, वहीं लाचार हो जाता है, उसे ही पैसा मांगना पड़ता है। अगर मजदूर वर्ग एक हो जाए तो सत्ता पूंजीपतियों के हाथ से निकल मजदूर वर्ग के हाथ में होगी और उनका शासन होगा। वह सोचता है कि कैसे मज़दूरों को संगठित करके क्रांति की जा सकती है।

उपन्यास में वर्णित सामाजिक व्यवस्थाएं :– उपन्यास में सामाजिक व्यवस्थाओं को उजागर करते हुए वे कहते हैं कि समाज में सभी वर्गों की स्वतंत्र सत्ता होनी चाहिए। समाज व्यक्तियों के विकास के लिए ही व्यवस्था करता है। मनुष्य जीवन में समय के साथ परिवर्तन आते हैं, उन्हें उसे स्वीकार करना चाहिए।

पुरानी व्यवस्थाएं यदि उनके विकास में बाधक बन रही है तो उन्हें उसमें परिवर्तन लाना चाहिए। वह कहते हैं 'जैसे बचपन में कोई कपड़ा शरीर पर सी दिया जाए तो उम्र बढ़ने पर दम घोटने लगेगा, वही हालत हमारी सामाजिक व्यवस्थाओं की भी है। उपन्यास का पात्र 'रॉबर्ट' ईसाई धर्म में बहुत विश्वास करता था। उसे सब कुछ भगवान के पुत्र ईसा मसीह में दिखता था। उन्हें गाँधी जी का आचरण ईसाई धर्म के अनुरूप लगा इसलिए वे उन्हें ईसाई बनाना चाहते थे। उस समय धर्मांतरण भी ईसाईयो द्वारा किया जा रहा था, क्योंकि मनुष्य को अपने पक्ष में रखने का सबसे आसान तरीका है, उसमें ईश्वर का भय स्थापित करना। और लोगों को लगता है कि यह उनके कर्मों का फल है और इससे उन्हें सत्ता पक्ष के प्रति कभी क्रोध नहीं आता। बल्कि वे उनकी पूजा करते हैं। इससे शासक वर्ग का स्वार्थ सुरक्षित रहता है। जब रॉबर्ट ने 'हीगल' और 'कार्ल मार्क्स' को पढ़ा तो वह धर्म के मोह से छूट गया।

समाज में ऐसी व्यवस्था है कि अधिक से अधिक संपत्ति इक्ट्ठी की जाए और उनकी पुश्ते आराम से रहें। परंतु मार्क्सवाद के सिद्धांत के अनुसार यह उन लोगों के प्रति अन्याय है जो बिना किसी साधन के रह जाते है और शक्तिशाली वर्ग उन लोगों को उपयोग की वस्तु मात्र बनाकर रखता है।

गांधीवादी समाजवाद और मार्क्सवादी समाजवाद :– राजनीति और समाज सुधार की चिंता मध्यवर्ग में अधिक होती है। निम्न वर्ग अपना रोज़ का गुजर ही बड़ी मुश्किल से कर पाता है और उच्च वर्ग को सिर्फ अपनी स्वार्थ की चिंता होती है। मजदूर वर्ग यदि शोषित वर्ग से शासक वर्ग बनकर अपनी कठिनाइयों को दूर करना चाहता है, तो उसे अपने आर्थिक सुधार के प्रश्न के साथ–साथ राजनीतिक शक्ति प्राप्त करनी होगी। तत्कालीन समय में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व था, परंतु कांग्रेस में जिस श्रेणी के लोग हैं। वे मज़दूरों के हितों की नहीं सोचते। कांग्रेस गांधीवादी समाज से प्रभावित है, जो मालिक की दया पर मजदूर वर्ग के निर्भर रहने की बात सोचती है। इससे मालिक, मालिक रहेंगे और वे कभी नहीं चाहेंगे कि मजदूर मालिक बने। जिसके पास आर्थिक साधन होंगे। वहीं राजनीतिक शक्ति का मालिक होगा। समाज में यदि सबके लिए शिक्षा के समान अवसर होंगे तो सभी अपने अधिकारों को समझेंगे। कोई भी सिर्फ अपना गुजर बसर करने के लिए ऐसी व्यवस्था का पक्षधर नहीं होगा। समाजवाद दो प्रकार से लाया जा सकता है। एक बड़े आदमी गरीबों पर दया करके उनकी स्थिति सुधारने की बात सोंचे। दूसरा गरीब आदमी शासन और अधिकार स्वयं अपने हाथ में ले ले। एक है 'गांधीवादी समाजवाद और दूसरा है मार्क्सवादी समाजवाद'।

शासक वर्ग दुनिया की एक ऐसी व्याख्या प्रस्तुत करता है, जिससे उसके स्वार्थ सुरक्षित रहें। धर्म का नाम लेकर उनके मन में भय उत्पन्न किया जाता है। मज़दूरों की हड़ताल से पूँजीपति वर्ग परेशान था। उन्हें डर था कि वे लोग समाज का नियंत्रण करते आ रहे हैं। कहीं उनसे यह अधिकार छीन न जाए। वे बस मज़दूरों पर दया भाव दिखाना चाहते हैं। शैल के पिता उसे समझाते हुए कहते हैं– "तुम चाहो तो मैं दस– बीस हजार रूपया इन मज़दूरों के बच्चों की पाठशाला या अस्पताल के लिए दे सकता हूँ, परन्तु यह हड़ताल तो युद्ध है। मज़दूरों ने हमें मिटा देने के लिए अपने कष्ट स्वयं खड़े किए हैं । जिस प्रकार देश के प्रति कर्तव्य है, उसी प्रकार अपनी श्रेणी के प्रति भी हमारा एक कर्तव्य है"।[13]

हमें रूढ नहीं बनना चाहिए समय के अनुसार नए विचारों को अपनाना चाहिए। 'दादा' का कथन है–"कितनी जल्दी समय बदल गया है। ऐसा जान पड़ता है कि नदी की धारा ही हट गई और हम सूखी रेती पर आ टिके है। जल की धारा दूसरी ओर घूम गई है। हरीश ठीक कहता है बजाय जल की धारा को घुमाकर नाव के नीचे लाने के नाव को ही उस ओर घसीटना चाहिए मेरा मतलब है जनता की जलधारा से"।[14]

उपन्यास में वर्णित न्याय व्यवस्था :– उपन्यास में न्याय व्यवस्था को दर्शाया गया है। मज़दूरों की मेहनत का पैसा शोषक वर्ग उनसे छीन लेता है और अपने स्वार्थ की पूर्ति करता है। सारे ऐशो आराम भोगता है। हरीश और उनके साथियों पर चोरी और हत्या का आरोप लगाया जाता है, तब भी वे अपने विचार रखते हैं कि न्याय तो सभी के लिए समान है। न्याय प्रत्येक मनुष्य को उसके परिश्रम पर अधिकार देकर दूसरे के परिश्रम को छीनने का अधिकार नहीं देता। एक दिन ऐसा जरूर आएगा जब समय बदलेगा और हरीश और उनके

साथियों का बलिदान मजदूर वर्ग की सत्ता स्थापित करने के प्रयत्न में सहायक होगा। हरीश तो चला गया परंतु क्रांतिकारी का आदर्श कायम कर गया। शैल उसकी साथी है, कामरेड है। कामरेड अर्थात वह व्यक्ति जो अपने अधिकारों के लिए लड़ता है। वह बहुत संघर्ष करता है उसे बहुत सारी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। वह लोगों के हक के लिए उनकी आजादी के लिए उनकी खुशियों के लिए लड़ता है और मंजिल पाने के लिए कुर्बानी देता है।

निष्कर्ष :– इस प्रकार उपन्यास का विवेचन करने से पता चलता है कि यशपाल ने दादा कामरेड में स्त्री की स्वाधीनता, उसका अपना व्यक्तित्व, समाज में उसकी स्थिति, उसे सिर्फ संभोग की वस्तु न समझना, स्वतंत्र अस्तित्व के लिए उसका संघर्ष दिखाया है। वह राजनीतिक पार्टियों के जरिए स्वाधीनता आंदोलन में सहयोग देने वाली प्रगतिशील युवती है। वह बिना डरे सभी परिस्थितियों का सामना करती है। मजदूरों को शोषण से मुक्ति दिलाने के लिए पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर काम करती है। शैल के विचारों से प्रभावित होकर रूढ़िवादी संस्कारों से युक्त यशोदा भी स्वयं के स्वतंत्र अस्तित्व को स्थापित करने का प्रयत्न करती है। वहीं दूसरी ओर हरीश क्रांतिकारी है। वह पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करता है। वह मजदूरों के हक के लिए हड़ताल करता है। वह मजदूर वर्ग की सत्ता स्थापित करने का प्रयत्न करता है। वह चाहता है कि गरीब आदमी शासन और अधिकार अपने हाथों में ले और शोषित वर्ग शासक वर्ग बनकर अपनी कठिनाइयों को दूर करें। वह मजदूरों को संगठित करके क्रांति लाना चाहता है ताकि सत्ता पूंजीपतियों के हाथ से निकलकर मजदूर वर्ग के हाथ में आ जाए।

संदर्भ–सूची :–

1. बजाज, सरोज. यशपाल का उपन्यास साहित्य. नई दिल्ली. दिग्दर्शन चरण जैन ऋषभ चरण जैन एवं संतति. प्रथम संस्करण, 1979. पृ. 76।
2. यशपाल. दादा कामरेड. प्रयागराज. लोकभारती पेपरबैक्स. चौथा संस्करण, 2024. पृ. 9।
3. शर्मा, सुमन. यशपाल के उपन्यासों में नारी चेतना. जयपुर. पैराडाइज पब्लिशर्स. प्रथम संस्करण, 2011. पृ.67।
4. यशपाल. दादा कामरेड. प्रयागराज. लोकभारती पेपरबैक्स. चौथा संस्करण, 2024. पृ. 20।
5. यशपाल. दादा कामरेड. प्रयागराज. लोकभारती पेपरबैक्स. चौथा संस्करण, 2024. भूमिका।
6. मधुरेश. यशपाल रचनात्मक पुनर्वास की एक कोशिश. पंचकूला. आधार प्रकाशन. प्रथम संस्करण, 2006. पृ.293।
7. मधुरेश. यशपाल रचनात्मक पुनर्वास की एक कोशिश. पंचकूला. आधार प्रकाशन. प्रथम संस्करण, 2006. पृ.293।
8. यशपाल. दादा कामरेड. प्रयागराज. लोकभारती पेपरबैक्स. चौथा संस्करण, 2024. पृ. 93।
9. मधुरेश. यशपाल रचनात्मक पुनर्वास की एक कोशिश. पंचकुला. आधार प्रकाशन. प्रथम संस्करण, 2006. पृ. 136।
10. यशपाल. दादा कामरेड. प्रयागराज. लोकभारती पेपरबैक्स. चौथा संस्करण, 2024. पृ. 53।
11. यशपाल. दादा कामरेड. प्रयागराज. लोकभारती पेपरबैक्स. चौथा संस्करण, 2024. पृ. 19।
12. संपादक. मधुरेश. क्रांतिकारी यशपाल एक समर्पित व्यक्तित्व. इलाहाबाद. लोकभारती प्रकाशन. प्रथम संस्करण, 1979. पृ. 79।
13. यशपाल. दादा कामरेड. प्रयागराज. लोकभारती पेपरबैक्स. चौथा संस्करण, 2024. पृ. 110।
14. यशपाल. दादा कामरेड. प्रयागराज. लोकभारती पेपरबैक्स. चौथा संस्करण, 2024. पृ.122।

हिन्दी कविता में बाल विमर्श : सामाजिक सरोकार

डॉ. नलिनी सिंह*

समाज का यथार्थ साहित्य में प्रतिबिंबित होता है। देश और काल की परिस्थितियां उत्थान–पतन, धर्म, शिक्षा, सभ्यता और समस्त गतिविधियों को साहित्य में रुपायित किया जाता है। साहित्य, जीवन के समस्त संदर्भों से सन्दर्भित है। मानव जीवन के समस्त सुःख–दुख, वैभव और विपन्नता का यथार्थ कैनवास है साहित्य।

साहित्यकार की सर्जनात्मका में ये जीवन के सभी विमर्श रुप में बंधते हैं, साहित्यकार उन विमर्शों के माध्यम से, समाज का ही स्वरुप साहित्य के माध्यम से समाज के समक्ष प्रस्तुत करता है। साहित्य के विशाल कैनवास के विविध रंगों में से एक रंग इस शोध पत्र के 'बाल संदर्भ' में देखने का प्रयास है, जहाँ बचपन की भावनाएं, संवेदनाएं, अर्न्तद्वन्द्व एवं उनके वर्तमान और भविष्य से जुड़ी कुछ समस्याएं जो जरुरी हैं साहित्य के माध्यम से व्यक्त करने की, इसे केन्द्र में रखकर शोध पत्र को विस्तृत फलक रुप में रखा गया है।

बाल मन अति कोमल, भावुक होता है, किसी ने उन्हें गीली मिट्‌टी सा कहा तो किसी ने अति बौद्धिक, प्रगतिशील विचार रखने वाला बाल मन कहा। हिन्दी कविता बाल साहित्य का अच्छा प्रमाण है जहाँ कवियों ने कविता के माध्यम से बच्चों के प्रति अपनी संवेदनाएं, अपनी विवशता और उनके भविष्य के प्रति चिंता व्यक्त की है।

बीज शब्द–बालमन, परिवेश, सृजन, सरोकार, अनिवार्यता।

हिन्दी कविता में बालमन को समझने का प्रयास हो रहा है। बच्चे समाज के भावी कर्णधार होते हैं, ''इसलिये बाल साहित्य सिर्फ बच्चों के लिये ही नहीं बड़ों के लिये भी है। बाल मन को समझने के लिये बाल साहित्य सहायक होता है और उसे सभी को पढ़ना चाहिए''। विशेषकर हिन्दी कविताओं की प्रयोजनशीलता पर दृष्टिपात करें तो यह ज्ञात होता है कि ''कविता अपने संरचनागत विशिष्टताओं के कारण रुचिकर, अनुपम और विशिष्ट विधा है, जिनमें हंसी, ठिठोली, वात्सल्य, भावुकता के साथ–साथ गंभीरता पुट भी है''।[1]

'मंगलेश डबराल' की कविता ''बच्चों के लिए चिट्‌ठी'' में ऐसा ही क्षोभ और विवशता दृष्टिगत है जहाँ बच्चों के साथ अपने सम्बन्धों और उनके बाल मन विचारों को सेवित और पुष्ट करने की चिंता भी है और पश्चाताप भी–

''प्यारे बच्चों हम तुम्हारे काम न आ सके
प्यारे बच्चों हमने ही तुम्हें बताया था
जीवन एक युद्ध स्थल है, जहाँ लड़ते ही रहना होता है
हमने झूठ कहा था कि जीवन एक युद्ध स्थल है
प्यारे बच्चे जीवन एक उत्सव है, जिसमें तुम हंसी की तरह फैले हो
जैसा कि कुछ कवियों ने कहा है,
जीवन एक उछलती गेंद है और तुम उसके चारों ओर एकत्र चंचल पैरों की तरह हो
प्यारे बच्चों अगर ऐसा नहीं है तो होना चाहिए''।

***असि0प्रो0–हिन्दी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चुनार, मीरजापुर, उ0प्र0।**

इन पंक्तियों में बाल मन की चिंता है, उनके समुचित एवं सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर पड़ रहे प्रभाव की चिंता है, यदि उनके मानस पर कुछ कहीं गलत अंकित हो रहा है तो उसका उत्तरदायित्व भी हम सभी का है।

जसिंता केरकट्टा की कविता 'मातृभाषा की मौत' में मातृभाषा का अस्तित्व कैसे विलुप्त हो रहा है और उसके अस्तित्व को समाप्त कैसे किया जा रहा है, आज के माता–पिता बच्चों को क्या शिक्षा दे रहे हैं, किस भाषा की ओर ढकेल रहे हैं, यह प्रश्न गम्भीर है कि हम अपनी भावी पीढ़ी के लिए क्या कुछ छोड़ रहे हैं।

इस बात को समझने की जरुरत है–
''माँ के मुँह में ही
मातृभाषा को कैद कर दिया गया
और बच्चे
उसकी रिहाई की मांग करते–करते
बड़े हो गए''।
....
रोटियों के सपने दिखाने वाली
संभावनाओं के आगे
अपने बच्चों के लिए उसने
भींच लिए थे अपने दाँत
और उन निवालों के सपनों
के नीचे दब गई थी मातृभाषा – **(मातृभाषा की मौत)**

माता–पिता पर बच्चों का भविष्य सुदृढ एवं सुरक्षित करने का उत्तरदायित्व है लेकिन प्रकृति के सामने हर मनुष्य बेबस है, शारीरिक अक्षमता के समक्ष माँ–बाप की लाचारी, दुःख और असहाय अवस्था तथा कवि सर्जना में स्मृति की वेदना और विकलता का स्वर मुखर है।

'कुंवर नारायण' की कविता 'एक माँ की लाचारी' में–
''था वह भी एक बच्चा ....
लेकिन हम बच्चों के लिए अजूबा था
क्योंकि हमसे भिन्न था
थोड़ा घबराते थे हम उससे
क्योंकि समझ नहीं पाते थे
उसकी घबराहटों को
न इशारों में कही गई उसकी
बातों को
न उसकी भयभीत आँखों में
हर समय दिखती
उसके अंदर की छटपटाहटों को
जितनी देर वह रहता
पास बैठी माँ
निहारती रहती उसका खेलना
अब जैसे–जैसे कुछ बेहतर
समझने लगा हूँ उनकी भाषा
जो बोल नही पाते हैं
याद आती

रतन से अधिक
उसकी माँ की आँखों में
झलकती उसकी बेबसी।[2] (एक माँ की लाचारी–कुंवर नारायण)

बालमन पर बोझ डालना कहीं से भी उचित नहीं है, न ही अपनी इच्छा का बोझ उठाने के लिए बच्चों को विवश करना क्योंकि अधिकतर ऐसा करना घातक सिद्ध होता है। अपेक्षाओं के बोझ तले बच्चों का वर्तमान और भविष्य दोनों अधर में पड़ जाता है। **सत्येन्द्र कुमार** की कविता 'पीठ पर बोझ लादे भागते बच्चे'– इसमें व्यक्त किया गया है आज के परिवेश में बच्चों पर अतिरिक्त अपेक्षाओं का बोझ कैसे डाला जा रहा है–

''उनके बच्चे जल्दी–जल्दी बढ़े
और पहाड़ हो जाएँ
जल्दी–जल्दी बहें
और समुद्र हो जाएं
उन्होनें बच्चों की पीठ पर लाद
दिए
बड़े–बड़े पहाड़
बड़ी–बड़ी नदियाँ''

निश्चित रुप से यह एक गंभीर प्रश्न है। शिक्षा का बदलता स्वरुप, माँ–बाप की विशाल अपेक्षाएं और शीघ्र परिणाम पाने का बोझ बच्चों पर डालना, समाज में झूठा स्तर स्थापित करने का कृत्य है। **सत्येन्द्र कुमार** की कविता में इस पर विचार किया गया है।

''हमारे समय में
शब्दों में ही बचे रह गए हैं बच्चे
और किताबों तक ही रह गए हैं
उनके बचपन की कारगुजारियों
के किस्से
हमारे समय के बच्चों का दुःख
कविताओं में जगह पाकर भी उसका
बड़ा हिस्सा
छटपटाता रह जाता है''।[3]

बचपन से सुखद कोई अवस्था नहीं है और माँ से बढ़कर आत्मीय दूसरा कोई सम्बन्ध नहीं। इसलिए माँ के सानिध्य में रहने की इच्छा प्रबल है। **सुमित्रानंदन पंत** की कविता ''**मैं सबसे छोटी होऊँ**'' में बालमन की इच्छा को देखा जा सकता है–

मैं सबसे छोटी होऊँ''
तेरा अंचल पकड़–पकड़ कर
फिरुं सदा माँ तेरे साथ
कभी न छोड़ हाथ।

माँ के सानिध्य के साथ–साथ सुरक्षित अहसास प्राप्त करना भी बालमन की इच्छा है–

''ऐसे बड़ी न होऊँ'' मैं
तेरा स्नेह न खोऊँ मैं
तेरे अंचल की छाया में
छिपी रहूँ निस्पृह निभय
कहूँ दिखा दे चन्द्रोदय''।[4]

बालमन की चाह परी कथाएं सुनना होता है, खिलौनों की मांग करना लेकिन समय ने इन आकांक्षाओं और परिभाषाओं का नया रुप गढ़ दिया है जहाँ सिर्फ पुस्तकों में ही बच्चा हर परिस्थिति को समझता है, माता–पिता, परम्परा और अपेक्षा की प्रतीक्षा में बालमन में चल रही आकांक्षाओं को न समझते हैं, न समय दे पाते हैं। **अवधेश कुमार** की कविता 'बच्चा' शीर्षक में इस प्रश्न को उठाया गया है–

बच्चा अपने आप से कम से कम
क्या मांग सकता है?
एक चाँद,
एक शेर,
किसी परी कथा में अपनी हिस्सेदारी
या आपका जूता।
आप उसे ज्यादा से ज्यादा क्या दे सकते हैं?
आप उसे दे सकते हैं केवल एक चीज–
अपना जूता
बाकी तीन तीन
चीजें आप किताब के हवाले कर देते हैं
कि फिर वह बच्चा जिदंगी भर सोचता
रह जाता है
कि अपना पैर किसमे डालें
उस किताब में या आपके जूते में''।[5]

परम्परा और आधुनिकता दोनो की कवायद झेलने को बच्चे विवश हैं, जिनका परिणाम अल्पवय में 'आत्महत्या' और हिंसक स्वभाव के रुप में सामने आ रहा है। आर्थिक रुप से अशक्त परिवारों में बच्चों को 'काम' करने के लिए विवश किया है। **राजेश जोशी** की कविता ''बच्चे काम पर जा रहे हैं'' में इस गंभीर प्रश्न को उठाया गया है–

''कुहरे से ढँकी सड़क पर बच्चे काम
पर जा रहे हैं
सुबह–सुबह
बच्चे काम पर जा रहे हैं
हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह
भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा
जाना
लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह
काम पर क्यों जा रहें हैं बच्चे'' (राजेश जोशी)

वे प्रश्न करते हैं–

''क्या अंतरिक्ष में गिर गई हैं सारी गेंदें
क्या दीमकों ने खा लिया है
सारी रंग–बिरंगी किताबों को
क्या काले पहाड़ के नीचे दब गए हैं
सारे खिलौने
क्या किसी भूकंप में ढह गई हैं
सारे मदरसों की इमारतें
क्या सारे मैदान, सारे बगीचे
और घरों के आँगन

खत्म हो गए हैं एकाएक
तो फिर बचा ही क्या है इस
दुनिया में?[6]

इस समाज के कठोर सत्य पर जोरदार प्रहार करती है, **'अश्विनी पाठक'** की कविता', जहॉ लड़की को जन्म से पहले ही मृत्यु दे दी जाने की क्रूर अमानवीयता को उजागर किया गया है, लड़के और लड़की के बीच भेद–भाव की अनुचित व्यावहारिकता पर प्रहार किया गया है ''अजन्मी बेटी'' शीर्षक कविता में यथा–

उदर कुक्षी से बोल रही है
एक अजन्मी बेटी
माँ मेरी विनती सुन लेना
बस तू लेटी–लेटी
नहीं चाहते पापा, देखूं
मैं यह सुन्दर दुनिया
मत अस्तित्व मिटा तू मेरा
माँ मुझको आने दे
बेटा और बेटी में अन्तर
यह दुनियां क्यो करती?
अगर न बेटी हुई, बचेगी
फिर कैसे यह धरती?[7]

यह प्रश्न किसी एक व्यक्ति के लिए नहीं वरन पूरे समाज के लिए है। सोच एवं समाज में निहित प्रश्नों को समझने का प्रयास हिन्दी कवियों ने किया है। ''हिन्दी बाल कविता में समूचे लोक हृदय का सुख–दुःख स्पन्दित हुआ है। लोक हृदय की संवेदनाओं को अनदेखा करके स्थायी महत्व का साहित्य भी नहीं रचा जा सकता है चाहे वह बच्चा के लिए लिखा जाने वाला साहित्य ही क्यों न हो, पर लोक से जुड़ना हर किसी के वश की बात नहीं। संवेदनशील रचनाकर ही ऐसा कर सकता है। हर्ष की बात यह है कि हिन्दी के सिद्धहस्त बाल कवियों में सामाजिक सरोकार पूरी संजीदगी के साथ मुखरित हुए हैं''।[8]

सामाजिक परिवर्तन के साथ–साथ हिन्दी बाल कविताओं के विषय की रचनात्मकता में भी परिवर्तन आए हैं और यही कवि सृजनशीलता की सार्थकता भी है। बाल मन को समझना, उन्हें समाज की धारा से जोड़ने का प्रयास बच्चों के व्यक्तित्व विकास के साथ–साथ सामाजिक विकास में भी सहायक होता है, इसलिये आवश्यक है कि बाल कविताओं की सृजनशीलता उर्वर बनी रहे।

सन्दर्भ–सूची :–

1. दिविक रमेश, जनसत्ता, संवाददाता, नई दिल्ली 15 अक्टूबर (दिविक रमेश, सम्पादक पुस्तक–प्रतिनिधि बाल कविता संचयन, के लोकार्पण पर कहे गये वक्तव्य के अंश)।
2. नारायण कुँवर, पुस्तक–रिमझिम, पृष्ठ–68, एन0सी0ई0आर0टी0 प्रकाशन।
3. कुमार सत्येन्द्र, पुस्तक–हे गार्गी, पृष्ठ–34 रश्मि प्रकाशन, संस्करण–2018।
4. सुमित्रानंदन, पुस्तक–बसंत, भाग–1 पृष्ठ–79, एन0सी0ई0आर0टी0 प्रकाशन, संस्करण–2022।
5. कुमार अवधेश, कविता–बच्चा, (कविता कोश)।
6. जोशी राजेश, पुस्तक–क्षितिज, भाग–1, पृष्ठ–104, एन0सी0ई0आर0टी0 प्रकाशन, संस्करण–2022।
7. पाठक अश्विनी कुमार, तुम धरती के राजदुलारे, काव्य संग्रह, पृष्ठ–25।
8. यादव उषा, सिंह राज किशोर, हिन्दी बाल साहित्य और बाल विमर्श, पृष्ठ–101, सामयिक प्रकाशन दिल्ली–2014।

भारतीय ज्ञान परंपरा में बौद्ध नैतिकता का स्थान और योगदान

शनि मिश्रा*

सारांश :– बौद्ध नैतिकता भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक अभिन्न अंग है, क्योंकि यह नैतिक मूल्यों और सिद्धांतों का एक विशिष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है, जिसने भारतीय संस्कृति और समाज को सदियों से प्रभावित किया है। बौद्ध नैतिकता करुणा, अहिंसा और सामाजिक उत्तरदायित्व पर बल देती है, जो भारतीय संस्कृति और समाज में गहराई से निहित मूल्य हैं। इन मूल्यों ने भारतीय इतिहास और संस्कृति को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और आज भी सामाजिक न्याय, पर्यावरणीय स्थिरता और मानवाधिकार जैसे समकालीन मुद्दों पर विमर्श के लिए प्रासंगिक बने हुए हैं।

बौद्ध नैतिकता एक परिष्कृत दार्शनिक प्रणाली पर आधारित है, जो वास्तविकता के स्वरूप, दुःख के स्वरूप और मुक्ति के मार्ग का अन्वेषण करती है। इस प्रणाली ने भारतीय दर्शन और तत्त्वमीमांसा पर गहरा प्रभाव डाला है और विभिन्न परंपराओं के विचारकों और दार्शनिकों को प्रभावित किया है। बौद्ध साहित्य, जैसे त्रिपिटक और जातक कथाएँ, भारतीय साहित्य और कथा परंपराओं पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल चुकी हैं, जिससे पीढ़ी दर पीढ़ी लेखकों और कलाकारों को प्रेरणा मिलती रही है। बौद्ध कला और वास्तुकला, जैसे अजंता और एलोरा की गुफाएँ, भारतीय कला और वास्तुकला पर गहरा प्रभाव डाल चुकी हैं और विभिन्न शैलियों तथा तकनीकों के विकास को प्रभावित किया है। इस प्रकार, बौद्ध नैतिकता भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक महत्वपूर्ण भाग है, जो नैतिक मूल्यों और सिद्धांतों का एक अनूठा दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है और भारतीय संस्कृति, दर्शन, साहित्य तथा कला को निरंतर रूप से प्रभावित कर रही है। यह शोध पत्र इस विषय पर चर्चा करता है कि भारतीय ज्ञान प्रणाली में बौद्ध नैतिकता क्यों महत्वपूर्ण है और इस महत्वपूर्ण क्षेत्र के कौन–कौन से प्रमुख आयाम हैं।

मुख्य शब्द :– सचेतनता, प्रज्ञा, अनासक्ति, बोधिसत्त्व ,थेरवाद, आत्म–अनुशासन, अष्टांगिक मार्ग आदि।

परिचय :– बौद्ध धर्म एक धर्म और दर्शन है, जिसकी उत्पत्ति प्राचीन भारत में लगभग 2,500 वर्ष पूर्व हुई थी। इसे सिद्धार्थ गौतम, जिन्हें बुद्ध के नाम से भी जाना जाता है, ने स्थापित किया था। बुद्ध का जीवनकाल लगभग 563 ईसा पूर्व से 483 ईसा पूर्व माना जाता है। बौद्ध धर्म समय के साथ पूरी दुनिया में फैल गया और आज यह एक प्रमुख धर्म बन चुका है। बौद्ध धर्म भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक अभिन्न अंग है, जिसमें हज़ारों वर्षों में भारतीय उपमहाद्वीप में विकसित हुई विभिन्न दार्शनिक, आध्यात्मिक और व्यावहारिक शिक्षाएँ सम्मिलित हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली में बौद्ध धर्म एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है, और इसकी शिक्षाएँ आज भी भारतीय संस्कृति, दर्शन और आध्यात्मिकता पर गहरा प्रभाव डाल रही हैं।

बौद्ध धर्म की जड़ें प्राचीन भारत में हैं, जहाँ यह तत्कालीन धार्मिक और दार्शनिक परंपराओं के उत्तर के रूप में विकसित हुआ। यह धर्म ने भारतीय ज्ञान प्रणाली को विशेष रूप से दर्शन, नैतिकता और मनोविज्ञान के क्षेत्रों में प्रभावित किया। बुद्ध की शिक्षाएँ, जिनमें वास्तविकता के स्वरूप, दुःख के कारण और मुक्ति के मार्ग की व्याख्या की गई है, भारत की प्रमुख दार्शनिक परंपराओं, जैसे वेदांत, जैन और योग को भी प्रभावित कर चुकी हैं। बौद्ध धर्म ने भारतीय नैतिकता को भी विकसित करने में योगदान दिया, जिसमें करुणा, अहिंसा और अनासक्ति को एक सदाचारी जीवन के लिए आवश्यक माना गया। कर्म के बौद्ध सिद्धांत, जो कार्यों और उनके परिणामों के संबंध को समझाते हैं, ने भारतीय नैतिक विचारधारा पर भी गहरा प्रभाव डाला है। इसके अलावा, बौद्ध धर्म ने भारतीय मनोविज्ञान के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, विशेष रूप से स्मृति के क्षेत्र में। बुद्ध की शिक्षाओं में स्मृति (पालि भाषा में 'सति') के विकास पर ज़ोर दिया गया, जिसने भारतीय चिंतन में मन और चेतना के अध्ययन की पद्धति को प्रभावित किया।

भारतीय ज्ञान प्रणाली में बौद्ध धर्म का इतिहास :– भारतीय ज्ञान प्रणाली में बौद्ध धर्म का इतिहास 6वीं शताब्दी ईसा पूर्व तक जाता है, जब इसे सिद्धार्थ गौतम द्वारा स्थापित किया गया था। उस समय भारत एक समृद्ध और

***शोध छात्र, प्राचीन इतिहास,संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज।**

विविध सभ्यता थी, जहाँ विभिन्न धार्मिक और दार्शनिक परंपराएँ विद्यमान थीं। बौद्ध धर्म ब्राह्मणवाद, जैन धर्म और अन्य तपस्वी परंपराओं की पृष्ठभूमि में एक नई वैचारिक धारा के रूप में उभरा। बुद्ध की शिक्षाएँ चार आर्य सत्य पर केंद्रित थीं, जिनमें दुःख का स्वरूप, उसके कारण और उससे मुक्ति का मार्ग (आष्टांगिक मार्ग) समझाया गया था। समय के साथ, बौद्ध धर्म भारत में एक प्रमुख दार्शनिक और धार्मिक परंपरा बन गया, जिसका भारतीय संस्कृति और समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। बौद्ध शिक्षाएँ भारतीय जीवन के कई पहलुओं में समाहित हो गईं, जिनमें कला, साहित्य, चिकित्सा और दर्शन शामिल थे। मौर्य साम्राज्य (322–185 ईसा पूर्व) के दौरान बौद्ध धर्म को सम्राट अशोक का राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ। अशोक ने बुद्ध के उपदेशों को अपने साम्राज्य और उसके बाहर फैलाया, जिससे बौद्ध धर्म एक प्रमुख धार्मिक और सांस्कृतिक शक्ति बन गया। अशोक के शासनकाल में बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए कई स्तूपों, विहारों और शिक्षण संस्थानों का निर्माण किया गया, जिससे यह धर्म और अधिक व्यापक रूप से फैला।

भारतीय ज्ञान प्रणाली में बौद्ध धर्म का प्रभाव और ग्रंथों में प्रमाण :– समय के साथ, कई महत्वपूर्ण बौद्ध स्मारकों का निर्माण हुआ, जिनमें प्रसिद्ध सांची स्तूप प्रमुख है। हालांकि, समय बीतने के साथ भारत में बौद्ध धर्म का पतन होने लगा, क्योंकि अन्य दार्शनिक और धार्मिक परंपराएँ अधिक प्रभावशाली होती गईं। हिंदू धर्म के उत्थान, मौर्य साम्राज्य के पतन और विदेशी आक्रमणों जैसे विभिन्न कारकों ने भारत में बौद्ध धर्म की गिरावट में योगदान दिया। आज भी, बौद्ध धर्म भारतीय ज्ञान प्रणाली का एक महत्वपूर्ण भाग बना हुआ है, और इसका भारतीय संस्कृति, दर्शन और आध्यात्मिकता पर गहरा प्रभाव है। बुद्ध की शिक्षाएँ आज भी विश्वभर में लाखों लोगों को प्रेरित कर रही हैं, और भारत में बौद्ध धर्म की विरासत देश की समृद्ध बौद्धिक और आध्यात्मिक धरोहर का एक महत्वपूर्ण अंग बनी हुई है।

बौद्ध नैतिकता ग्रंथों में प्रमाण :– बौद्ध नैतिकता का उल्लेख कई बौद्ध ग्रंथों में किया गया है। यहाँ कुछ प्रमुख ग्रंथ दिए गए हैं:

1. **धम्मपद :** धम्मपद बुद्ध के प्रवचनों का एक संकलन है, जिसमें बौद्ध नैतिकता से संबंधित अनेक विषयों पर चर्चा की गई है। इसे थेरवाद बौद्ध परंपरा के सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथों में से एक माना जाता है।
2. **विनय पिटक :** विनय पिटक पालि कैनन के तीन प्रमुख वर्गों में से एक है, जो मुख्य रूप से थेरेवाद परंपरा का मूल ग्रंथ है। इसमें भिक्षुओं और भिक्षुणियों के आचरण के नियम और अनुशासन संबंधी मार्गदर्शन दिया गया है। यह नैतिक आचरण और आत्म–अनुशासन के महत्व पर जोर देता है।
3. **सुत्त पिटक :** सुत्त पिटक भी पालि कैनन का एक प्रमुख भाग है, जिसमें बुद्ध के उपदेशों का विस्तृत संकलन है। इनमें नैतिक विषयों पर कई प्रवचन शामिल हैं, जैसे पाँच शील और चार ब्रह्मविहार (मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा) की साधना।
4. **अभिधम्म पिटक :** अभिधम्म पिटक पालि कैनन का तीसरा भाग है, जिसमें बौद्ध धर्म के सिद्धांतों और मनोविज्ञान का गहन विश्लेषण किया गया है। इसमें कर्म, पुनर्जन्म और अष्टांगिक मार्ग जैसे नैतिक विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई है।
5. **महायान सूत्र :** महायान सूत्र ग्रंथों का एक व्यापक संग्रह है, जो महायान बौद्ध धर्म का आधार बनाता है। इनमें करुणा, प्रज्ञा और बोधिसत्व आदर्श पर विशेष बल दिया गया है।
6. **सद्धर्म पुण्डरीक सूत्र :** महायान बौद्ध धर्म के सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथों में से एक है। यह उपाय–कौशल की अवधारणा पर जोर देता है, जिसमें विभिन्न शिक्षण विधियों का उपयोग कर लोगों को धर्म का मार्ग दिखाने की बात कही गई है।

इन ग्रंथों में बौद्ध नैतिकता, अहिंसा, करुणा और आत्म–अनुशासन के महत्व को दर्शाया गया है, जो भारतीय ज्ञान प्रणाली में इसकी गहरी जड़ों को प्रमाणित करता है।

भारतीय वैदिक दर्शन व बौद्ध दर्शन :– वैदिक और बौद्ध नैतिकता दोनों ही नैतिक आचरण, नैतिक सिद्धांतों और सदाचरण के महत्व पर बल देते हैं। दोनों यह मानते हैं कि उत्तम नैतिक आचरण और सद्कर्म एक शांतिपूर्ण और सुखद जीवन का मार्ग प्रशस्त करते हैं। वैदिक और बौद्ध नैतिकता में धर्म की अवधारणा केंद्रीय स्थान रखती है। धर्म का अर्थ धार्मिकता, कर्तव्य और सदाचरण है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में अपनाना चाहिए। वैदिक नैतिकता धार्मिक अनुष्ठानों और कर्तव्यों के पालन पर अधिक बल देती है, जबकि बौद्ध नैतिकता

ज्ञान, करुणा और अष्टांगिक मार्ग के अभ्यास पर केंद्रित होती है। वैदिक नैतिकता परिवार, समाज और ब्रह्मांड के प्रति कर्तव्य और उत्तरदायित्व के विचार को बढ़ावा देती है, जबकि बौद्ध नैतिकता व्यक्ति की नैतिक ज़िम्मेदारी और आत्मज्ञान की प्राप्ति पर ज़ोर देती है।

वैदिक दर्शन परम सत्ता या ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करता है, जबकि बौद्ध दर्शन किसी परम सत्ता या सृजनकर्ता ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करता है। वैदिक नैतिकता जाति व्यवस्था को मान्यता देती है, जिसमें जन्म के आधार पर सामाजिक स्थिति और कर्तव्यों का निर्धारण किया जाता है, जबकि बौद्ध नैतिकता जाति व्यवस्था को अस्वीकार करती है और सभी व्यक्तियों की समानता का समर्थन करती है। हालाँकि, वैदिक और बौद्ध नैतिकता में कुछ समानताएँ हैं, लेकिन उनके दार्शनिक मूलभूत सिद्धांतों और नैतिक शिक्षाओं में महत्वपूर्ण अंतर भी हैं। भारतीय ज्ञान प्रणाली में वैदिक दर्शन और बौद्ध दर्शन दोनों का महत्वपूर्ण स्थान है, लेकिन उनके विचारों की भिन्नता उन्हें विशिष्ट बनाती है। परम वास्तविकता का स्वरूप– वैदिक दर्शन में परम वास्तविकता को ब्रह्म के रूप में वर्णित किया गया है, जो संपूर्ण ब्रह्मांड में व्याप्त एक दिव्य सत्ता है। बौद्ध दर्शन आत्मा या स्थायी आत्म के अस्तित्व को नकारता है और परम वास्तविकता को शून्यता के रूप में वर्णित करता है।

कर्म की भूमिका :– वैदिक दर्शन में कर्म को उच्च अस्तित्व की प्राप्ति या जन्म–मरण के चक्र से मुक्ति का साधन माना जाता है। बौद्ध दर्शन में कर्म को कार्यों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली परस्पर निर्भरता के रूप में देखा जाता है, जो यह दर्शाता है कि प्रत्येक क्रिया का प्रभाव अन्य सभी घटनाओं पर पड़ता है। इन बुनियादी अंतरों के कारण वैदिक और बौद्ध दर्शन भारतीय ज्ञान प्रणाली में दो अलग–अलग, लेकिन महत्वपूर्ण दिशाओं का निर्माण करते हैं।

कर्म और मोक्ष की अवधारणा :– वैदिक दर्शन में कर्म को एक शक्ति के रूप में देखा जाता है, जो जन्म और पुनर्जन्म के चक्र को प्रभावित करता है। मोक्ष प्राप्ति के लिए ज्ञान योग, भक्ति योग और कर्म योग जैसे विभिन्न मार्गों को अपनाने की बात कही गई है। बौद्ध दर्शन में कर्म को एक बंधनकारी शक्ति माना जाता है, जो दुख के चक्र को बनाए रखता है। बौद्ध परंपरा में अष्टांगिक मार्ग को अपनाने पर बल दिया जाता है, ताकि कर्म के निरंतर प्रभाव से मुक्ति पाई जा सके और निर्वाण प्राप्त किया जा सके।

नैतिकता की अवधारणा :– वैदिक दर्शन में धर्म को नैतिकता और जीवन का मूल सिद्धांत माना गया है, जो मानव व्यवहार को नियंत्रित करता है। बौद्ध दर्शन में नैतिकता का आधार चार आर्य सत्य और अष्टांगिक मार्ग है, जो जीवन में दुख की वास्तविकता और उससे मुक्ति के मार्ग को दर्शाते हैं।

आत्मा की भूमिका :– वैदिक दर्शन में आत्मा को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। आत्मा को परम तत्व (ब्रह्म) का अंश माना जाता है, जो अमर और शाश्वत है। बौद्ध दर्शन में आत्मा के अस्तित्व को नकार दिया जाता है। बौद्ध मत के अनुसार, आत्मा एक अस्थायी निर्माण है, जो विभिन्न कारणों और परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होता है और समाप्त हो जाता है।

वैदिक और बौद्ध नैतिकता की समानताएँ और भिन्नताएँ

समानताएँ:

1. दोनों ही दर्शन अहिंसा , करुणा और आत्मसंयम को अत्यधिक महत्व देते हैं।
2. दोनों में कर्म की अवधारणा को प्रमुखता दी गई है, जो यह दर्शाती है कि प्रत्येक व्यक्ति के कार्यों का प्रभाव उसके भविष्य पर पड़ता है।
3. ध्यान और जागरूकता को आत्म–सुधार और आत्मज्ञान के साधन के रूप में स्वीकार किया गया है।

भिन्नताएँ:

1. वैदिक नैतिकता में सामाजिक उत्तरदायित्व और कर्तव्य पर जोर दिया जाता है, जबकि बौद्ध नैतिकता व्यक्तिगत जिम्मेदारी और आत्मज्ञान पर केंद्रित होती है।
2. वैदिक परंपरा में सामाजिक व्यवस्था (जैसे जाति व्यवस्था) को मान्यता दी जाती है, जबकि बौद्ध परंपरा समानता और सम्यक् आचरण पर बल देती है।

बौद्ध नैतिकता – बौद्ध नैतिकता वे नैतिक सिद्धांत और मूल्य हैं, जो बौद्ध धर्म के अनुयायियों के व्यवहार और कार्यों का मार्गदर्शन करते हैं। ये नैतिक सिद्धांत बुद्ध की शिक्षाओं पर आधारित हैं और आध्यात्मिक विकास, करुणा और अपने साथ–साथ दूसरों के लिए भी दुखों को कम करने पर बल देते हैं।

बौद्ध नैतिकता के प्रमुख तत्व

पाँच शील – ये नैतिक आचरण के लिए पाँच दिशानिर्देश हैं, जिनका पालन बौद्ध अनुयायियों को करना चाहिए,ये निम्न है– अहिंसा, सत्य भाषण, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, नशा का त्याग। बौद्ध नैतिकता आत्म–संयम, करुणा और नैतिक शुद्धता पर आधारित है, जो व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में शांति और सद्भावना को बढ़ावा देती है। अशोक बौद्ध धम्म विषय में प्रश्न करता हैं "कियम् चु धम्मे ?"(दूसरा स्तंभ लेख) की व्याख्या दूसरे और सप्तम स्तंभ लेख में करता हैं –अपासिनवेबहुकयानेदयादानेसचेसोचयेमाददेसाधवे च (सप्तम स्तंभ लेख)।

अष्टांगिक मार्ग :– अष्टांगिक मार्ग बौद्ध अनुयायियों को सही आचरण और आत्मज्ञान की ओर मार्गदर्शन करने वाले आठ सिद्धांतों का एक समूह है:

1. सम्यक् दृष्टि– जीवन और सत्य की वास्तविकता को समझना।
2. सम्यक् संकल्प – अच्छे विचार और सद्भावना रखना।
3. सम्यक् वाणी – सत्य और मधुर वचन बोलना।
4. सम्यक् कर्म – नैतिक और सही आचरण करना।
5. सम्यक् आजीविका – सही और नैतिक तरीके से जीवनयापन करना।
6. सम्यक् प्रयास – बुरी आदतों को छोड़कर अच्छे गुणों को अपनाने का प्रयास करना।
7. सम्यक् स्मृति – अपने विचारों, भावनाओं और परिवेश के प्रति सचेत रहना।
8. सम्यक् समाधि – ध्यान और एकाग्रता के माध्यम से आत्म–जागृति प्राप्त करना।

बौद्ध नैतिकता के प्रमुख सिद्धांत

1. **करुणा –** बौद्ध धर्म सभी जीवों के प्रति करुणा और दयालुता विकसित करने पर बल देता है, जिससे व्यक्ति दूसरों के प्रति समझदारी और प्रेमपूर्ण व्यवहार कर सके।
2. **अलगाव –** बौद्ध धर्म सिखाता है कि भौतिक वस्तुओं और सांसारिक इच्छाओं से जुड़ाव दुख का कारण बनता है। इसलिए, अनुयायियों को इनसे मुक्त होने और आत्म–संयम अपनाने के लिए प्रेरित किया जाता है।
3. **सचेतनता –** वर्तमान क्षण में अपने विचारों, भावनाओं और परिवेश के प्रति जागरूक रहना, बिना किसी निर्णय या विचलन के।
4. **परस्पर संबद्धता –** बौद्ध धर्म इस बात पर ज़ोर देता है कि सभी जीव आपस में जुड़े हुए हैं और इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को दूसरों और पृथ्वी के कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए।

बौद्ध नैतिकता नैतिक आचरण, करुणा और जागरूकता को बढ़ावा देने पर केंद्रित है, ताकि आत्मिक विकास हो सके और स्वयं व दूसरों के दुखों को कम किया जा सके।

आधुनिक समय में बौद्ध नैतिकता की आवश्यकता :– आज के युवाओं को सोशल मीडिया, साथियों का दबाव, शैक्षणिक तनाव और एक अनिश्चित और तेजी से बदलती दुनिया में जीवन जीने की चुनौती का सामना करना पड़ता है। ऐसे में, बौद्ध नैतिकता उन्हें महत्वपूर्ण मार्गदर्शन और समर्थन प्रदान कर सकती है, जिससे वे एक संतोषजनक और सार्थक जीवन जी सकें। बौद्ध नैतिकता आधुनिक जीवन की चुनौतियों का सामना करने, व्यक्तिगत विकास को बढ़ावा देने और समाज के कल्याण में योगदान देने के लिए आवश्यक उपकरण प्रदान कर सकती है। बौद्ध धर्म ने मानवता को सुखी जीवन जीने में कैसे सहायता की है?

1. सचेतनता– बौद्ध धर्म का एक प्रमुख सिद्धांत सचेतनता का अभ्यास करना है, जिसमें वर्तमान क्षण में अपने विचारों, भावनाओं और परिवेश के प्रति जागरूक रहना शामिल है। सचेतनता के अभ्यास से व्यक्ति तनाव और चिंता को कम कर सकते हैं और अपने दैनिक जीवन में अधिक संतोष प्राप्त कर सकते हैं।
2. करुणा– बौद्ध धर्म करुणा और सहानुभूति पर विशेष बल देता है, जिससे व्यक्ति सभी जीवों के प्रति दयालुता और समझदारी से व्यवहार करना सीखते हैं। करुणा के विकास से व्यक्ति दूसरों के साथ मजबूत संबंध बना सकते हैं और अधिक खुशी और संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

3. अलगाव– बौद्ध धर्म यह सिखाता है कि भौतिक वस्तुओं और सांसारिक इच्छाओं से लगाव ही दुख का मूल कारण है। इसलिए, व्यक्ति को इनसे मुक्त होने और आत्म–संयम को अपनाने के लिए प्रेरित किया जाता है। अलगाव को अपनाकर व्यक्ति अधिक स्वतंत्रता और संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

बौद्ध नैतिकता का पालन करने से व्यक्ति मानसिक शांति, आत्म–जागरूकता और जीवन में संतुलन प्राप्त कर सकते हैं, जिससे एक सुखी और संतोषजनक जीवन संभव हो सकता है।

प्रज्ञा :– बौद्ध धर्म सिखाता है कि आनंद और आंतरिक शांति प्राप्त करने के लिए प्रज्ञा (बुद्धिमत्ता) और अंतर्दृष्टि आवश्यक हैं। यह विभिन्न शिक्षाओं और अभ्यासों के माध्यम से व्यक्तियों को अधिक ज्ञान और समझ विकसित करने में सहायता करता है। प्रज्ञा का विकास करके व्यक्ति स्वयं को और अपने आसपास की दुनिया को गहराई से समझ सकते हैं और अपने जीवन में अधिक अर्थ और उद्देश्य प्राप्त कर सकते हैं।

कल्याण को बढ़ावा देना :–

1. स्वस्थ मानसिक स्थिति– करुणा का विकास करने से अकेलेपन और अलगाव की भावनाएँ कम होती हैं, तनाव के स्तर घटते हैं और आनंद, कृतज्ञता और संतोष जैसी सकारात्मक भावनाएँ बढ़ती हैं। इससे व्यक्ति चुनौतियों का सामना करने में अधिक सक्षम होता है और जीवन से अधिक संतुष्टि प्राप्त करता है।
2. नकारात्मक भावनाओं में कमी– करुणा को क्रोध, द्वेष और ईर्ष्या जैसी नकारात्मक भावनाओं के विपरीत माना जाता है। जब हम करुणा का अभ्यास करते हैं, तो हम अधिक धैर्यवान, समझदार और स्वीकार्य बनते हैं, जिससे ये नकारात्मक भावनाएँ कम होती हैं और आंतरिक शांति बढ़ती है।
3. शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार– शोध से पता चला है कि करुणा का अभ्यास करने से रक्तचाप कम होता है और हृदय रोगों का खतरा घटता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि करुणा तनाव को कम करने में मदद करती है, जो हमारे शारीरिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालती है।

करुणा का अभ्यास हमें अधिक खुशहाल और संतोषजनक जीवन जीने में मदद करता है। यह सकारात्मक भावनाओं को बढ़ावा देता है, रिश्तों को मजबूत करता है, नकारात्मक भावनाओं को कम करता है और शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार लाता है। जब हम अपने और दूसरों के प्रति करुणा रखते हैं, तो हम अपने लिए और अपने आसपास के लोगों के लिए अधिक शांतिपूर्ण और सामंजस्यपूर्ण दुनिया बना सकते हैं।

अनासक्ति– अनासक्ति का अभ्यास करके हम अधिक संतुलित, स्वतंत्र और आनंदपूर्ण जीवन जी सकते हैं। यह हमें वर्तमान क्षण की सराहना करने, अधिक सचेत रहने और अपने जीवन में संतोष और शांति प्राप्त करने में सहायता करता है। अनासक्ति को अपनाने के निम्न लाभ हैं–

1. अधिक संतोष और तृप्ति
2. कष्टों में कमी
3. स्वतंत्रता की अनुभूति
4. सचेतनता में वृद्धि

युवाओं के लिए नैतिक मार्गदर्शन का महत्व–

1. व्यक्तिगत मूल्यों को बढ़ावा देना
2. मजबूत रिश्ते बनाना
3. निर्णय लेने की क्षमता में सुधार
4. सामाजिक उत्तरदायित्व को बढ़ावा देना

आंतरिक शांति, नैतिक मार्गदर्शन, अनासक्ति और सहानुभूति जैसे बौद्ध सिद्धांत युवाओं और समाज को एक सुखी और संतुलित जीवन जीने में सहायता कर सकते हैं।

आंतरिक शांति के लाभ :–

1. मानसिक स्वास्थ्य में सुधार
2. शारीरिक स्वास्थ्य में सुधार,
3. संबंधों में सुधार

बौद्ध नैतिकता का दैनिक जीवन में प्रयोग :– बौद्ध नैतिकता को दैनिक जीवन में लागू करने के कई तरीके हैं, और ऐसा करके व्यक्ति अधिक आंतरिक शांति, खुशी और कल्याण उत्पन्न कर सकते हैं, साथ ही एक अधिक करुणामय और सामंजस्यपूर्ण दुनिया में योगदान भी दे सकते हैं।

1. करुणाः बौद्ध नैतिकता का एक मूलभूत पहलू सभी जीवों के प्रति करुणा का अभ्यास करना है। इसे दैनिक जीवन में इस प्रकार दिखाया जा सकता है– दूसरों के प्रति दयालुता और सहानुभूति दिखाना, समय और संसाधनों में उदार होना, और दुनिया में दुःख को कम करने के लिए सक्रिय रूप से काम करना।

2. अहिंसाः बौद्ध नैतिकता का एक और महत्वपूर्ण पहलू अहिंसा है। इसे दैनिक जीवन में इस प्रकार दिखाया जा सकता है— स्वयं और दूसरों को कोई हानि न पहुँचाना, आक्रामक या टकरावपूर्ण व्यवहार से बचना, और सभी रिश्तों में शांति और सामंजस्य को बढ़ावा देना।
3. सचेतनताः सचेतनता बौद्ध नैतिकता का एक महत्वपूर्ण घटक है, और इसका अर्थ है हर क्षण में पूरी तरह से उपस्थित और जागरूक होना। इसे दैनिक जीवन में इस प्रकार अभ्यास किया जा सकता है— अपने विचारों, भावनाओं, और शारीरिक संवेदनाओं पर ध्यान देना, और अपने अनुभवों के प्रति अधिक जागरूकता और समझ विकसित करना।

इतिहास में कई विद्वान, भिक्षु और साधक हुए हैं जिन्होंने बौद्ध नैतिकता के विकास और परिष्कार में योगदान दिया, और उनके उपदेश आज भी साधकों को प्रेरित और मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। बौद्ध शास्त्रों में बौद्ध नैतिकता से जुड़े कई महत्वपूर्ण नाम हैं, जिनमें शामिल हैः बुद्धः बौद्ध धर्म के संस्थापक, जिन्हें सिद्धार्थ गौतम के नाम से भी जाना जाता है, बौद्ध नैतिकता पर सर्वोच्च अधिकार माने जाते हैं। उनके चार आर्य सत्य, आर्य अष्टांगिक मार्ग, और अन्य नैतिक सिद्धांत बौद्ध नैतिकता की नींव बनाते हैं। बोधिसत्त्वः बोधिसत्त्व वे प्राणी होते हैं जिन्होंने बोधि (ज्ञान) प्राप्त किया है, लेकिन दूसरों की मुक्ति में मदद करने के लिए वे संसार में रहना चुनते हैं। इन्हें बौद्ध नैतिकता के आदर्श के रूप में देखा जाता है, जो करुणा, ज्ञान और निस्वार्थता जैसे गुणों का प्रतीक होते हैं।

नागार्जुनः नागर्जुन एक दार्शनिक और विद्वान थे, जो द्वितीय शती ईस्वी में भारत में रहते थे। वह बौद्ध नैतिकता में विशेष रूप से मध्य मार्ग के क्षेत्र में अपने योगदान के लिए प्रसिद्ध हैं, जो चरम सीमाओं के बीच संतुलित दृष्टिकोण को महत्व देता है। शांतिदेवः शांतिदेव एक आठवीं शती के भारतीय बौद्ध भिक्षु और विद्वान थे, जो अपनी काव्य—रचना बोधिचर्यावतार के लिए प्रसिद्ध हैं। यह ग्रंथ बोधिसत्त्व के मार्ग का मार्गदर्शन करता है और इसमें करुणा, नैतिक आचरण और ज्ञान के विकास का महत्व बताया गया है। थिच नाट हांः थिच नाट हां एक समकालीन वियतनामी ज़ेन मास्टर और विद्वान हैं, जिन्होंने बौद्ध नैतिकता पर बहुत लिखा है। उनके उपदेशों में ध्यान, करुणा, और अहिंसा के महत्व पर जोर दिया गया है, और वह बौद्ध सिद्धांतों पर आधारित सामाजिक और पर्यावरणीय सक्रियता के समर्थक रहे हैं।

बौद्ध धर्म भारत का विश्व को एक महत्वपूर्ण योगदान है, ऐतिहासिक और दार्शनिक दृष्टिकोण से भी। बौद्ध धर्म भारत का एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है, जो एक समृद्ध दार्शनिक और नैतिक प्रणाली प्रदान करता है, जो आज भी समकालीन बहसों और प्रथाओं को प्रेरित और सूचित करता है। धार्मिक विविधताः भारत विभिन्न धार्मिक परंपराओं का घर रहा है, जिसमें हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म और सिख धर्म शामिल हैं। विशेष रूप से बौद्ध धर्म ने एशिया और उससे बाहर के धार्मिक और सांस्कृतिक परिदृश्य पर गहरा प्रभाव डाला है।

दर्शनशास्त्रः बौद्ध धर्म का एक जटिल दार्शनिक प्रणाली है जो वास्तविकता की प्रकृति, दुःख की प्रकृति और मुक्ति के मार्ग की खोज करती है। इस प्रणाली का एशिया और इसके बाहर दर्शनशास्त्र और मेटाफिजिक्स के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ा है।

नैतिकताः बौद्ध नैतिकता करुणा, अहिंसा और सामाजिक जिम्मेदारी पर जोर देती है। ये मूल्य समकालीन बहसों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जैसे मानव अधिकार, सामाजिक न्याय, और पर्यावरणीय स्थिरता। कला और साहित्यः बौद्ध कला और साहित्य ने एशिया और उससे बाहर की सांस्कृतिक धरोहर पर गहरा प्रभाव डाला है, और इनकी प्रेरणा से ऐसी कलात्मक और साहित्यिक परंपराएँ उत्पन्न हुई हैं जो आज भी फल—फूल रही हैं। ध्यान और मानसिकताः बौद्ध ध्यान अभ्यास पश्चिम में तेजी से लोकप्रिय हो गए हैं, और लाखों लोग अपनी दैनिक जीवन में मानसिकता अभ्यास को शामिल कर रहे हैं। इसका मानसिक स्वास्थ्य और मनोविज्ञान के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा है।

निष्कर्ष :— समकालीन वैश्विक संवाद में बौद्ध नैतिकताः बौद्ध नैतिकता समकालीन वैश्विक चुनौतियों पर एक अद्वितीय दृष्टिकोण प्रदान करती है, जो सभी प्राणियों के आपसी संबंध और एक संतुलित, करुणामय और जिम्मेदार जीवन जीने के महत्व पर जोर देती है। ये मूल्य 21वीं सदी में स्थायी, न्यायपूर्ण और शांतिपूर्ण समाजों के विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं। बौद्ध नैतिकता सभी प्राणियों के आपसी संबंध और प्राकृतिक दुनिया के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने के महत्व पर बल देती है। यह दृष्टिकोण जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और संसाधनों के

अवमूल्यन जैसी समस्याओं से जुझते हुए दुनिया में लगातार प्रासंगिक होता जा रहा है। बौद्ध नैतिकता करुणा, सहानुभूति और सामाजिक जिम्मेदारी के महत्व पर जोर देती है। इन मूल्यों का समकालीन बहसों पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, जैसे आय असमानता, मानव अधिकार, और भेदभाव। बौद्ध नैतिकता यह भी करती है कि व्यक्तिगत भलाई के लिए और समाज के लाभ के लिए एक संतुलित और स्वस्थ जीवन जीने का महत्व है। यह दृष्टिकोण उन मामलों में बढ़ते हुए प्रासंगिक हो रहा है जैसे पुरानी बीमारियाँ, मानसिक स्वास्थ्य समस्याएँ, और तनाव–संबंधी विकार। अंत में, बौद्ध नैतिकता अहिंसा, संघर्ष समाधान, और आपसी समझ के महत्व को प्रमुखता से प्रस्तुत करती है। इन मूल्यों का समकालीन बहसों पर महत्वपूर्ण प्रभाव है, जैसे आतंकवाद, युद्ध, और वैश्विक शासन।

संदर्भ–सूची :–

1. सराओ, के. टी. एस., प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्मःउद्भव स्वरूप एवं पतन, सी बी बी ई एफ,ताइपेई, ताइवान, 2005।
2. सिंह उपाध्याय, भगत, बौद्ध दर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन, भाग 1, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशिंग हाउस, 2017।
3. सांकृत्यायन, महापंडित राहुल, विनय पिटक, सम्यक प्रकाशन, 2008।
4. चमूपति, एम. ए., वैदिक दर्शन, वी. के. गोविंदराम हंसानंद, 2018।
5. अनालायो, भिक्खु, और भिक्खुनि धम्मदिन्ना,"करुणा से आत्म–करुणा तकः एक ग्रंथ–ऐतिहासिक दृष्टिकोण।" माइंडफुलनेस 12.6 (2021): 1350–1360।
6. गोवांस, क्रिस्टो, बौद्ध नैतिक दर्शनशास्त्रः एक परिचय,राउटलेज, 2014।
7. प्रेबिश, चार्ल्स एस., और डेमियन कीओन ,बौद्ध धर्म का परिचय ,राउटलेज, 2006।
8. सिडेरिट्स, मार्क , "बौद्ध ह्रासवाद और बौद्ध नैतिकता की संरचना।" भारतीय नैतिकता , राउटलेज, 2017। 293–306।
9. आनन्द कौसल्याय, भदंत(सं.),पालि–हिन्दी कोश, नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 1975।
10. तारनाथ, भारत में बौद्ध धर्म का इतिहास (अनुवादः लाम चिम्पा और अलोका चट्टोपाध्याय), कोलकाताः के.पी. बागची एंड कंपनी. 1980।
11. पाण्डे, गोविन्द चन्द्र,बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊः हिन्दी समिति, 1963।
12. उपाध्याय, वी.एस.,बौद्ध धर्म दर्शन मीमांसा,वाराणसी ,चौखम्भा,विद्याभवन, 1989।
13. उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, लखनऊः प्रकाशन ब्यूरो, 1956।
14. भारतीय पुरातत्त्वशास्त्र का विश्वकोश, 2 खंड (संपादकः ए. घोष), न्यू दिल्लीः मंशी राम मणोहरलाल, 1989।

दलित कहानी में श्रम, संघर्ष और संस्कृति का यथार्थ

डॉ. नितीन गायकवाड*

शोध–सारांश :– भारत में जब समाज का विकास मजदूरों के मेहनतकश हाथों पर निर्भर है तब उनको और उनके श्रम को सम्मान देना समाज का दायित्व बनता है। लेकिन वर्णाश्रम व्यवस्था में दलितों को अधिकार–विहीन और पराधीन रहने और रखने का धार्मिक आदेश व निर्देश दिया गया है। भारतीय समाज में सामाजिक भेदभाव और आर्थिक विषमता की जड़ जाति प्रथा है। इसे हिंदू धर्म की मुख्य विशेषता भी कह सकते हैं। यह विशेषता मनुष्य को असंवेदनशील और अमानवीय बनाती नजर आती है। वर्णाश्रम व्यवस्था में बदलाव लाने की दृष्टि से डॉ. आंबेडकर ने कोशिश की है। लेकिन यह कोशिश कितनी सार्थक सिद्ध हुई है, यह एक बड़ा सवाल है? यह सवाल हिंदी के दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के माध्यम से समाज के सामने विचार–विमर्श के लिए रखा है। अतः तर्कसंगत विश्लेषण के जरिये श्रम, संघर्ष और संस्कृति के यथार्थ का अवलोकन करना समय एवं समाज की मांग है।

संकेताक्षर :– अस्मिता, शूद्र–अतिशूद्र, वर्णाश्रम व्यवस्था, जातिगत भेदभाव, द्विज संस्कृति, प्रतिरोध की संस्कृति, सामंतवाद, ब्राह्मणवाद, आंबेडकरवाद आदि।

वर्णाश्रम व्यवस्था द्वारा संचालित हिंदू समाज में संसाधनों के अभाव में दलितों का जीवन–निर्वाह गैर–दलितों की बेगारी और मजदूरी पर निर्भर रहा है। यानी संसाधनों के अभाव में दलित पीढ़ी–दर–पीढ़ी गैर–दलितों की बेगारी में जीवन गुजारता आ रहा है। बेहद कम मेहनताने पर अपना शारीरिक श्रम बेचने के पीछे उनकी आर्थिक कमजोरी ही मजबूरी रही है। हिंदू समाज में दलितों के लिए विकास के सारे रास्ते हमेशा के लिए बंद दिखाई देते हैं। क्योंकि हिंदू धर्म के नियमों, निर्देशों और आदेशों के अनुसार शूद्रों, अतिशूद्रों और स्त्रियों को किसी भी तरह की संपत्ति संचय करने की सख्त मनाई है। इन्हें अपना सारा जीवन अपने से ऊपर के लोगों की सेवा करने में लगाना चाहिए। हिंदू समाज और इससे अलग संदर्भ में प्रचीन समाज व्यवस्था कैसी थी? बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में–''कहीं भी समाज ने अपने व्यवसायों, रोजी–रोटी के साधनों का पवित्रीकरण नहीं किया। आर्थिक गतिविधि सदैव धार्मिक पवित्रता के दायरे से बाहर रही है। शिकारी समाज धर्मविहीन नहीं था, पर धंधे के रूप में आखेट का धर्म द्वारा पवित्रीकरण करके उसे पवित्र नहीं बनाया गया। पशुचारी समाज धर्मविहीन नहीं था लेकिन पशुचारण का धर्म द्वारा पवित्रीकरण करके उसे पवित्र नहीं बनाया गया। काश्तकारी के धंधे का भी धर्म द्वारा पवित्रीकरण करके उसे पवित्र नहीं बनाया गया। सामंतवाद में भी उसके वर्ग थे। उसमें सामंत थे, कृषि दास और दास थे, पर वे विशुद्ध सामाजिक स्वरूप के थे। उस पर पवित्रता का कोई ठप्पा नहीं था। विश्व में केवल हिंदू ही ऐसी जाति है, जिसने समाज व्यवस्था का, यानी मानव–मानव के आपसी संबंध का, धर्म द्वारा पवित्रीकरण करके उसे पवित्र, शाश्वत और अलंघ्य बना दिया। विश्व में केवल हिंदुओं की ही ऐसी जाति है, जिसने अर्थ व्यवस्था का, यानी कामगारों के आपसी संबंध का, धर्म द्वारा पवित्रीकरण करके उसे पवित्र, शाश्वत और अलंघ्य बना दिया।''[1] दलितों को पुश्तैनी व्यवसायों में फँसाने के लिए ब्राह्मणवादियों ने एक साजिश के तहत हिंदू धर्म और उसके ग्रंथों के माध्यम से मनचाहे चीजों को पवित्र व अपवित्र बनाया है लेकिन यह विभाजन का कोई भी तर्कसंगत आधार नहीं दिखाई देता है।

वर्णाश्रम व्यवस्था में दलितों के पास जीवन–निर्वाह के साधनों की कमी दिखाई देती है। इसलिए दलितों का जीवन–निर्वाह परंपरागत पेशों से जुड़ा हुआ है। इन परंपरागत पेशों के कारण जन्म से ही दलितों को अछूतों की श्रेणी में गिना गया है। इसका तर्कसंगत विश्लेषण बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में–''अस्पृश्य सड़ा–गला मांस खाकर जिंदा रहते हैं, इसका कारण यह नहीं है कि वे उसे पसंद करते हैं। वे सड़ा–गला मांस इसलिए खाते हैं कि उनके पास जिंदा रहने के लिए और कोई साधन नहीं है। अस्पृश्यता के कारण उनके पास जीवन–निर्वाह का अन्य कोई उपाय नहीं होता। जो लोग इसे अनुभव करते हैं, उन्हें इस बात को समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी। सभी धंधों के द्वार उनके लिए बंद होते हैं। उनके पास न तो भूमि

***असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे–411।**

होती है, जिसकी पैदावार पर वे जिंदा रह सकें। वे कोई व्यापार भी नहीं कर सकते। अतः उनके जीवन का मुख्य आधार वह भोजन होता है, जो वे गाँव वालों से एकत्र करते हैं। इसके अलावा तो सड़ा–गला मांस ही उनके लिए शेष रहता है। सड़े–गले मांस के अभाव में तो वे वस्तुतः भूखे ही मर जाएँगे। अतः यह स्पष्ट है कि दोष अस्पृश्यों का नहीं है। यदि वे सड़ा–गला मांस खाते हैं, तो उसका कारण यह है कि हिंदुओं ने रोजी–रोटी कमाने का कोई सम्मानजनक रास्ता उनके लिए छोड़ा ही नहीं है।''[2] दलितों का परंपरागत व्यवसायों को स्वीकारना केवल मजबूरी रही है, क्योंकि संसाधन पर गैर–दलितों का एकाधिकार रहा है। दलितों की यह मजबूरी वर्णाश्रम व्यवस्था की आचार–संहिता ने उन पर जन्मतः जबर्दस्ती से थोपी हुई है लेकिन दलित इस मजबूरी से मुक्ति की राह खोजते हुए दिखाई दे रहे हैं।

परंपरागत पेशों की गुलामी से दलित मुक्त होना चाहता है। लेकिन जब कोई भी दलित परंपरागत गंदे कामों से मुक्त होकर सम्मानजनक कामों में जाने की कोशिश करता है, तब हिंदुओं द्वारा उन्हें किस प्रकार की प्रताड़ना को सहने के लिए तैयार रहना पड़ता है। इसका सटीक विश्लेषण बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में– ''यदि अस्पृश्य लोग हिंदुओं के मृत पशुओं को उठाते हैं और उनकी खाल उतारते हैं, तो उसका कारण यह है कि उनके पास और कोई विकल्प नहीं होता। उन्हें विवश होकर ऐसा करना पड़ता है। यदि वे ऐसा करने से इंकार करते हैं तो उन पर जुर्माना किया जाता है। जुर्माना वैध है। कुछ प्रांतों में इस घिनौने काम को करने से इंकार करना ठेके को भंग करना है। अन्य प्रांतों में यह दंडनीय अपराध है और जुर्माना किया जा सकता है। बंबई जैसे प्रांतों में अस्पृश्य गाँव के सेवक हैं। गाँवों के सेवकों के रूप में उन्हें सरकार की सेवा करनी पड़ती है और हिंदुओं की भी। इस सेवा के बदले में उन्हें जमीनें दी जाती हैं। वे उनमें खेती करते हैं और उसकी उपज से अपनी जीविका चलाते हैं। अस्पृश्यों का एक कर्तव्य यह है कि वे गाँवों में हिंदुओं के मृत पशुओं को उठाएँ और उनकी खाल उतारे। यदि हिंदुओं के प्रति अस्पृश्य अपना कर्तव्य निभाने से इंकार कर दें, तो जिस भूमि से वे अपनी गुजर–बसर करते हैं, उसे जब्त किया जा सकता है। उन्हें दो में से एक को चुनना होता है या तो घिनौना कार्य करें या फिर भूखे मर जाएँ।''[3] बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर का इस बात ओर संकेत है कि दलितों को गंदे काम करने के लिए हिंदुओं द्वारा दबाव बनाया जाता है। अपने जीवन–निर्वाह के लिए विकल्प की तलाश में दलितों को निराशा ही क्यों हाथ आती है? क्योंकि जमीन और संसाधन न होने के कारण हिंदुओं की हरेक बात दलितों को मानना उनकी विवशता बन जाती है।

हिंदू धर्म में मनुष्य को अछूत बनाने के लिए ईश्वर के नाम का आधार लिया गया है। लेकिन दलितों ने इस ईश्वर नाम के पाखण्ड की पोल खोल दी है। ब्राह्मणवादियों द्वारा अछूत बनने पर मनुष्य को किन अमानवीय यातनाओं से गुजरना पड़ता है? अछूतों को अपनी गुलामी को ठुकराने के बाद किन मुसीबतों को उठाना पड़ता है? इन सवालों का विश्लेषण बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में–''यह प्रश्न वास्तव में संगत नहीं है कि अस्पृश्यों पर यह आरोप लगाया जा सकता है या नहीं कि हिंदुओं के इस घिनौने कार्य को करके उन्होंने स्वयं अस्पृश्यता के अभिशाप को न्यौता दिया है। उल्लेखनीय बात तो यह है कि महाड में अस्पृश्यों के सम्मेलन ने संकल्प किया कि न तो कोई अस्पृश्य हिंदुओं के मृत पशुओं की खाल उतारेगा, न ही उसे उठाएगा और न उसके सड़े–गले मांस को खाएगा। इन संकल्पों का दोहरा उद्देश्य था। एक तो यह था कि अस्पृश्यों में आत्म–सम्मान और आत्म–प्रतिष्ठा का भाव जगाया जाए। यह गौण उद्देश्य था। प्रमुख उद्देश्य था, हिंदू समाज व्यवस्था पर करारा प्रहार। हिंदू समाज व्यवस्था श्रम के विभाजन पर टिकी है। वह हिंदुओं के लिए स्वच्छ और सम्मानजनक धंधे आरक्षित करती है और घिनौने तथा घटिया धंधे अस्पृश्यों के मत्थे मढ़ती है। इस प्रकार वह हिंदुओं को यश का भागी बनाती है और अस्पृश्यों को अपयश के गर्त में धकेलती है। संकल्प, हिंदू समाज व्यवस्था की इस कुचेष्टा के विरुद्ध विद्रोह था। इनका उद्देश्य था कि हिंदू अपने घिनौने धंधे खुद अपने हाथों से करें।''[4] दलितों को अपने श्रम का सम्मान और अस्तित्व की रक्षा करने के लिए गाँवों के परंपरागत गंदे कामों को छोड़ना ही पड़ेगा। जिन कामों के कारण दलितों को जन्मतः जातिगत भेदभाव और गुलामी को भोगने के लिए अभिशप्त रहना पड़ता है, बात इतनी ही नहीं बल्कि सामाजिक बहिष्कार की स्थिति को भी सहना पड़ा है। उन तमाम परंपरागत गंदे कामों को छोड़ने की नेक सलाह दलितों को बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने दीं है। लेकिन रोजगार के नये विकल्प की तलाश में दलितों को शहरों की ओर निकलना पड़ेगा। साथ ही शहरों के परिवेश में भी श्रम और संघर्ष के लिए तैयार रहना पड़ेगा।

गाँव–देहात के परिवेश में दलितों की आर्थिक–सामाजिक स्थिति बेहद दयनीय दिखाई देती है। पेट के लिए भाग–दौड़, अथक व अथाह परिश्रम और संघर्ष करना दलितों के रोजमर्रा की जिंदगी का अभिन्न हिस्सा है। लेकिन हजारों सालों से दलितों को ब्राह्मणवादियों और तथाकथित सवर्णों की सेवा करने के बदले में क्या मिलता रहा है? बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में–''गाँव के अस्पृश्य अधिकांशतः या तो गाँव के सेवक हैं या भूमिहीन मजूर हैं। गाँव के सेवक के रूप में वे अपने भरण–पोषण के लिए हिंदुओं पर आश्रित हैं। वे घर–घर जाकर हर रोज हिंदुओं से रोटी या रांधा गया भोजन प्राप्त करते हैं। बदले में वे हिंदुओं की कुछ प्रथागत सेवाएँ करते हैं। यह उनके पारिश्रमिक का एक अंश है। अंशतः वे अपने पारिश्रमिक के रूप में हिंदुओं के घरों से फसल की कटाई पर अनाज भी प्राप्त करते हैं। जब भी हिंदुओं और अस्पृश्यों के बीच कोई मतभेद होता है तो पहला काम हिंदू यह करते हैं कि वे अस्पृश्यों को रोटी और कटाई के हिस्से का उनका अनाज नहीं देते। वे अस्पृश्यों को किसी काम पर भी नहीं लगाते। नतीजा यह होता है कि संघर्षरत अस्पृश्यों को भुखमरी का सामना करना पड़ता है। अस्पृश्यों के पास गाँव में जीविका का कोई साधन नहीं रह जाता। वह दूध या सब्जी बेचने जैसा कोई धंधा नहीं कर सकता है। अस्पृश्य होने के कारण उससे कोई ये चीजें खरीदेगा ही नहीं। वह कोई व्यापार भी नहीं कर सकता है, क्योंकि सभी व्यापार पुश्तैनी होते हैं। अतः कोई भी उसकी सेवा स्वीकार नहीं करेगा। आर्थिक रूप से वह पूर्णतः हिंदू पर आश्रित है। जब भी स्पृश्य को यह लगता है कि अस्पृश्य अहंकारी या शरारती हो गया है तो वह इस आर्थिक स्थिति का भरपूर लाभ उठाता है।''[5] बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया है कि ब्राह्मणवादियों और तथाकथित सवर्णों ने दलितों को जीवन–निर्वाह करने के लिए हमेशा हिंदू समाज पर निर्भर रहने का षड्यंत्र रचा है। ब्राह्मणवादियों ने वर्णाश्रम व्यवस्था की आचार–संहिता में दलितों को जन्मतः से अस्पृश्य घोषित करके उन्हें आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक अधिकारों से वंचित रखा गया है। लेकिन ब्राह्मणवादियों व तथाकथित सवर्णों के इस षड्यंत्रों को दलित खूब समझ रहा है। इसके विरोध में धीरे–धीरे अपनी आवाज बुलंद करता हुआ दिखाई दे रहा है।

दलित जन्मतः अछूत क्यों हैं? क्या दलितों का जन्म केवल हिंदू समाज की सेवा करने के लिए हुआ है? हजारों सालों से हिंदुओं द्वारा अछूतों के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया गया है? इन सवालों का विश्लेषण बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर के शब्दों में–''हिंदू अस्पृश्यों के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं, जैसे अस्पृश्यों का जन्म हिंदुओं की सेवा करने के लिए हुआ है। चूँकि अस्पृश्यों का कर्तव्य सेवा करना है, इसलिए जब कभी कोई हिंदू किसी अस्पृश्य को सेवार्थ बुलाए तब वह उस हिंदू की सेवा करने से इंकार नहीं कर सकता। गाँव में हिंदुओं की यह धारणा है कि वे अस्पृश्यों के श्रम का मनमाना उपयोग कर सकते हैं। इस व्यवस्था को बेगार या जबरन मजदूरी कहा जाता है। अगर अस्पृश्य इस व्यवस्था को स्वीकार करने से इंकार करता है, तो इसके गंभीर परिणाम होते हैं।''[6] बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर इस बात का संकेत देते हैं कि दलित लोग हिंदू समाज का एक हिस्सा होने के बावजूद गुलामों से भी बदतर स्थितियों–परिस्थितियों में जीने के लिए अभिशप्त रहा है। लेकिन जब कोई भी दलित इस अस्पृश्यता और गुलामी के खिलाफ आवाज उठाता है तब उसे गंभीर परिणामों को भुगतने के लिए तैयार रहना अनिवार्य होता है। हिंदुओं की इस अन्यायी व्यवस्था का जन्म वर्णाश्रम व्यवस्था की आचार–संहिता से हुआ है।

हिंदू समाज ने दलितों के पास पेट की भूख को मिटाने के लिए कोई भी विकल्प नहीं रखा है। जन्मतः जमीन और जमीर इन दोनों से दलित बेघर क्यों दिखाई देते हैं? हजारों सालों से ब्राह्मणवादियों, तथाकथित सवर्णों और सामंतों की दिन–रात व रात–बेरात बेगारी और गुलामी ने दलितों को क्या दिया हैं? इन सवालों का विश्लेषण ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में–''गाँव के खेतिहर मजदूर दलित ही होते हैं। बेगारी प्रथा ने दलितों को घोर विपन्नता दी है। बेगार यानी बिना मूल्य का श्रम। दिन–भर मेहनत–मजदूरी करके भी शाम को भूखा रहे, यह अभिशाप नहीं तो और क्या है! यह आर्थिक शोषण भारतीय ग्राम–व्यवस्था का हिस्सा था। आज प्रजातंत्र के युग में भी सामंती व्यवस्था का खुला नृत्य गाँव–कस्बों में होता है। इन सबसे भागकर दलित नगरों में आते रहे हैं, जहाँ उन्हें सुरक्षा और रोजी–रोटी की गुंजाइश ज्यादा दिखाई पड़ती थी। कल–कारखानों में मजदूर बनकर दलितों ने एक नया जीवन शुरू किया।''[7] ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार गुलामी और बेगारी करना दलितों की मजबूरी रही है। दलितों को वर्णाश्रम व्यवस्था में अधिकार–विहीन और पराधीन रहने और रखने का धार्मिक आदेश व निर्देश है। ब्राह्मणवादियों, तथाकथित सवर्णों और सामंतों ने मिलकर दलितों का श्रम और

सम्मान निरंतर लूटा है। इस छल–कपट और लूट के नींव पर अपने जिंदगी का महल खड़ा किया है। लेकिन मेहनती दलितों के हिस्से में केवल लाचारी और बेबसी की जिंदगी के सिवाय कुछ नहीं आया है।

जब समाज का विकास मजदूरों के मेहनतकश हाथों पर निर्भर होता है तब मजदूर को और उसके श्रम को सम्मान देना समाज का दायित्व नहीं बनता है? तो फिर समाज इस दायित्व का निर्वाह करने में क्यों पीछे रहता है? भारत में इस बात पर विरोधाभास दिखाई देता है कि जी–तोड़ मेहनत–मजदूरी करके अपनी जीविका चलाने वाले लोगों को दो जून की रोटी भी ठीक से समय पर मिलना मुश्किल हो जाता है। भारत में ब्राह्मणवादियों, तथाकथित सवर्णों और सामंतों का मजदूरों के प्रति देखने का दृष्टिकोण किसी गुलामों से कम नहीं रहा है। मेहनतकश लोगों की जिंदगी की विवशता क्या है? कंवल भारती के शब्दों में–''इस देश में श्रम सस्ता क्यों है? मजदूरों की आमदनी क्यों नहीं बढ़ती? क्यों निर्धारित मजदूरी से भी कम मजदूरी पर लोग काम करने पर तैयार हो जाते हैं? इसका कारण है, मजदूरों में बचत की सारी संभावनाओं को खत्म करना। बचत होगी तो उस पैसे का उपयोग वह अपने बच्चों की शिक्षा पर खर्च करना चाहेगा। बचत होगी तो भविष्य की सुरक्षा होगी। बचत होगी तो भूखे रहने की स्थिति नहीं होगी। बचत होगी तो इसका मतलब है उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति हो रही है। बचत मजदूर वर्ग को उस स्थिति में पहुँचा देती है, जहाँ पूँजीवादी अर्थशास्त्र के लिए खतरा पैदा हो जाता है। पूँजीवाद इस खतरे को क्यों पैदा होने देगा? इसलिए वह मजदूर को उतना ही देने का समर्थन करता है, जितने से वह रूखा–सूखा खाकर जिंदा रह सकें और दूसरे दिन फिर श्रम बेचने के लिए तैयार रह सकें। चूँकि उसे मिलने वाली मजदूरी इतनी कम होती है कि उससे एक आदमी की भी न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी नहीं होती, इसलिए वह श्रम–बाजार में अपने बीवी–बच्चों को भी बेचता है और लानत इस व्यवस्था पर कि इसके बाद भी वह कोई बचत नहीं कर पाता।''[8] कंवल भारती के अनुसार आधुनिक दौर में मजदूरों के हो रहे शोषण को वर्णाश्रम व्यवस्था का नया संस्करण कहना तर्कसंगत दिखाई देता है।

गाँव–देहात से लेकर शहरों तक में दिन–रात व वक्त–बेवक्त मेहनत–मजदूरी करने वाले कौन लोग होते हैं? इन मजदूरों की जाति क्या होती है? जाति और गरीबी का क्या कोई संबंध है? इन सवालों का विश्लेषण जगजीवन राम के शब्दों में–''गाँवों में रहने वाले अनुसूचित जाति के लोग स्वभाव से ही शांतिप्रिय, बल्कि दब्बू होते हैं। लेकिन प्रभावशाली व्यक्ति किराए के गुंडों की सहायता से उन पर बराबर आक्रमण करते रहते हैं, उनकी संपत्ति लूट ली जाती है और झोपड़ियाँ जला दी जाती है। ऐसे आक्रमणों का कारण बिल्कुल स्पष्ट है। उन पर उस समय आक्रमण किए जाते हैं जब वे उचित मजदूरी की माँग करते हैं या अपने छोटे–छोटे खेतों पर हल चलाना शुरू कर देते हैं। आततायी लोग उन्हें पकड़कर उनके हाथ–पाँव बांध देते हैं और कई बार उनको जीवित ही जला देते हैं। कई बार तो अनुसूचित जातियों की बस्तियों की बस्तियाँ जला दी जाती हैं।''[9] मजदूरों की कोई जाति नहीं होती है, यह कहना गलत है। क्योंकि मजदूरी करने वाला दलित जाति का ही होता है। हिंदी के दलित कहानीकारों ने अपनी कहानियों के द्वारा दलितों के सामाजिक और आर्थिक शोषण का वर्णाश्रम व्यवस्था से संबंध क्या है? पारंपरिक (पुश्तैनी) व्यवसाय, बंधुवा एवं दिहाड़ी मजदूरी में शोषित–उत्पीड़ित दलितों की समस्या किस प्रकार की है? आदि सच को बेनकाब करने की कोशिशें की हैं।

सूरजपाल चौहान की 'साजिश' कहानी में दलितों द्वारा पारंपरिक (पुश्तैनी) व्यवसायों को त्याग कर सम्मानजनक व्यवसायों को स्वीकारने की विकसित हो रही सोच को दिखाया है। यह सोच और मानसिकता दलितों में शिक्षा के कारण जागृत हुए स्वाभिमान का संकेत है। यह स्वाभिमान दलितों को अपने जीवन में बनाये रखने के लिए हमेशा प्रोत्साहित करना बहुत ही आवश्यक है। क्योंकि बगैर स्वाभिमान के जीवन जानवरों से भी बदतर है। इस कहानी में हिंदुओं द्वारा दलितों को असम्मानजनक पुश्तैनी पेशों में फँसाएँ रखने की साजिश को बेनकाब किया है। नत्थू के पिता की मौत उसके बचपन में ही हुई है और उसकी माँ गाँव के मुहल्ले बुहारने का काम करती थी। उसने सारी उम्र अपमान और दुत्कार सहकर नत्थू को बी.ए. तक पढ़ाया है। लेकिन हजार–डेढ़ हजार की क्लर्की के लिए पचास हजार की रिश्वत देने की औकात न होने के कारण नौकरी नहीं मिलती है। तब नत्थू सोचता हैं कि बैंक से लोन लेकर एक मैटाडोर खरीद ली जाए।

नत्थू जब इस उद्देश्य से बैंक मैनेजर रामसहाय शर्मा से मिलकर अपनी बात उनके सामने रखता है तो बैंक मैनेजर उसे समझाते हुए कहता है–''नत्थू तू पागल है क्या? मेरी बात क्यों नहीं मानता? इस ट्रांसपोर्ट के धंधे में रखा ही क्या है। रात–बेरात व दिन–रात की मेहनत और तमाम तरह की सिर खपाई, कहीं दुर्घटना हो

जाए तो हो गया जीवन बर्बाद। ऊपर से सबसे बड़ी बात ये कि लोहा तुझे फले या न फले। कैसे चुकाएगा बैंक का कर्जा?''[10] काम का अनुभव नहीं है। इस काम में कम्पीटिशन बहुत अधिक है। यह काम तो बड़े–बड़े व्यापारियों का है। इस तरह के भय दिखाकर बैंक मैनेजर नत्थू को ट्रांसपोर्ट के लिए कर्जा नहीं देते हैं। बैंक मैनेजर अपने साथी सतीश भारद्वाज से कहता है–''जिनके बाप–दादा हमारे घरों की गंदगी साफ करते आए हैं और जूठन खाकर बड़े हुए हों, भला उन्हें तुम अपने साथ बैठाकर खाना खिलाओगे? अगर ये अछूत अपना खानदानी धंधा बंद कर कोई नया धंधा करने लगेंगे तो आने वाली पीढ़ियाँ हमारे घरों की गंदगी कैसे साफ करेंगी। उस स्थिति में घर की गंदगी क्या तुम खुद साफ करोगे?''[11] सूअर पालने के पारंपरिक धंधे में लागत कम और फायदा ज्यादा होने के लालच दिखाकर पढ़े–लिखे दलित युवक को जाल में फँसाया जाता है। लेकिन नत्थू उस बैंक मैनेजर की इस साज़िश को समझ नहीं सका।

नत्थू की पत्नी शांता कम पढ़ी–लिखी क्यों न हो लेकिन समझदार ज्यादा थी। नत्थू और शांता अपनी जाति को पुश्तैनी व्यवसाय में जान–बूझकर धकेलने की साजिश को पहचानते हैं। अब वे सूअर पालन का नहीं बल्कि गाड़ी खरीदकर किराये पर देने के लिए कर्ज माँग रहे हैं। पति–पत्नी मिलकर धूर्त और मक्कार बैंक मैनेजर के खिलाफ मोर्चा खोलते हैं। बस्ती के सारे दलितों को संगठित करके उन्हें पुश्तैनी धंधों, पेशों में फँसाकर समाज की मुख्यधारा से अलग रखने की साजिश को समझाते है। मनचाहे पेशे के लिए कर्ज देना होगा, पुश्तैनी धंधों में रखने की साजिश बंद करो, हमें भी बहुमुखी विकास का अवसर दो आदि नारे देते हुए एक विशाल जन–समूह नत्थू और शांता के नेतृत्व में निकलता है। इस कहानी में दलितों के खिलाफ हो रही साजिशों के प्रति विद्रोही तेवर स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। इस विद्रोही तेवर से एक बात साफ हो रही है कि दलित अब अपना नफा और नुकसान खुद समझ रहे हैं।

'परिवर्तन की बात' कहानी में दलित समाज के जीवन यथार्थ में आ रहे बदलाव की बयार को बेहद बारीकी से चित्रित किया है। गाँव में रघु ठाकुर की गाय ने कुएँ के पास दम तोड़ दिया है। जिसके कारण ठाकुरों की सारी बस्ती पानी के लिए तरस रही हैं। कुछ ही समय में सड़ांध बिखरने ही वाली थी। रघु ठाकुर और उसका बेटा दोनों किसना चमार के घर उसे गाय उठाने के लिए कह आए थे। लेकिन किसना चमार यह काम करने से साफ मना कर देता है–''ठाकुर मैंने मरे जानवर उठाना बंद कर दिया है जो करना है सो करो। इस बात पर गाँव के ठाकुर चमारों पर गुस्सा और गालियाँ बरसाते हुए उन्हें डरा–धमकाते हुए कहते है, 'साले, मारे लठिया के घुटने तोड़ दूँगा।' रघु ठाकुर कहते हैं, 'साले चमरा के घर मैं खुद चलकर गया। हरप्रसाद ठाकुर कहते है, 'आजकल इन साले चमारों के नखरे ज्यादा ही हो गए हैं।' और रामेसर ठाकुर ने किसना को लट्ठ दिखाते हुए कहा, 'पानी में रहकर मगरमच्छ से बैर।''[13] दलित का स्वाभिमान से जीना गैर–दलितों को हमेशा खटकता क्यों है?

किसना के खिलाफ पुलिस में रिपोर्ट भी दर्ज की जाती है। इसके बावजूद किसना अपनी बात पर कायम रहता है। वह थानेदार के सामने निर्भय और आत्मविश्वास के साथ कहता है–''क्या आप यही चाहते हैं कि हम जीवन–भर गाँव के मरे जानवर ही उठाते रहें। अब समय बदल रहा है, लोग अपना पुश्तैनी धंधा छोड़कर दूसरे कार्य करने लगे है। हम दूसरा अन्य कोई भी काम कर अपना पेट भर लेंगे, लेकिन मरा जानवर हम नहीं उठाएँगे।''[14] अंत में रघु ठाकुर बौखलाकर किसना पर लाठी का प्रहार करता है। लेकिन लाठी के वार से किसना बच जाता है और किसना भी गुस्सा में ठाकुर के ऊपर लाठी तान देता है। दूसरे साथी भी भागकर अपने घरों से लाठी और बल्लम निकालते हैं। किसी भी कीमत पर गाँव के चमार इस पुश्तैनी पेशों की परंपरा से छुटकारा पाना चाहते हैं। सम्मानजनक व्यवसायों को स्वीकर कर स्वाभिमान और सम्मान से जीना चाहते हैं। दिन–प्रतिदिन इनके प्रतिरोध के स्वर तेज होने के संकेत नजर आ रहे हैं। 'परिवर्तन की बात' कहानी भी दलितों के जीवन में आ रहे बदलाव की बयार का एक संकेत है। लेकिन इस परिवर्तन की बयार को रोकने के लिए गाँव के ठाकुर दलित बस्ती के घरों के चारों ओर कांटेदार तारों की एक मजबूत बाड़ खींचते हैं। दलितों के आने–जाने का रास्ता ठाकुरों की जमीन से होकर गुजरता था। रघु ठाकुर हाथ में लटठ् लिए दूर खड़ा–खड़ा कुटिल मुस्कान के साथ कहता है–''सालो चमारों, समय परिवर्तन की बात करते हो। हम भी देखते हैं तुम्हारा समय कैसे बदलता है। अब घरों में ही हगो और मूतो।''[15] गाँव–देहात में दलितों की संपन्नता गैर–दलितों के आँखों में शूल की तरह चूभती है। कोई दलित गली–मुहल्ले की सफाई छोड़कर सम्मानजनक पेशे में जाने की

कोशिश भी करता है तो गैर–दलितों को यह कतई बर्दाश्त नहीं होता। यह स्थिति उन्हें अन्तर्मन तक विचलित करती है।

मोहनदास नैमिशराय की 'आवाजें' कहानी में गाँव के मेहतरों वाले टोले से काली आँधी की तरह यह बात फैलती है कि हम जूठन न लेंगे और न ही गंदगी साफ करेंगे। 'फूस में आग' की तरह लपलपाती परिवर्तन की भावना दिन–पर–दिन जोर पकड़ती जाती है। ठाकुर की बहू को बच्चा हुआ। पर मेहतरों के टोले से इस बार कोई नहीं गया। सभी मेहतरों की पंचायत हुई थी, जिस में अधिकांश ने कसम उठाई–मैला उठाने कोई न जाएगा, जो जाता है उसका हुक्का–पानी बंद। यह कसम एक सप्ताह तक पूर्ण रूप से चली।' एक ही सप्ताह के भीतर गाँव में मेहतरों के वहाँ पहले से कहीं अधिक सफाई दिखाई पड़ती थी। जगह–जगह कूड़े के ढेर न लगे होते थे। नालियों में भी पहले जैसी बदबू न आती थी। पर ऊँची जात वालों के यहाँ गंदगी बढ़ती जा रही थी।

एक दिन ठाकुर का कारिन्दा मेहतरों की बस्ती से इतवारी को बुलाने आता है। हुक्का गुड़गुड़ाते हुए ही इतवारी ने गर्दन घुमाकर देखा। सामने ठाकुर का कोई कारिन्दा खड़ा था। कारिन्दें के द्वारा किए गए संबोधन को सुनकर उसे बुरा–सा लगा। वैसे पूरे पचास साल से वह यह तू–तड़ाक की भाषा सुन रहा था। आज तक बुरा न लगा, लेकिन आ? वह सदियों से संस्कारबद्ध गाँव के माहौल से परिचित है। ब्राह्मण का लड़का चाहे वह अभी ढंग से नाक साफ करना भी न सीख पाया हो, लेकिन साठ साल के बूढ़े तक उसे 'पंड़ितजी पालागन' कहकर आदर प्रकट करते हैं। इतवारी की उम्र पचास से ऊपर ही होगी और सामने खड़े कारिन्दे की अट्ठाइस के करीब। उम्र में आधे का फर्क, किंतु जातिगत असमानता भला शिष्टाचार कहाँ निभाने देती है। आज उसे बहुत बुरा लगता है। तभी कारिन्दा पुनः कह उठता है, इतवारी तुझे ठाकुर ने बुलाया है। कारिन्दे के पहली बार कहने को इतवारी ने अनसुना कर दिया था। तब दोबारा कारिन्दे ने उसी लहजे में कहा तो वह उबल–सा पड़ा–

'कौन ठाकुर?'

'गाँव में कौन ठाकुर है तुझे पता नहीं?'

कारिन्दा क्षण–भर में ही भभक उठता है।

'नइ, हमै कुछ पता नाहीं। अब कोई किसी की ठकुराहट नइ चलती है सब अपने–अपने घर में आजाद हैं।'

''क्या?'

कारिन्दा अब पूर्ण रूप से गर्मा गया था। उसे सपने में भी विश्वास न था कि इतवारी, जिसकी उम्र मैला ढोते–ढोते तथा दूसरों की जूठन खाते–खाते बीत गई, वह ऐसा भी कह सकता है।

'मुझे ठाकुर औतार सिंह ने भेजा है।' कारिन्दे ने मूँछों पर अँगुली फिराते हुए कहा।

'हूँ, कह देना अब कोई नइ जावैगा। भौत दिन हो गए गुलामगिरी करते–करते।''[16]

इतवारी द्वारा 'नया जमाना, नयी रोशनी' की कही बात ठाकुरों के अन्याय के खिलाफ खुला विद्रोह कहा जा सकता हैं। मेहतरों के इस विद्रोह के विरोध में ठाकुर अपने बिरादरी के सीनियर इंस्पेक्टर रामवीर से मिल कर एक साजिश रचता है। दो–चार दिन लगातार धर–पकड़ हुई। मेहतरों की बस्ती से बीस–तीस को डकैती के केस में पुलिस ने बंद कर दिया। दो–चार लोगों के पास से हथियार बरामद भी करा दिए। एक–दो जगह मुठभेड़ भी दर्ज हो गई। इस झूठे आरोप में दलितों को फँसाकर उन्हें डराया–धमकाया जाता है। कोई दलित गैर–दलितों की गुलामी करने से मना करता है तो उसे क्या किया जाता है? बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर ने इस बात का विश्लेषण किया है। ठाकुर के कहने पर इन सब मेहतरों को डकैती के झूठें आरोप में गिरफ्तार करके खूब ठुकाई की जाती है। इसके बावजूद मेहतरों का हौसला और रवैया वही की वही था। वे अपनी बात पर एकदम कायम थे। शहर से दलित लीडरों और वकीलों से मेहतरों को इस आरोप से राहत मिल जाती है। ठाकुर इंस्पेक्टर रामवीर के साथ इस केस में मात खा जाते हैं। इस गुस्से में ठाकुर रात में मेहतरों की बस्ती को आग के हवाले कर देता है। लेकिन मेहतरों ने हार नहीं मानी। नई पौध की आँखों में परिवर्तन के लिए अटूट विश्वास था। कल तक जो बच्चे जूठन पर लड़ते–झगड़ते थे उनके मन में कुछ कर–गुजरने की चेतना जन्म ले चुकी थी।

जयप्रकाश कर्दम की 'साँग' कहानी में मजदूर की अपने मालिक द्वारा लात–घूंसों की निर्मम मार से मृत्यु होने की घटना विचलित करने वाली है। भुल्लन गाँव में मुखिया के खेत में मेहनत–मजदूरी करता था। एक दिन बुखार के कारण खेत में पानी लगाने नहीं जा सका। इस पर मुखिया भुल्लन पर गाली और गुस्से की बौछार कर देता है। इस दलित मजदूर को अपनी गलती पूछने पर जान गंवा देने की नौबत आती है–''कुसूर पूछता है स्साला! पानी लगाने के नाम पर बुखार होता है। खड़ा नहीं हुआ जाता, चक्कर आते हैं। और साँग देखने के लिए जान आ जाती है। झूठे, हरामखोर।''[17] भुल्लन को साँग देखने का शौक था। लेकिन जिन दिनों गाँव में साँग की टोली जमी थी, उन दिनों वह बुखार से परेशान था। आर्थिक अभाव में अपने मालिक की सेवा–चाकरी में दिन–रात, रात–बेरात हाजिर होना मजदूरों की मजबूरी रही है। बीमारी से जर्जर भुल्लन को बेरहमी से बेहिसाब पिटाई ने मौत का रास्ता दिखा दिया। राजेन्द्र यादव की कही बात सच साबित हो रही है–'रोज भूमिहीन मजदूरों और बंधुआ गुलामों के हितों के लिए लड़ने वाले नक्सली कहकर फाँसी पर चढ़ाये जाते हैं और जमींदार, साहूकारों को मिलता है संरक्षण, भरपाई, मुआवजा और कानूनी संरक्षण। किसानों या खेती से जुड़े हुए लोगों, हाथों से काम करने वाले कारीगरों, मजदूरों को उजड्ड, नीच, अनपढ़, गंवार, शूद्र और अछूत बनाये रखकर अपने सांस्कृतिक दुर्गों से बाहर धकेल दिया है या हाशिए की उन स्थितियों में पहुँचा दिया है जहाँ वे सिर्फ हमारी सेवा करने में ही अपना लोक–परलोक सार्थक माने।'

सुशीला टाकभौरे की 'नयी राह की खोज' कहानी में दलितों में पुश्तैनी व्यवसाय को लेकर आ रही नयी चेतना की जागृति को चित्रित किया है। अब दलित पुराने व्यवसायों को क्यों नकार रहा है? क्योंकि ''वह व्यवसाय क्यों न छोड़ दिया जाये जिसके कारण लोग हमें घृणा की नजर से देखते हैं? हमें तुच्छ समझते हैं–हम अपनी इस मजबूरी को रहने नहीं देंगें, समाज को पुरानी परंपरा से मुक्त कर, नयी परंपरा से जोंड़ेगे। हम नयी राह की खोज करेंगे। जिस पर चलकर हमारा समाज सम्मान के साथ सिर उठाकर चल सकेगा। बेरोजगारी और गरीबी से हम मुक्त हो सकेंगे। इस तरह हमारी अगली पीढ़ियों का भविष्य सुरक्षित बन सकेगा।''[18] दलितों के इस सोच के पीछे बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर का संदेश दिखाई देता है। दलितों की पुराने रोजगारों से जुड़े रहने की कौन–सी मजबूरी रही है? इस ओर कहानी में ध्यान आकर्षित किया है–''समाज के इस पिछड़े वर्ग में वैसे भी पैतष्क रोजगार के बदले कोई दूसरा रोजगार अपनाने की बात नहीं सोची जाती थी। रोजगार के पर्याय भी क्या हो सकते थे? मजदूरी करना, रिक्शा चलाना, खेतों में बेगार करना। इससे अच्छा अपने परंपरागत धंधे को ही सीधा, सरल और सुविधाजनक मान कर उसे ही अपना लिया जाता था।''[19] दलित समाज सोच रहा है कि हमारी संतान हमारी तरह दूसरों की गुलामी करे ऐसा नहीं होना चाहिए। इस कहानी का अंत सकारात्मक विचारों से किया है। जैसे कि–''यह भी कोई जिंदगी है? हाथ बांधे, सिर झुकाये, सबकी हाँजी–हाँजी करते रहो। वही जानवरों जैसा जीवन, 'गंदगीं को साफ करते रहो और गंदगी में पड़े रहो' यह कब तक चलेगा? कहीं न कहीं तो इसकी रोक होनी चाहिए।''[20] इस कहानी में भाग्य और भगवान के भ्रम व भय से ऊपर उठकर अपनी आर्थिक व सामाजिक स्थितियों–परिस्थितियों को सुधारने की कोशिश दलितों में दिख रही है।

आर्थिक विषमता के पीछे वर्णाश्रम व्यवस्था की आचार–संहिता और जातिप्रथा के प्रचलन द्वारा अनेक कड़े नियमों का निर्धारण दिखाई देता है। इस शोषण का प्रमुख केंद्र भारतीय गाँव–देहातों की संरचना में स्थित ब्राह्मणवाद और सामंतवाद है। गाँव–देहात और शहर में दिनों–दिन ब्राह्मणवादियों, तथाकथित सवर्णों और सामंतों के सहारे और संरक्षण में यह शोषण और उत्पीड़न की प्रक्रिया पूरी तरह से व्यापक रूप में पल–बढ़ भी रही है। इसे ज्यादा–से–ज्यादा मजबूत बनाये रखने और बचाये रखने की कोशिश की जा रही है। हिंदी दलित कहानियों में दलित समाज के केवल दयनीय स्थितियों–परिस्थितियों और उनकी विवशताओं के साथ–साथ दुःखों को ही अभिव्यक्त नहीं किया है, बल्कि उन पर हो रहे अन्याय और अत्याचार का विरोध और प्रतिरोध को भी दर्ज किया है। दलित समाज श्रम और संघर्ष की संस्कृति से जुड़ा हुआ है। लेकिन वर्णाश्रम व्यवस्था तथा जातिप्रथा के परिवेश में इनके श्रम का योग्य मूल्य और सम्मान बिल्कुल नहीं है। ब्राह्मणवाद और सामंतवाद के विरोध में प्रतिरोध की यह प्रेरणा और परंपरा दलित मजदूरों को बाबा साहेब डॉ. आंबेडकर की विचारधारा से मिली है। दलित मजदूरों का यह सुलगता आक्रोश और क्रांतिकारी विद्रोह सामाजिक परिवर्तन का संकेत है।

संक्षेप में, सूरजपाल चौहान की 'साजिश', 'परिवर्तन की बात', मोहनदास नैमिशराय की 'आवाजें', जयप्रकाश कर्दम की 'साँग' और सुशीला टाकभौरे की 'नयी राह की खोज' आदि हिंदी दलित कहानियों में पारंपरिक (पुश्तैनी) व्यवसाय, भूमिहीन बंधुआ एवं दिहाड़ी मजदूरी में शोषित दलित समाज को चित्रित किया है।

आर्थिक अभाव में बेगारी, बंधुआ और दिहाड़ी मजदूरों के शोषण में अधिकांश संख्या में दलित समाज के स्त्री–पुरुषों के साथ–साथ बच्चें व बूढ़ों तक का सहभाग दिखाई देता है। गाँव–देहात और शहरों में कम–से–कम मजदूरी में ज्यादा–से–ज्यादा काम लिया जाता है। काम का कोई भी समय निश्चित नहीं है। बेतहाशा बेगार लेना जमींदार अपना अधिकार समझते हैं। इसका कारण साफ है कि भारत एक कृषि प्रधान देश रहा है लेकिन कृषि का जो वितरण हुआ है अथवा उस पर जबरन कुछ लोगों ने कब्जा करके रखा है। कृषि विकास में अनेक मुश्किलो कां निर्माण हुआ है। अतः हम कह सकते हैं कि आर्थिक संसाधन में समता का न होने से दलित मजदूरों के शोषण को बढ़ावा मिला है।

संदर्भ–सूची :–

1. डॉ. आंबेडकर, बाबा साहेब–अस्पृश्यों का विद्रोह, गांधी और उनका अनशन, पूना पैक्ट, संपूर्ण वाङ्मय, खंड–10, प्रकाशक डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली–110 001, चौथा संस्करण–2013, पृ. 92।
2. वही, पृ. 164।
3. वही, पृ. 164।
4. वही, पृ. 165–66।
5. वही, पृ. 175–76।
6. डॉ. आंबेडकर, बाबा साहेब–अस्पृश्यता अथवा भारत में बहिष्कृत बस्तियों के प्राणी, संपूर्ण वाङ्मय, खंड–9, प्रकाशक : डॉ. आंबेडकर प्रतिष्ठान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली–110 001, चौथा संस्करण–2013, पृ. 92।
7. वाल्मीकि, ओमप्रकाश–दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 7/31, अंसारी रोड़, दरियागंज, नयी दिल्ली–110 002, चौथी आवृत्ति–2011, पृ. 76–77।
8. भारती, कंवल–जाति, धर्म और राष्ट्र, उद्भावना प्रकाशन, ए–21, झिलमिल इंडस्ट्रिएल एरिया, जी. टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली–110 095, प्रथम संस्करण–2005, पृ. 204।
9. सिंह, महिप (संपादक)–संचेतना, मासिक, अगस्त–1990, पृ. 36।
10. चौहान, सूरजपाल–हैरी कब आयेगा?, सम्यक प्रकाशन, 32/3, क्लब रोड, पश्चिमपुरी चौक, नयी दिल्ली–110 063, प्रथम संस्करण–1999, पृ. 38।
11. वही, पृ. 40।
12. वही, पृ. 7।
13. वही, पृ. 10।
14. वही, पृ. 12।
15. नैमिशराय, मोहनदास–आवाजें, समता प्रकाशन, 30/64, गली नं. 8, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली–110 032, प्रथम संस्करण–1998 पृ. 20।
16. वही, 00।
17. कर्दम, जयप्रकाश–तलाश, विक्रम प्रकाशन, ई–11/5, कृष्णनगर, दिल्ली–110 051, प्रथम संस्करण–2005, पृ. 33।
18. टाकभौरे, सुशीला–टूटता वहम, शरद प्रकाशन, 'शील–2', गोपाल नगर, तीसरा बस स्टॉप, नागपुर–440 022, प्रथम संस्करण–1997, पृ. 92।
19. वही, पृ. 83–84।
20. वही, पृ. 85।

भतरा समुदाय : संस्कृति और लोकगीत

डॉ. भारती लक्ष्मी पाल*

शोधसार :– भारतीय इतिहास और संस्कृति में आदिवासियों का महत्वपूर्ण स्थान है। उनके लोकगीत और संस्कृति एक दुसरे के पूरक हैं, जो उनकी पहचान है। लोकगीत केवल मांगलिक कार्यो तक ही सीमित नहीं हैं अपितु उनके सम्पूर्ण जीवन पद्धति को व्यक्त करता है। आदिवासियों के सांस्कृतिक धरोहर में लोकगीत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आदिवासी सीमित परिधि और लघु जनसँख्या में व्याप्त होने के कारण उनकी सांस्कृतिक परिवर्तन में स्थिरता रहती है। भतरा समुदाय की पहचान उनकी अपनी अनोखी संस्कृति और लोकगीत हैं। संस्कृति के प्रवाहमान प्रक्रिया के कारण यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानांतरित होती रहती है, इसके कारण इसमें कुछ परिवर्तन तो आते ही हैं किन्तु उस का मूल संवेदना वही रहती है जो पहले थी। भतरा समुदाय में कुछ लोक संस्कृति और लोक गीत लुप्त होने की कगार पर खड़ी है। इस शोध का यही उद्देश्य है कि भतरा समुदाय की लोक संस्कृति और लोकगीत का संरक्षण किया जा सके।

बीज शब्द :– भतरा समुदाय, लोकगीत, संस्कृति, सामूहिकता, समाज, त्यौहार, प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, आस्था–विश्वास।

भारत मैं अनुसूचित जनजातियों का संख्या लगभग 461 है, जो भारत के वनांचलों एवं सुदूर पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करते हैं। ये आज भी आदिम अवस्था में हैं। इन 461 आदिवासी समुदायों में से ओडिशा में 62 और छत्तीसगढ़ में 42 समुदाय निवास करते हैं। इन सभी जनजातियों में से भतरा एक जनजाति है। यह ओडिशा और छत्तीसगढ़ में निवास करते हैं। भतरा शब्द का अर्थ है 'भू' अर्थात 'जमीन' और 'तरा' अर्थात 'अनुसरण करना या पीछा करना'। भतरा के अलावा इनको भोतड़ा, भत्तरा, भतारा, भत्रा, भोतरा, भोटाडा, धोतडा, भोत्रा आदि नामों से जाना जाता है। नृवंशविज्ञानशास्त्रियों का मानना है कि भतरा छतीशगढ़ के बस्तर में रहने वाले मुरिया जनजाति के सदृस्य हैं। भतरा और मुरिया गोंड जनजाति के दो शाखाएं हैं। सामान्य रूप से देखा जाए तो भतरा समुदाय में तीन प्रकार के भेद देखने को मिलते हैं– बड भतरा, मध्य भतरा, सान भतरा। भतरा समुदाय के सामाजिक और सांस्कृतिक परंपराओं का निर्वाह करने हेतु सात मुख्य लोग होते हैंदृ नायक, पुजारी, भात नायक, गांडा, चालाण, दिसारी, सीरा/गुरुमाई। भतरा समुदाय की भाषा को 'भतरी' कहा जाता है। यह एक बोली है जिसकी लिखित रूप उपलब्ध नहीं है। यह भारतीय आर्य परिवार की भाषा है। 'भतरी ' भाषा ओड़िया और हल्बी भाषा के मिश्रण से बना है।

भारतीय संस्कृति के निर्माण में आदिवासियों का योगदान बहुमूल्य है। संस्कृति मानव जीवन का अभिन्न अंग है। संस्कृति मानव समाज के विकास में सहायक होती है। कोई भी समाज हो, उसके अपनी संस्कृति होती है, जो उसको अन्य समाज से अलग पहचान प्रदान करता है। "किसी भी समाज विशेष की पहचान उसकी सामाजिक तथा सांस्कृतिक लक्षणों से होती है, क्यूँ कि यह संस्कृति की है, जो किसी समाज विशेष को अन्य समाजों से पृथक करती है। किसी भी समुदाय का सामाजिक, सांस्कृतिक अध्ययन तब तक पूरा नहीं माना जाता जब तक उस समाज की मूलभूत परंपराएं, विश्वास, साहित्य, लोक संस्कृति का वर्णन न किया जाए; क्योंकि संस्कृति ही एक ऐसा सामाजिक मूलभूत तत्व है, जो उस समाज, समुदाय के अन्तः भावों को प्रदर्शित करती है।"[1]

आदिवासी संस्कृति उनके खान–पान, रहन–सहन, पहनावा, लोक विश्वास, पूजा–पाठ आदि का परिचायक है। उनके संस्कृति में समानता, सहअस्तित्व, सहजीविता, सहभागिता, सामूहिकता, स्त्री–पुरुष

*** अतिथि प्राध्यापिका, हिंदी विभाग, गुलबर्गा विश्वविद्यालय, कलबुरगी, कर्नाटक एवं के. बी. एन. विश्वविद्यालय, कलबुरगी, कर्नाटक।**

समानता, जीवन मूल्य आदि को दर्शाती है। यह केवल मनुष्य तक सीमित नहीं है, यह पशु–पक्षी, प्रकृति को भी बराबर सम्मान प्रदान करती है। आदिवासी संस्कृति को समझने के लिए उनके लोक गीत, लोक कथा, मिथक, हस्तशिल्प, लोकनाट्य, त्यौहार आदि को समझना आवश्यक है। इसी प्रकार भतरा समुदाय की संस्कृति इनके जीवन मूल्य, परंपराओं, संस्कार आदि को दर्शाती है। भतरा समाज के लोग अपनी संस्कृति को अपनी धरोहर समझते हैं। यह मौखिक रूप में विद्यमान है। ये अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति लोक गीत, नृत्य, नाट्य, कथा आदि के माध्यमों से व्यक्त करते हैं, जो लोक संस्कृति का अभिन्न अंग है। इनकी संस्कृति मनुष्य और प्रकृति के प्रति प्रेम, सहानुभूति, संवेदनशीलता, सौंदर्य को दर्शाती है। इनके समाज में प्रचलित विभिन्न क्रियाकलाप, परंपराएं, आचार–विचार, संस्कार, प्रथाएं, कर्मकांड, आस्था, विश्वास आदि इनकी संस्कृति के आधार भूत तत्व हैं। भतरा संस्कृति इनकी सभ्यता का दर्पण है। भतरा समुदाय में जन्म से लेकर मृत्यु तक कोई भी संस्कार हो व्यक्तिगत रूप से नहीं किया जाता। यह सामूहिक रूप से मनाई जाती है। जो इनके सामूहिक एकता का प्रतीक है। इनकी न्याय व्यवस्था सामूहिक होती है, जिसमें पंचों की भूमिका महत्वपूर्ण है। भतरा समाज में पुष परब, चईत परब, नुआखाई, गुंडिचा, आमुंस परब, दियारी परब, मंडई परब, माटि परब, बाली यात्रा आदि त्यौहार में इनके जीवन दर्शन और बराबर की भागीदारी की झलक दिखाई देती है। इसमें इनकी धार्मिक आस्था देवी–देवताओं के प्रति जैसे ग्रावराई, कंकालिनि माता, गंगामां, दंतेश्वरी माता, भैरव देवता, भीमा देवता देखी जा सकती है। उनके लोक नृत्य जैसे छेरछेरा नृत्य, दाउनीदार नृत्य आदि में इनकी सामूहिकता का की भावना जा सकती है। 'भतरा नाट' ओड़िया और हल्बी संस्कृति के मिश्रण के साथ–साथ इनके नाट्य कला की पराकाष्ठा देखी जा सकती है। 'ढेमसा नृत्य' में इनकी आपसी तालमेल और सहयोग को देखा जा सकता है। इनके धार्मिक अनुष्ठान में इनकी बलि प्रथा और प्रकृति के प्रति उनके समर्पण और सुरक्षित रखने की भावना को देखी जा सकती है।

लोकगीत से आशय है कि लोगों के द्वारा गाए जानेवाले गीत। आदिवासी संस्कृति को समझने के लिए यह एक साधन के रूप में कार्य करता है। हिंदी साहित्य कोश के अनुसार दृ "लोकगीत, संपूर्ण सृष्टि में व्याप्त लोकमानस की दुखात्मक अनुभूतियों की सरस रागात्मक अभिव्यंजना का लयात्मक उपहार है। लोकगीतों में समाज के विविध भाव कमल खिलते हैं। जैसे हर्ष–विषाद, सुखप्रेम–इर्षा, मान–अपमान, घृणा, भय, आश्चर्य, ग्लानि, क्षोभ, वीरता, वात्सल्य भक्ति आदि। ये भाव सरल रागात्मक रूप में व्यक्त होते हैं। लोकगीतों में मानव मन की अनंत भावनाओं एवं कल्पनाओं का ब्रह्मांड समाया हुआ है। यहां बचपन लोरियों में झूलता है, योवन गीतों की तर्ज़ पर थिरकता है तो जीवन यात्रा से थकित बुढ़ापा, भक्ति गीतों में विश्राम करता है। प्रेमी युगल संयोग के क्षणों में मिलन के गीत गुनगुनाते हैं। रूठना–मानना, मिलना–बिछड़ना, हंसना–रोना, ताना–उलाहना, रीझ–खीझ आदि भाव लोकगीतों में दिखाई देते हैं।"[2] संगीत लोक जीवन का अभिन्न अंग है। मनुष्य के मन की कोमल भावनाओं की पद्यात्मक अभिव्यक्ति ही संगीत है। भतरा समुदाय के लोकगीत इनके जीवन के विभिन्न परिप्रेक्षों को अभिव्यक्त करता है। इनके लोकगीत इनके जीवन में घटित घटना, भावना, वेदना, व्यंग्य, मनोरंजन, मिलन, विरह, प्रेम आदि को बड़े ही जीवंत रूप से अभिव्यक्त करता है। भतरा समुदाय में यह परंपरा पीढ़ियों से चलती आ रही है। इस समुदाय में प्रेमगीत, कृषिगीत, त्यौहारगीत, जन्मगीत, विवाहगीत, मृत्युगीत, शिकारगीत, व्यंगगीत आदि देखे जा सकते हैं।

भतरा समाज में खेलगीत के रूप में मामा अपनी भांजी को बुला रहा है कि चलो खेलने जाएंगे–

"राइसेरि पाख राइसेरि पाख
धन राइसेरि पाख
खासि आमलक नुआँरे
आए राजा खेदाने पाख
पापा जमना खलिबा छमना।"[3]

भावार्थ– इन पंक्तियों में 'राइसेरि' एक बेर का कांटेदार झाड़ है, जिसमें नए पत्ते लगे हैं, जिसकी सुंदरता से मुग्ध होकर मामा अपनी भांजी को खेलने के लिए बुला रहा है। इसमें प्रकृति की सुंदरता के साथ–साथ रिश्तो की सुंदरता को व्यक्त किया गया है।

इस समुदाय में 'प्रेम' को बहुत महत्व दिया जाता है। प्रेमगीत के रुप में युवक–युवतियों के अस्थिर मन की भावनाओं को निम्न पंक्तियों में व्यक्त किया गया है–

"कुरे फूलर बसाना मना
मनटा मअँकिला
कअँलि मउँस् गुलगुला
रूस रूसा लागुला।"[4]

भावार्थ– इसमें कुरे फूल के मनमोहक महक में युवक–युवतियों के मन में उत्पन्न हो रहे प्रेम के भाव को व्यक्त किया गया है। इसमें भी प्रकृति की वर्णना की गई है।

विवाह के समय भतरा समुदाय में कई प्रकार के लोकगीत गाए जाते हैं। उनमें से कोटनी/ कटनी लोकगीत एक प्रकार का है जो विवाह के दिन गाई जाती है–

"आमला जिडंगा मारिगलुरे
बेत मारिगलु बेत..........
फल जामाइलुरे हुलुहुलि।"[5]

भावार्थ– इन पंक्तियों में दूल्हा–दुल्हन के हाथ पक पकड़ने की परंपरा को व्यक्त किया गया है। 'हुलुहुलि' यह मुंह से निकाली जाने वाली एक ध्वनि है जो भतरा समुदाय के मंगल कार्य में निकाली जाती है।

त्यौहार के रूप में 'चईत परब' चैत्र के महीने में मनाया जाता है। इसमें पहले देवी– देवताओं के नाम को लेते हुए, लोकगीत की शुरुआत की जाती है, ताकि खेत में फसल अच्छी हो–

"जयोत कमोला जयोत बिमोला
जयो माँ देबी सारला
देबी नमों धरी गीतों गाइले
मो कंठे बसे मोहालिया.............।"[6]

इसमें देवी कमला, विमला और सरला की स्मरण की गई है, जो इनके धार्मिक विश्वास को दर्शाता है। इनका विश्वास है कि शुरुआत में देवी–देवताओं के नाम लेकर कार्य करने से सभी कार्य सफल होते हैं। भतरा समुदाय खेतों में घास चुनते समय मनोरंजन हेतु लोकगीत गाते हैं–

"बेड़ाने पसिलि धान निन्जाइलि
पाती पाछे थेबि गालि
चुनटि हटाइ घून्गिआ खाइ
छने पुरे निहारिलि
निहारि होइलि छन...............................
सांगिदिआ तोमर नाम।"[7]

भावार्थ– इसमें प्रकृति के मनोरम दृश्य धान की खेत के रूप में और इनके जीवन निर्वाह के एक साधन के रूप में तथा मनोरंजन के माध्यम के रूप में इनकी संस्कृति को दर्शाता है। इसमें लोग खर पतवार चुनने का कार्य कर रहे हैं और खेत के हीड पर खड़ा होक खेत को निहार रहे हैं। इनके समाज में जन्म के समय जब बच्चे का नामकरण किया जाता है, तब गीत गाया जाता है–

"बुदाबरी बुदाबरी

बाटे आटे मकाडाल
मतसरि भांग.........................
बुदाबरी बुदाबरी।"[8]

यह गीत भतरी स्त्रियाँ मिलकर गाते हैं। जो इनकी खुशी और सामूहिकता को दर्शाता है। भतरा समाज में सिर्फ खुशी और मनोरंजन हेतु ही गीत नहीं गाए जाते, मृत्यु जैसे दुःख के अवसर में भी गीत गाए जाते हैं–

"काक जगता लागेद बलता दया काक जगता लागेद बलेत
काक बलुन काक जे काक बलुन काक।"[9]

भावार्थ– इन पंक्तियों में बच्चे अपनी मां की मृत्यु पर उसको याद करते हुए रो रहे हैं, जो गीतों के माध्यम से उनकी मन की वेदना प्रकट कर रहे हैं।

उपसंहार :– भतरा समाज की संस्कृति और लोकगीत इनको समृद्ध और अनोखा पहचान प्रदान करता है। लोकगीत सिर्फ खुशी के अवसर पर ही नहीं दुःख जैसी भावनाओं को व्यक्त करने हेतु भी गाये जाते हैं। यह मन के उद्वेग को बड़े ही मार्मिक और सजीवता के साथ अभिव्यक्त करता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक इनके प्रवाहमान संस्कृति को यह लोकगीत संजोए हुआ है। इनके लोकगीतों में प्रेम, श्रृंगार, व्यंग, श्रद्धा, भक्ति, सामूहिक, उल्लास, वेदना आदि भावों की अभिव्यक्ति होती है। यह सभी को एक माला में पिरोए हुआ है, जो इनकी एकता को दर्शाता है। यह इनकी संस्कृति है जो इनके परंपराओं और मान्यताओं का वाहक है। इसका संरक्षण करना हर एक मनुष्य का कर्तव्य है।

संदर्भ–सूची :–

1. आदिवासी सांस्कृतिक बोध और जीवन दर्शन– रवीन्द्र कुमार मीणा, www-jankriti-com
2. हिंदी साहित्य कोशण
3. Bhatara Sanskriti O Lok Sahitya, Compilation& Shri Subash Ch- Mishra, Academy of Tribal Dialects and Culture, 2002, page no- 67.
4. वही, पृ.सं.–72।
5. वही, पृ.सं.–88।
6. बस्तर का आदिवासी एवं लोकसंगीत, हरिहर वैष्णव, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, 2013, पृ.सं.85।
7. Bhatra Sanskriti O Lok Sahitya, Compilation& Shri Subash Ch- Mishra, Academy of Tribal Dialects and Culture, 2002, page no-118.
8. वही, पृ.सं.–15।
9. वही, पृ.सं.–137।

भाषाओं की सीमा में बोलियों का प्रयोग

(प्रचलित स्थानीय भाषाई प्रयोगों के संबंध में)

दीपेन्द्र कुमार*

प्रो. टी. कमलाबती देवी**

सारांश– भाषा ही संप्रेषण की सबल संचारिका है, भाषा भावनाओं एवं अभिव्यक्ति का सघन माध्यम है। दुनियाभर में भाषाओं के माध्यम से ही व्यक्ति अपने विचारों का आदान प्रदान करता है। सीमांत क्षेत्रों की प्रमुख भाषाओं में होने वाले संप्रेषण के मध्य में मुख्य भाषाओं की मिलीजुली स्थानीय बोलियों का उपयोग संप्रेषण को सरल और सार्थक बनाता है। साथ ही सीमांत क्षेत्रों में प्रचलित स्थानीय बोलियों से ही प्रमुख भाषाओं को मजबूत गठजोड भी मिलता है। सीमांत भाषा क्षेत्र किसी भी स्तर पर हो सकते हैं, जैसे–अंतरराष्ट्रीय, अंतरराज्यीय, जिलेवार अथवा देहाती क्षेत्रों के मध्य आदि। मानचित्र आधार पर सरल तरीके से क्षेत्र विभाजन आम रूप से देखा व समझा जा सकता है। किंतु भाषा और संस्कृति के रूप के क्षेत्र विभाजन मानचित्र देखा नहीं जा सकता अपितु अनुमानित आधार पर समझा जा सकता है। क्योंकि भाषा और संस्कृति मनुष्य और समाज के साथ संप्रेषित व चलायमान होती हैं। व्यक्ति जहां जाता है उसकी भाषा और संस्कृति उसके साथ ही होती है।

बीज शब्द– सीमांत, भाषाओ, बोलियों, संप्रेषण, अंतरराष्ट्रीय, अंतरराज्यीय, स्थानीय, प्रादेशिक, संस्कृति, मिलन, प्रभाव, परिणाम।

आलेख– सीमांत क्षेत्र को मानचित्र आधार पर इस प्रकार समझा जा सकता है कि दो देशों के बीच जो सीमा (बॉर्डर) निर्धारित है। उस निर्धारित सीमा क्षेत्र को सीमा सुरक्षा बलों द्वारा रक्षित किया जाता है, जैसे–दीवारों द्वारा, कंटीले तार लगाकर, सुरक्षा चौकियाँ स्थापित करके अथवा मील स्टोन आदि द्वारा। इस निर्धारण का अनुशासन स्तर एवं कड़ाई दोनों देशों के रिश्तों पर आधारित होती है। दोनों ही देशों के नागरिक एक–दूसरे देश के भीतर अपनी व दूसरे देश की सरकार के द्वारा निर्धारित नियमों के पालन करके प्रक्रिया के अंतर्गत जा आ सकते हैं। सीमांत क्षेत्रों से सीधे बिना अनुमति के प्रवेश नहीं कर सकते, इसे अवैध प्रवेश मानकर अपराध श्रेणी में माना जाता है। नागरिक औपचारिकतापूर्ण वीजा, पासपोर्ट आदि के साथ ही प्रवेश कर सकता है।

भारत में अंतरराज्यीय स्तर पर भी सीमाओं का निर्धारित पुलिस एवं प्रशासन द्वारा निर्धारित किया जाता है। व्यक्ति किसी दूसरे राज्य में आसानी से यात्रा, भ्रमण, निवास आदि कार्य अपनी मूल पहचान दस्तावेज के साथ कर सकता है। किंतु दूसरे राज्य में निवास हेतु सरकार द्वारा जनता हेतु निर्धारित मानकों को पूर्ण करना होगा। सरकारी सुविधाओं व योजनाओं आदि को प्राप्त करने हेतु उसे उस राज्य के प्रमाण–पत्रों व दस्तावेजों को बनवाने की आवश्यकता पड़ेगी। ताकि वह उस सीमा का निवासी मान्य हो। जिला, तहसील, ब्लाक आदि सीमाओं का निर्धारण पुलिस चौकी एवं पुलिस थानों के द्वारा निर्धारित होता है। दो जिलों के मध्य की सीमाओं पर बने पुलिस थानों के अंतर्गत होने वाली घटनाओं में अक्सर सीमा क्षेत्र विवाद उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे–पुलिस द्वारा कहा जाता है कि यह घटना अथवा अपराध हमारी सीमा में नहीं है अथवा हमारे जिले के थाना अंतर्गत नहीं है।

सीमांत क्षेत्र की भाषाओं एवं संस्कृति के आदान प्रदान में कोई सीमा निर्धारित नहीं होती। कोई नागरिक किसी भी देश की भाषा को बोल सकता है अथवा सांस्कृतिक भेशभूषा धारण कर सकता है। जैसे–भारत और श्रीलंका के सीमांत क्षेत्रों दोनों ही देशों के लोगों की भाषाओं में आपसी तालमेल है। इन

*** पी–एच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग, मणिपुर अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, मणिपुर–795140, इंफाल**

****शोध निर्देशिका एवं विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, मणिपुर अंतरराष्ट्रीय विश्वविद्यालय, मणिपुर–795140,(इंफाल)**

तटीय क्षेत्रों के लोग दोनों ही देशों की भाषा जानते हैं। श्रीलंका के समुद्रतट के लोग भारतीय तमिल भाषा को भली प्रकार से जानते हैं तो और भारतीय समुद्रतट के लोग सिंहली भाषा को अच्छे समझ और बोल सकते हैं। इसका मुख्य कारण दोनों देशों के मध्य लोगों का होने वाला आवागमन है, जो व्यापारिक व अन्य कारणों से लगभग दैनिक व्यवहार में है। दोनों ही देशों के इन सीमांत क्षेत्रों की संस्कृति भी काफी समानता या मिली जुली है। दोनों ही देशों के इन तटीय क्षेत्रों पर मछुआरे निवास करते हैं। दोनों का ही मुख्य व्यापार समुद्र पर आधारित मछलियों पर केंद्रित होता है। दोनों ही देशों में आपसी भाषायी संप्रेषण एवं सांस्कृतिक आदान प्रदान किसी प्रकार का सीमा निर्धारण सरकार द्वारा नहीं किया। हालांकि दोनों देशों के मछुआरे एक दूसरे के क्षेत्र पर प्रवेश करते हैं तो सरकार व सुरक्षा कर्मी कानूनी कार्यवाही करते हैं। लेकिन कोई भी देश भाषा एवं संस्कृति को जीवन में आचमन करे तो किसी भी प्रकार से उस पर कोई कानूनी अपराध नहीं है।

भारत एवं श्रीलंका के इस सीमांत क्षेत्र में प्रसारित भाषा दोनों ही देशों की मूल भाषाओं का गठजोड़ साध्य करती है। क्योंकि जैसे भारत की मुख्य भाषा हिंदी है और श्रीलंका की मुख्य भाषा सिंहली। दोनों ही देशों के केंद्र में अपनी मुख्य भाषाओं का अधिपत्य है। किंतु दोनों देशों के तटीय क्षेत्रों पर निवास करने वाली नागरिकों की भाषा स्थानीय बोली के रूप में प्रयुक्त होती है, जिसमें दोनों ही भाषाओं तमिल और सिंहली का मिलाजुला व्यवहार प्रयोग समाहित होता है। भारत के तटीय क्षेत्रों पर निर्वासित आदिवासी समाज की भाषा तमिल एवं सिंहली दोनों से ही मिश्रित अलग भाषा है, इसी प्रकार श्रीलंका क्षेत्र के तटीय इलाके की भाषा तमिल और सिंहली से मिलीजुली होती है, जबकि अन्य श्रीलंकाई क्षेत्रों में स्थानीय बोली के साथ सिंहली का प्रभाव अधिक पाया जाता है, ठीक इसी प्रकार भारत के अन्य राज्यों में हिंदी का वर्चस्व अधिक होता है। भारत के तमिलनाडु में तटीय क्षेत्रों में सिंहली–तमिल मिश्रित भाषा का कारण पूर्व में स्थित सेतु को भी माना जा सकता है।

स्थानीय मान्यता है कि पूर्व समय में जब रामसेतु ठीक था तो लोग दोनों ही देशों में इसके माध्यम से आते–जाते थे जिससे कि भाषाई एवं संस्कृतियों का आदान–प्रदान होने के कारण इस सीमांत क्षेत्र में तामिल–सिंहली भाषा से मिश्रित स्थानीय बोली अधिपत्य है। जिस देश की सरकारों में रिश्ता जितना अच्छा होता है उन देशों में भाषा और संस्कृतियों के संगम का मिश्रण उतना अधिक प्रभावपूर्ण होगा। जैसे नेपाल और भारत के मधुर रिश्तों के कारण यहां के नागरिकों का आवागमन सहज है, जिससे कि दोनों देशों में व्यापार के साथ–साथ। दोनों ही देशों में नागरिक विवाह भी कर लेते हैं, जिससे इन क्षेत्रों में भाषाओं और संस्कृति के मिलन का गहरा मिश्रण दिखाई देता है।

भारत में नेपाल के नागरिक कहीं भी कार्य अथवा व्यापार करने आपको मिल जाएंगे, ठीक इसी प्रकार से नेपाल में भी भारतीय लोग आसानी से मिल जाएंगे। दोनों ही देशों में भाषा और संस्कृति का कोई भी दबाब नहीं है। नेपाल का नागरिक भारत में नेपाली भाषा में बात कर सकता है अथवा संप्रेषण कर सकता है। इसी प्रकार भारतीय नागरिक भी नेपाल में हिंदी भाषा का उपयोग कर सकता है। दोनों ही नागरिक कहीं भी कोई भी वेशभूषा धारण कर सकते हैं व अपनी संस्कृति के आदान प्रदान करने में सहजता महसूस करते हैं। इसी प्रकार भारतीय क्षेत्रों की सीमाओं से जुड़े दूसरे देशों जैसे पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान और बर्मा आदि की सीमाओं के अंतिम क्षेत्रों में प्रचलित भाषाओं का स्थानीय बोलियों के साथ मिश्रित समन्वय व संप्रेषण दोनों देशों की भाषाओं और संस्कृतियों गठजोड़ को मजबूती प्रदान करता है। कहावत प्रचलित है कि– **''दस कोस पै पानी बदले, सौ कोस पै बानी।।''**

अर्थात हर दस कोस पर जैसे पानी का स्वाद और स्तर बदल जाता है, ठीक उसी प्रकार से सौ कोस पर जाने के उपरांत आपको भाषा के रूप एवं स्तर का बदलाव अथवा वहां की बदली हुई भाषा मिलेगी। जैसे–उत्तर प्रदेश में निवासी को हिंदी भाषा का ज्ञान है, हरियाणा वाला हरियाणवी जानता है, राजस्थान में राजस्थानीय भाषा का अपना क्षेत्र है। ऐसे ही पंजाब, हैदराबाद, ओड़िशा, नागालैंड, सिक्किम, मणिपुर, चेन्नई, कलकत्ता, तमिलनाडु, केरल, श्रीनगर, पच्छिम बंगाल आदि क्षेत्रों में अपनी–अपनी मुख्य भाषाओं का चलन है। लेकिन इन सभी क्षेत्रों के मध्य में आने वाली सीमाओं में प्रचलित भाषाओं में स्थानीय

बोलियों के शब्दों का प्रयोग व गठजोड़ अवश्य ही मिलता है। साथ ही इन सीमाओं में दोनों ही क्षेत्रों भाषाओं के मिश्रित शब्दों के प्रयोग स्थानीय देहाती बोलियों के साथ–साथ प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार यह स्थानीय बोलियों के द्वारा दोनों राज्यों अथवा क्षेत्रों के मध्य में गठजोड़ स्थापित करने वाली बोलियाँ होती हैं।

उत्तर प्रदेश में हिंदी भाषा के अंतर्गत जहां आगरा में ब्रजभाषा का प्रचुर प्रयोग होता है, वहीं आगरा के ग्रामीण क्षेत्रों में स्थानीय बोलियों की पकड़ खासा प्रभाव रखती है। स्थानीय बोलियों में लोग हिंदी भाषा की समझ तो रखते हैं किंतु प्रयोग में वे अपनी स्थानीय देहाती बोली को प्रमुखता से प्रयोग में लाते हैं। उनकी बोली के शब्दों में हिंदी एवं ब्रज के शब्दों की झलक स्पष्ट देखी जा सकती है। ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग उनके व्यवहारिक प्रयोग के कारण है तो हिंदी का राजभाषा होने के कारण उनको ज्ञान है। दूसरा एक प्रमुख कारण यह भी है कि हिंदी के समाचार–पत्र, समाचार न्यूज, संदेश आदि हिंदी के प्रचार को निरंतर गति प्रदान करते हैं। जबकि उनकी स्थानीय देहाती भाषा केवल स्थानीय बोलचाल एवं व्यवहारिक संप्रेषण मात्र तक सीमित होती है। इस मिश्रित भाषा की बोली को यदि आप पचास किलोमीटर दूर जाकर पाना चाहें तो यह संभव नहीं है। क्योंकि पचास किलोमीटर दूर इसी प्रकार की दूसरी मिश्रित बोली अपना प्रभाव बिखेरे हुए उपलब्ध होगी।

राजस्थान और उत्तर प्रदेश की सीमाओं पर निवास करने वाले ग्रामीण समाज में सांस्कृतिक वेशभूषा तो राज्यानुसार मिल भी जाएगी। किंतु भाषाई स्तर पर आपको राजस्थानी और हिंदी मिश्रित स्थानीय बोली ही मिलेगी। जिसमें दोनों भाषाओं के शब्दों के भाषा प्रयोग से स्थानीय बोली में अंतर होगा। उत्तर प्रदेश और दिल्ली के मध्य हरियाणा राज्य पड़ता है। अतः दिल्ली में हरियाणा की भाषा का अधिक प्रभाव देखने को मिलेगा है। साथ ही हरियाणा दिल्ली के करीब होने के कारण हरियाणा राज्य के लोगों का दिल्ली में आना–जाना प्रायः अधिक होने के कारण भी भाषाई प्रचलित की अधिकता का कारण है। ऐसे ही अन्य राज्यों में समीप वाले क्षेत्र व राज्य व संस्कृति का प्रभाव अधिक पाया जाता है। जबकि हिंदी भाषा के शब्दों का तालमेल लगभग सभी भाषाओं में प्रायः देखने को मिल सकता है।

उत्तर प्रदेश में आगरा मंडल सीमांत रूप तो बड़ा है ही। इसके में आने वाले जिलों में प्रायः आगरा, अलीगढ़, एटा, मथुरा फिरोजाबाद, हाथरस एवं मैनपुरी हैं। जिनकी सीमाओं के मध्य में बोलियों में भिन्नता प्रायः सामान्य रूप से देखी जा सकती है। इन जिलों में दूरी प्रायः 50 किलोमीटर से 100 किलोमीटर के भीतर ही आती है। लेकिन इनकी जिलों के मध्य में बोली जाने वाली हिंदी भाषा में सीमांत व स्थानीय बोलियों असमानता का बिंब स्पष्ट दिखाई देता है। सभी स्थानों पर शब्दों के अंतर के साथ–साथ बोली की लय भी महसूस की जा सकती है। आगरा में जहां किसी युवक को लड़का कहकर संबोधित करते हैं, वहीं स्थानीय देहाती भाषाओं में मौड़ा, छोरा, लौंडा तथा लड़की को मौड़ी, छोरी, लौंडिया आदि शब्दों का प्रचलन है।

1 .	जि किन कौ छोरा ऐ	–	जि किन की छोरी ऐ
2.	जे किन कौ मौड़ा ऐ	–	जे किन की मौड़ी ऐ
3.	जे किन कौ लौंडा ऐ	–	जे किन की लौंडिया ऐ

आगरा के सीमांत ग्रामीण क्षेत्र के मध्य में प्रचलित स्थानीय बोली भाषा में इस प्रकार से बोली जाएगी। हिंदी में यदि किसी को कुछ कहा जाये तो स्थानीय बोली में उसका प्रयोग कुछ इस प्रकार है–

1.	हिंदी भाषा में	–	मनोज सुरेश को आवाज दो।
	ग्रामीण स्थानीय बोली	–	मनोज सुरेश कूँ हेला दीयो।
2.	हिंदी भाषा में	–	मनोज यहाँ आना।
	ग्रामीण स्थानीय बोली	–	मनोज डिंग अइयो।
3.	हिंदी भाषा में	–	ऐ लड़के मेरे जूते लाना।
	ग्रामीण स्थानीय बोली	–	ओ मुड़ा मेय मुण्डा लिययियो।

4.	हिंदी भाषा में	–	कहाँ जा रहे हो।
	ग्रामीण स्थानीय बोली	–	काँ जाए रहो रे।
5.	हिंदी भाषा में	–	फसल में पानी लगा आओ।
	ग्रामीण स्थानीय बोली	–	खेत में पानी दियइयो।
6.	हिंदी भाषा में	–	क्या बिल्कुल ही जानवर हो?
	ग्रामीण स्थानीय बोली	–	निरौ ढोरु ऐ तू?
7.	हिंदी भाषा में	–	नहीं मानेगौ तू?
	ग्रामीण स्थानीय बोली	–	नायै माँनैगौ तू?
8.	हिंदी भाषा में	–	किस जगह जा रहे हो तुम?
	ग्रामीण स्थानीय बोली	–	कित ठौर कूँ जाइ रौए तू?
9.	हिंदी भाषा में	–	नाश्ता कर लिया।
	ग्रामीण स्थानीय बोली	–	कलूउ करि लयो।
10.	हिंदी भाषा में	–	मुझे नींद आ रही है।
	ग्रामीण स्थानीय बोली	–	मोए औंग आई रई ऐ।

हिंदी भाषा के सभी क्षेत्रों में नागरिकों द्वारा अपनी–अपनी क्षेत्रीय बोलियों का प्रयोग हिंदी मिश्रित किया जाता है। यह बोलियाँ मुख्य भाषाओं के तले होकर विभिन्न रूपों में प्रचलित व कार्यशील रहती हैं और कहा जाए कि नवीन रूप में परिवर्तित होती रहती हैं। जैसे–कोई अवधी भाषा जानने वाला यदि उत्तर प्रदेश की ग्रामीण बोली के संपर्क में आएगा तो उसके परिवार की नई पीढ़ी की भाषा में अवधी एवं हिंदी के ग्रामीणांचल की प्रचलित बोली के शब्दों की मिलावट हो गई और उनकी यह नई पीढ़ी पंजाब चली जाएगी, तो अगली पीढ़ी में कुछ पंजाबी के शब्दों का समावेश उनकी बोली में जुड़ जाएगा। हालांकि यह कहीं लिखित रूप में परंपरागत रूप से चलाए मान नहीं है। इसलिए इसकी व्यक्ति की मनोभाषिकता एवं व्यावहारिक की सरलीकरण की दृष्टि उसके हित और लाभ के साथ साध्य होती है। वहीं मुख्य भाषा जैसै–हिंदी, राजस्थानी, पंजाबी, बंगाली, अवधी, बुंदेली आदि लिखित रूप से चलाएमान होने के कारण एवं शिक्षा संस्थानों द्वारा शिक्षण आदि प्रदत्त माध्यमों से इन भाषाओं के प्रयोग में समानता और एकरूपता प्राप्त होती है।

देहाती और शहरी भाषाओं के अंतर्गत आने वाले भाषाई अंतर में क्षेत्रों एवं ग्रामीण अंचलों के नियमित एवं परंपरागत रूप से बोली जाने वाली क्षेत्रीय भाषाओं में स्थानीय बोलियों के मिले जुले शब्दों का मिश्रण होता है। जैसे आगरा के शहर में बोली जाने वाली भाषा में हिंदी भाषा के साथ स्थानीय बोली के शब्द प्राप्त होते है, वहीं आगरा से बाहर यमुनानदी पास बसे हुए देहाती एवं ग्रामीण क्षेत्रों में भाषा तो हिंदी है किंतु उसमें प्रयुक्त होने वाले शब्दों में देहाती परंपरागत बोली के शब्द भी मिश्रित होते हैं। इसी प्रकार आगरा, मथुरा और फिरोजाबाद आदि आगरा मंडल के जिलों की भाषा मूल रूप से हिंदी है, लेकिन इन जिलों के मध्य स्थित सीमांत क्षेत्रों की भाषा में अलग–अलग बोलियों के मिश्रित अलग–अलग शब्द मिलते हैं। जैसे–हिंदी भाषा में आगरा मंडल के जिलों में लड़का को लड़का ही बोला जाता है। आगरा के शहरी क्षेत्रों में लड़का को आगरा देहाती ग्रामीण अंचलों में दूसरे नामों से जाना जाता है, वहीं क्षेत्रों जबकि मथुरा में लड़के मध्य भाषा हिंदी ही है, जैसे–

आगरा शहरी क्षेत्रों में प्रचलित भाषा में बोलियों के शब्दों का प्रयोग–

यह किन का लड़का है।
यह किन का छोरा है।
यह किन का बेटा है।
यह किन का लाला है।

ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित बोलियों के शब्द प्रयोग –

जि किन कौ लरिका ऐ।

जे कौन कौ छोरा है।
जि किन को बेटा ऐ।
जे कौन कौ लाला है।
जि किन कौ लल्लू ऐ।
जे कौन का लौंडा ऐ।
जि मौड़ा कोन कौ ऐ।
जा मौड़ा किन को ऐ।

'लड़का' शब्द को क्षेत्रों और भाषाओं में प्रचलन शब्दों के अनुरूप प्रयोग में लाया जाता है। जैसे–आगरा मंडल के क्षेत्र में हिंदी भाषा के लिए लड़का, लड़के, लड़के शब्द प्रयोग में आमतौर पर उपयोग किया जाता है। वहीं आगरा के आस–पास के ग्रामीण क्षेत्रों में लड़िका, लरिका को आमबोल चाल में प्रयोग में लाया जाता है। मथुरा के देहाती क्षेत्र में लड़का को छोरा, छौरा के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। आगरा के यमुनापार के ग्रामीण क्षेत्र में लड़का को लल्लू नाम से संबोधित किया जाता है। अलीगढ़ के देहाती क्षेत्र में लड़का को लोंडा, लौंडा शब्द के रूप संबोधित किया जाता है। कहीं–कहीं अधिक पढ़े–लिखे व शिष्टाचार प्राप्त परिवार में पुत्र के रूप शब्द का प्रयोग भी अनायास देखने को मिल जाता है। आगरा के राजस्थानी सीमा में लगे क्षेत्रों में लड़का शब्द को देहाती भाषा में 'मुड़ा' कहा जाता है। यहां के क्षेत्रों में राजस्थानी प्रभाव के रूप में 'न' के प्रयोग 'ण' में प्रभावी होते भी देखे जा सकते हैं।

निष्कर्ष – अतः भाषाई स्तर के आधार पर दो सीमांत क्षेत्रों की सीमाओं के मध्य स्थित समाज पर दोहरी भाषाओं के प्रयोग का प्रभाव रहता है। दोहरी भाषाओं के प्रचार संबंधी वर्चस्व के संघर्ष की उस आंतरिक वृत्ति को सीमांत क्षेत्र के समाज द्वारा स्थानीय प्रयोग में लायी जाने वाली बोलियों के द्वारा पूर्ण से अधिग्रहित किया जाता है। साथ ही दोनों भाषाओं के बीच संस्कृति समन्वय एवं आंतरिक संबंधों की क्रिया में मजबूत गठजोड़ बनाते हुए सीमांत भाषाओं के मध्य सेतु का काम किया जाता है।

संदर्भ–सूची :–

1. मानव व्यवहार का अध्ययन : डॉ. आर.के.ओझा, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्रथम संस्कसरण, 1994–95।
2. भाषा और संस्कृति : डॉ. भोलानाथ तिवारी, प्रथम संस्करण, 1984, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।
3. मनोवैज्ञानिक संप्रदाय : डॉ. रामशकल पाण्डेय, रामप्रसाद एण्ड संस, आगरा, 1965।
4. मनोविश्लेषण : फ्रायड (हि.सं.), अनु. देवेन्द्रकुमार, प्रथम संस्करण, 1958 राजपाल एण्ड संस, दिल्ली।
5. मनोभाषा विज्ञान एक परिचय : पुष्पा श्रीवास्तव, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, 1992।
6. मनोविश्लेषण और मानसिक प्रक्रियाएँ : डॉ. पद्मा अग्रवाल, 1955, मनोविज्ञान प्रकाशन, बनारस।
7. भारतीय शैली विज्ञान, वि. कृष्णस्वामी अय्यंगर ग्रंथ – शैली और शैली विज्ञान, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा, 1976।
8. भाषा और साहित्य : अशोक राव केलकर (आलेख) ग्रंथ – शैली और शैली विज्ञान, संपादक, सुरेशकुमार व रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, प्रथम संस्करण, 1976, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
9. अनुप्रयुक्त एवं भाषा विज्ञान की त्रैमासिक पत्रिका, गवेषणा–137, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा।
10. भाषा पत्रिका, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
11. इंटरनेट साभार।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का कहानी संग्रह 'चॉकलेट'
हिंदी साहित्य में समलैंगिकता का प्रथम स्वर

अभिषेक शर्मा*

सार :– 1927 में प्रकाशित पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का "चॉकलेट कहानी संग्रह" हिंदी साहित्य में पहली ऐसी रचना मानी जाती है, जो "समलैंगिकता" जैसे विषय पर केन्द्रित 'आठ कहानियों' का एक संग्रह है।[1] उग्र ने इस रचना के माध्यम से समलैंगिकता पर खुलकर चर्चा की और इसे समाज की एक आवश्यकता व उसका अभिन्न हिस्सा बताया है। साथ ही, उन्होंने समाज में प्रचलित नैतिक मूल्यों और मान्यताओं को आईना दिखाते हुए चुनौती देने के साथ यौन/सेक्स तथा समलैंगिकता जैसे विषयों पर निर्भीक होकर लिखा। 'उग्र' ने न केवल इस विषय पर बल्कि समाज में चल रहे हर उस विषय पर लिखा जिसे समाज के लिए हाशिए पर या बंद कमरों में चर्चा का विषय माना जाता रहा था। उनका इन विषयों पर उस समय लिखना आज के दृष्टिकोण से समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक है, क्योंकि आज भी समाज इन विषयों पर खुले तौर पर चर्चा करने में संकोच करता है। इस पुस्तक के विरोध में महात्मा गांधी से लेकर साहित्य के प्रसिद्ध लेखक प्रेमचंद व विशाल भारत के संपादक बनारसीदास चतुर्वेदी ने तो उग्र के संपूर्ण साहित्य को ही 'घासलेटी साहित्य' कहकर इसे साहित्य मानने से ही इनकार करते हुए इनके साहित्य की निंदा की हैं, किंतु उग्र ने इन बातों की चिन्ता ना करते हुए इस विषय को समय की मांग के रूप में उठाते हुए लोगों में समलैंगिक व ऐसे विषयों के लेखन को जागरूकता का प्रतीक बना कर प्रतिष्ठित किया। "चॉकलेट" न केवल एक शीर्षक है, बल्कि एक प्रतीकात्मक रूप भी है, जो किशोरों के प्रेम, वासना, कामुकता और नैतिक पतन का सारगर्भित वर्णन प्रस्तुत करता है। उग्र की दृष्टि और इन विषयों पर उनके साहसिक लेखन ने इस कहानी संग्रह को आज के समय में और भी अधिक प्रासंगिक बना दिया है।

बीज शब्द :– चॉकलेट, उग्र, समलैंगिकता, सेक्स, कामुकता, सारगर्भित, घासलेटी।

मूल आलेख :– कहानी संग्रह "चॉकलेट" उग्र की भविष्यवादी दृष्टि को साझा करता है। "लौंडेबाज़ी", जिसे उग्र की भाषा में "चॉकलेट प्रवृत्ति" कहा जाता है, सदियों से समाज में प्रचलित है। इस विषय पर उग्र का लेखन समाज के एक कमजोर वर्ग को बचाने और समलैंगिक लेखन को जगह देने का एक प्रयास मात्र है। उनका मानना था कि यह प्रवृत्ति समाज में लंबे समय से मौजूद है, जहां प्रतिष्ठित से प्रतिष्ठित लोग भी इसमें शामिल रहे हैं, लेकिन इस विषय पर खुलकर बोलने का साहस किसी में नहीं है; हर कोई इसे छिपाने में व्यस्त है, लेकिन वे अपनी अनियंत्रित यौन इच्छाओं से खुद को मुक्त भी नहीं करना चाहते हैं। अंततः ये लोग समाज के दोहरे चरित्र का एक प्रमुख चेहरा बनते जा रहे हैं जो इसमें शामिल तो हैं ही, साथ ही अभिजात्य दर्जा भी बनाए हुए हैं।

उग्र का दृष्टिकोण समलैंगिकता जैसे विषय पर समाज के भविष्य के लिए एक शक्तिशाली लक्ष्य प्रस्तुत करता है। आजादी से पहले प्रकाशित यह पुस्तक न केवल 20वीं सदी में बल्कि आज भी प्रासंगिक है, जैसा कि इसकी प्रत्येक कहानी साबित करती है। जिस विषय ने उस समय समाज में भारी विवाद और उथल–पुथल मचा दी थी, वही आज के समय में खुली चर्चा का केंद्र बना हुआ है।

अंततः इस कहानी संग्रह का मुख्य उद्देश्य समाज के सामने उन विषयों को लाना था जो भविष्य के लिए एक नई दृष्टि प्रदान कर सकें साथ ही में ऐसे विषयों को सामने ला सके जो समाज के लिए जरूरी होने के साथ–साथ समाज में प्रचलित भी है। "चॉकलेट" में संकलित प्रत्येक कहानी उन शरीर भोगि लोगों के खिलाफ खड़ी है जो अपनी वासना की पूर्ति के लिए मासूम और भोले–भाले बच्चों का शोषण करते हैं।

***शोधार्थी, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।**

ये कहानियाँ बच्चों के संरक्षण और कल्याण के लिए एक सशक्त माध्यम बनकर उभरीं। इसके अलावा, उग्र की तीक्ष्ण और भविष्यदर्शी दृष्टि इन विषयों पर उनके लेखन को आज के समय में प्रासंगिक और मांग के रूप में सामने रखती है।

चॉकलेट :– लेखक के अनुसार चॉकलेट का मतलब उस युवा लड़के से है जो स्मार्ट, गोरा और कुछ स्त्रियोचित विशेषताएं वाला दिखता है। इस पुस्तक की पहली कहानी ही चॉकलेट नाम से है, जहाँ हम चॉकलेट की परिभाषा देख वह समझ सकते हैं। इस कहानी में 'चॉकलेट' और 'पॉकेट बुक' जैसे शब्दों का उपयोग किया गया है, जहाँ उग्र ने इस व्यवस्था को महामारी से भी बुरा बताया है। यह समाज में व्याप्त उस कुरीति की तरह है जिसे लोग जानते हुए भी अनदेखा करना पसंद करते हैं। साथ ही, वेश्यावृत्ति, विधवा विवाह जैसी समस्याओं को देखते हुए भी समाज चुप्पी साधे रखना पसंद करता है।

चॉकलेट' देश के उन भोले–भाले, कमसिन और सुन्दर लड़कों को कहते हैं, जिन्हें समाज के राक्षस अपनी 'वासना' की तृप्ति के लिए सर्वनाश के मुख में धकेलते हैं। ये बच्चे समाज के अच्छे–अच्छों तक से नष्ट किये जाते हैं और दुश्चरित्र बनाये जाते हैं। प्रान्त–प्रान्त में इनके भिन्न–भिन्न पर्याय हैं। हमारे युक्त–प्रदेश के लोग इन्हें 'चॉकलेट', 'पॉकेट बुक' आदि नामोपनामों से याद करते हैं। इनके अनेक उपनाम ऐसे भी हैं जिन्हें सभ्य भाषा लिख नहीं सकती।''[2]

समाज का मानना है कि जब तक बंद दरवाजों के पीछे गलत चीजें हो रही हैं, तब तक कुछ भी गलत नहीं माना जाता। साथ ही, बाल प्रेम को उचित ठहराते हुए, जिस प्रकार कीचड़ में कमल खिलता है, उसी प्रकार वे अपने चरित्र को भी कीचड़ में खिले कमल के समान शुद्ध मानते हैं। लेकिन जब उनके चरित्र पर सवाल उठाया जाता है तो वे समाज के प्रतिष्ठित लोगों पर भी आरोप लगाने से नहीं कतराते। इस विषय पर लेखक का यह भी कहना है कि 'चॉकलेट' समाज की उस व्यवस्था की तरह है, जो बच्चों का आत्मविश्वास बढ़ाने की बजाय उन्हें गुमराह करने के लिए हमेशा तैयार रहती है। परिवार भी इन बच्चों को मशीन की तरह देखता है, जहां इनके सम्पूर्ण विकास पर ध्यान देने के बजाय सिर्फ स्कूल जाना और अंततः पास हो जाना ही परिवार और बच्चों के लिए आदर्श मान लिया जाता है। लेखक ने बच्चों के कल्याण से जुड़े महत्वपूर्ण मुद्दों के साथ–साथ उन्हें भटकाने वाले विभिन्न कारणों पर भी चर्चा की है। साथ ही स्कूलों में बच्चों के प्रति शिक्षकों के व्यवहार और उनके द्वारा किए जाने वाले अनुचित आचरण और समाज पर पड़ने वाले प्रभावों पर भी प्रकाश डाला गया है।

पालट :– पालट से मतलब है बदलाव/ परिवर्तन और कहानी में पुरुष के प्रति पुरुष रोमांस का विस्तृत वर्णन किया गया है जो संस्कृति और समाज के अनुसार से बदलाव/ परिवर्तन को दर्शाता है। यह पहली ऐसी किताब है जो पूर्ण रूप से और स्पष्ट तौर पर पुरुष के पुरुष के प्रति आकर्षण एवं योन सेक्स संबंधी सोच को उजागर करती है।

''पुरुष पर–उसके सौन्दर्य के लिए–पुरुष का प्रेम होना ! मेरी समझ से तो भाई, जैसे 'नारि न मोह नारि के रूपा' वैसे ही 'पुरुष न मोह पुरुष के रूपा' भी होना चाहिए।''[3]

सत्य जहाँ भी हो वहाँ उसका आदर होना चाहिए। सौन्दर्य ही सत्य है। फिर वह चाहे स्त्री के पास हो या पुरुष के– 'हम इश्क के बन्दे हैं।''[4]

यहां दो बातें स्पष्ट रूप से आपस में टकराती नजर आती हैं। एक पक्ष वह है जो पुरुष–पुरुष संबंधों को समाज के विरुद्ध मानता है और बच्चों के प्रति ऐसी सोच रखने वालों का विरोध करता है। दूसरी ओर, ऐसे शिक्षित लोग भी हैं जो जानते हैं कि यह सब अनुचित है, फिर भी वे इन चीजों को महज मनोरंजन के रूप में देखते हैं और वे छोटे बच्चों को अपनी वासना भरी नजरों का शिकार बनाकर उनकी जिंदगी बर्बाद कर रहे हैं। इस तर्क को सही ठहराते हुए इंसान भगवान और स्वयं के बीच का अंतर तक भूल बैठता है। यहाँ लेखक ने लड़कों के ऐसे चरित्र के निर्माण का मुख्य कारण उनके घर को बताया है, जहाँ परिवार के मुखिया द्वारा किए गए कार्यों से प्रेरित होकर बालक के मन में इन विषयों को लेकर जिज्ञासा उत्पन्न होती है। यह जिज्ञासा उसे इन चीजों की तलाश में बाज़ार रूपी संसार की ओर मोड़ देती

है। बाज़ार में पहले से ही ऐसे लोग मौजूद होते हैं, जो इन अबोध बालकों को अपने जाल में फँसाने के लिए तैयार बैठे होते हैं। ये लोग जानते हैं कि उपहार, सिनेमा, खान–पान जैसी चीज़ों का लालच देकर इन मासूम बच्चों को प्रेम और वासना के जाल में फंसाया जा सकता है। इस तरह पहले उनके नैतिक पतन की प्रक्रिया शुरू होती है और बाद में शारीरिक शोषण कर उनका पूर्ण पतन कर दिया जाता है। इसके साथ ही लेखक का यह भी मानना है कि जहां एक ओर हमारा देश वीर जवानों से भरा हुआ था, वहीं आज के वीर जवान इन कुत्सित चक्रों में फंसकर स्वयं का सर्वनाश कर रहे हैं। एक ओर हमारी पुरानी परंपराएं थीं, तो दूसरी ओर आज का नया युग और उसकी नई पद्धति है, जो किशोरों को कठोरता के स्थान पर सौम्यता का पाठ पढ़ा रही है, और शस्त्रों के स्थान पर नैन लड़ाना सिखा रही है।

हम फ़िदाये लखनऊ :– इस कहानी में लेखक ने शिक्षक समाज पर तंज कसते हुए उस शिक्षक की ओर इशारा किया है, जो अपने कर्तव्य को भूलकर बच्चों को भ्रष्ट करने के लिए अपनी वासना पूर्ति के रास्ते खोजता रहता है। वह शिक्षकों के चरित्र को दूषित कर संपूर्ण अध्यापक समाज को तार–तार कर रहा है।

"शिक्षक होकर लड़कों का चरित्र नष्ट करने वाले राक्षस ! तुमको किस नरक में स्थान मिलेगा?"[5]

उक्त कहानी उन सभी शिक्षकों के खिलाफ एक संदेश है, जो अपनी पद की शक्ति के बल पर कोमल बालकों के साथ अत्याचार करने का अधिकार समझ बैठे हैं। शिक्षक का कार्य बच्चों को शिक्षित कर देश के भविष्य का सही निर्माण करना होता है, न कि उनके यौन शोषण के माध्यम से अपनी वासना की पूर्ति करना। वहीं, बच्चों को चाहिए कि वे पढ़ाई पर ध्यान देकर आत्मविकास करें तथा अपने मानसिक एवं शारीरिक विकास की ओर अग्रसर हों, न कि ऐसे जाल में फँसकर अपना बचपन नष्ट करें।

कमरिया नागिन–सी बल खाय :– इस कहानी में लेखक ने चॉकलेट के नए प्रकार और समाज के लोगों को उजागर किया है। साथ ही यह भी बताया गया है कि पैसे के लिए आदमी को क्या–क्या करना पड़ता है और क्या–क्या सहना पड़ता है। अंत में लेखक ने कानून के माध्यम से सुधार की ओर भी इशारा किया है।

एक अबोध बालक का "कमरिया नागिन–सी बल खाए" गाने पर नाचना और कमर मटकाना उसकी आर्थिक विपन्नता को दर्शाता है। वहीं, इस मंचन को देखने वाले लोगों की अभद्र टिप्पणियाँ इस ओर संकेत करती हैं कि समाज दो खेमों में बंट चुका है– एक ओर संपन्न वर्ग है, जो लोगों की मजबूरी का फायदा उठाने के लिए हमेशा तैयार रहता है और अपने पैसों के घमंड में रंगमंच की टिकट, पान और फालतू भोज पर पैसा उड़ाने को अपनी शान समझता है। दूसरी ओर, वह समाज है जो अपनी दैनिक जरूरतों को पूरा करने के लिए कुछ भी करने को मजबूर है। साथ ही, लेखक ने फारसी रंगमंच की निंदा करते हुए अपनी निराशा व्यक्त की है और फारसी मंच पर भारतीय और भारतीय नाटकों के मंचन के तरीके पर कटाक्ष किया है।

"एक तो भारतीय नाटक, दूसरे पारसी स्टेज। पारसी स्टेज पर जाकर 99 प्रतिशत भारतीय लेखकों के नाटक, नीम पर के करेले हो जाते हैं।"[6]

"आदमीयत ? आदमीयत कहाँ है ? बुलाओ तो मेरे सामने। हरामजादी आदमीयत को सैकड़ों जूते न लगाऊँ तो कहना ! हा–हा–हा–हा![7]

लेखक ने यह भी चर्चा की है कि कैसे मनुष्य धन के लालच में अपनी मानवता और मनुष्यता को नष्ट कर रहा है तथा अपना विवेक को भी खोता जा रहा है। एक तरफ गोपाल रामू का पिता पैसों के लिए अपने बेटे को लड़की के वेश में नचाता है, वहीं दूसरी तरफ शराब के नशे में एक इज्जतदार इंसान अपनी इंसानियत को त्याग कर जानवर जैसा व्यवहार करने लगता है।

चॉकलेट–चर्चा :– निःसंदेह यह कहानी, कहानी संग्रह "चॉकलेट" की सबसे उत्तम एवं विचारोत्तेजक कहानी है, जिसमें लेखक ने बताया है कि समाज में "चॉकलेट" जैसे विषयों पर चर्चा करना क्यों महत्वपूर्ण है और इस पर अधिक लेखन क्यों होना चाहिए। समलैंगिकता एक ऐसा विषय है, जिसे केवल मनोरंजन की दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि उन अबोध बच्चों को यौन शोषण से बचाने के लिए इस पर गंभीर विमर्श

होना चाहिए, जो अनजाने में गलत संगति में पड़कर अपने पथ से भ्रष्ट हो जाते हैं। यहाँ लेखक ने समाज में मौजूद बुरे लोगों की ओर भी इशारा किया है, जो कहने को तो सम्मानित व्यक्ति कहलाते हैं, लेकिन उनका आचरण नीच प्रकृति का होता है। स्वभाव से वे शेर की तरह क्रूर होते हैं, जबकि बाहर से वे गाय की तरह मासूम दिखते हैं।

::समाज जिन कुकर्मों को छिपाकर करता है, उन पर प्रकाश डालने की आवश्यकता ही क्या है? धोती के भीतर सभी नंगे होते हैं।''[8]

"चॉकलेट" / "समलैंगिकता" चर्चा के माध्यम से समाज में मौजूद दो प्रकार के लोगों की मानसिकता को दर्शाया गया है। एक ओर वे लोग हैं जो "चॉकलेट" जैसे विषय पर खुलकर चर्चा करके और इस मुद्दे को हल करके सामाजिक कल्याण में विश्वास करते हैं। दूसरी ओर, ऐसा समाज भी है जो इस विषय को दबाए रखना चाहता है, क्योंकि ऐसे विषयों को समाज की संस्कृति के लिए हानिकारक और नकारात्मक प्रभाव डालने वाला माना जाता है। अंततः लेखक का मानना है कि समाज में बदलाव तभी संभव है जब अधिक से अधिक लोग इस विषय पर खुलकर चर्चा करें, विचार–विमर्श करें और यौन शोषण को समाप्त करने के लिए पहल करें।

हे सुकुमार :– यह कहानी कानूनी व्यवस्था पर कटाक्ष करती है और कानून को यौन शोषण का समर्थन करने तथा अश्लीलता के खिलाफ कुछ न करने के लिए जिम्मेदार ठहराती है, तथा यह संदेश देती है कि यदि यदि कानून ऐसे मुद्दों पर हमारा साथ नहीं देता है तो हमें इस अपराध को मिटाने के लिए कानून को अपने हाथ में लेना चाहिए ताकि कम से कम हम छोटे बच्चों को इस यौन शोषण से बचा सकें।

"हे सुकुमार ! तुम अभी नहीं जानते कि यह दुनिया कैसी है ? तुम उत्सुकता और 'कौन–क्या?' से भरे हो। तुम अच्छी और बुरी बातों में भेद नहीं देख सकते। इसीलिए तुमसे कहता हूँ। हँसी न समझो मेरी बातों को। तुम्हारी यह उम्र बुरी बातों के सीखने की नहीं है। अभी तुम्हें प्रेम का नाटक नहीं खेलना चाहिए, किसी के बहकावे में आकर किसी की छाती में नहीं छिपना चाहिए। चुम्बन–आलिंगन का मर्म समझने से परहेज़ करना चाहिए और अपने खूबसूरत रूप, फूले गालों, लाल होंठों से व्यापार नहीं करना चाहिए! ''[9]

इस प्रकार, इस कहानी में लेखक ने छोटे बच्चों को उनकी उम्र के अनुकूल आचरण करने का संदेश देते हुए यह ध्यान दिलाया है कि उनके लिए क्या उपयुक्त है। जहां एक ओर समाज इस विषय पर चुप्पी साधे बैठा है, वहीं यह कहानी समाज में क्रांति और कल्याणकारी भावना का प्रतीक है, जिसका एकमात्र उद्देश्य समाज में यौन शोषण की रोकथाम है।

"कसरत करो, खाओ, हँसो, खेलो और पढ़ो! इसी से तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल–से–उज्ज्वल होगा। अभी से दोस्त और प्रियतम और प्यारे और नाथ और देवता के अर्थ को विश्व कोष में न ढूँढ़ो। अभी तुम्हें इसकी जरूरत नहीं है। सच कहता हूँ। हँसी न समझो ! मेरी बातें यहाँ से हटने पर भूल न जाना।[10]

इसके साथ ही, लेखक ने बच्चों को बच्चों सा आचरण करने पर ध्यान देते हुए उन्हें "गुड टच" और "बैड टच" का अंतर समझाया है। जहां उनका इस उम्र में केवल और केवल खुद के विकास की ओर ध्यान होना चाहिए, न कि इन शारीरिक आकर्षणों पर, क्योंकि उनका शरीर शुद्ध और देवताओं तुल्य है। उन्हें इस बात को समझाते हुए यह संदेश दिया है कि वे इन शारीरिक कृत्यों में लिप्त होकर अपने आप को अपवित्र न करें और अपनी रक्षा करें।

व्यभिचारी प्यार :– यह कहानी अमीरों, आधुनिक शिक्षा प्रणाली, शिक्षित और अशिक्षित लोगों के व्यवहार और आचरण को दिखाकर समाज में खोखले लोगों की सच्चाई को उजागर करती है। जहाँ एक ओर यह दर्शाया गया है कि धनवान व्यक्ति धन के माध्यम से किये गये कार्यों के बावजूद समाज में अपना स्थान बनाये रखता है, वहीं दूसरी ओर, गरीबी से पीड़ित लोग यौन शोषण का शिकार सिर्फ इसलिए बनते हैं क्योंकि सभ्य समाज अपने पैसे के बल पर ऐसा करने से बच जाता है।

''पैसा आजकल बड़े–से–बड़ा पाप भी छिपा लेता है।''[11]

"मैं दर्जनों ऐसे पढ़े–लिखे लोगों को जानता हूँ जो अपनी विद्या और विद्वता की आड़ में वही पाप करते हैं जो कल्याणचन्द्र पैसे की आड़ में कर रहा है।''[12]

यहां धन के बल पर किए गए कार्य की तुलना उन शिक्षित लोगों से की गई है जो अपने ज्ञान के बल पर दुनिया को जीत सकते हैं। इसी तरह पैसे की ताकत से गलत को भी सही दिखाकर अपने पक्ष में मोड़ा जा सकता है।

"हमारी प्राचीन शिक्षाप्रणाली हमें ऐसा असात्विक नहीं बनाती थी। अब तो बारह बरस तक अंग्रेज़ी शिक्षालय की दिल्ली में भाड़ झोंक लेने के बाद, विद्वान युवक, विविध पापों की दुकानों की जाँच करने निकलते हैं। चार अक्षर अंग्रेज़ी आयी कि 'व्हाइट हॉर्स' पर चढ़ बैठे, 'व्हाइट मार्केट' में पहुँच गये और लज्जा छोड़कर, सौन्दर्य और प्रेम और अन्वेषण का पर्दा डाल कर, लगे चॉकलेट–पन्थ पर वासनाओं की झाड़ू देने।''[13]

"हमारी वर्तमान शिक्षा–संस्थाएँ इस योग्य नहीं हैं कि हम निश्चिन्त होकर अपने बालकों को अपने वंश के दीपकों को, अपने कुल के यशों को– उनके सिपुर्द कर सकें। हमारे स्कूल बारह वर्ष में, माथे को अजायबघर ज़रूर बना देते हैं, मगर, शिक्षाप्रणाली, अध्यापक निर्वाचन प्रथा, विदेशी होने के कारण उनके हृदय बिलकुल नरक बना दिये जाते हैं– उहँ! ''[14]

यहां आधुनिक शिक्षा प्रणाली पर तीखा कटाक्ष किया गया है, जहां एक ओर प्राचीन शिक्षा और शिक्षक बच्चों में सात्विक गुणों का विकास करते थे, वहीं दूसरी ओर आधुनिक शिक्षा प्रणाली बच्चों में राक्षसी गुणों को जन्म दे रही है। इसके अलावा, यह शिक्षा प्रणाली बच्चों को शिक्षा का महत्व समझाने के बजाय उन्हें अपंग बना रही है। इसके साथ ही आज के आधुनिक शिक्षकों की भी इसमें समान भूमिका है, इस ओर विशेष ध्यान आकर्षित किया गया है। साथ ही यह भी दिखाया गया है कि काम की जगह समाज की हर संस्था में शोषण हो रहा है, जिसके कारण घर से बाहर लोगों पर समाज का भरोसा कम हो रहा है। यह परिवर्तन "वसुधैव कुटुम्बकम" की परिभाषा को बदल रहा है तथा लोगों को एकल जीवन की ओर धकेल रहा है, जिसके कारण पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव और अधिक बढ़ रहा है।

समाज को दूसरों की चुगली में जितना मज़ा मिलता है उतना मज़ा उनका उद्धार करने की चेष्टा में नहीं।[15]

इस प्रकार, यद्यपि समाज भली–भाँति जानता है कि उसके साथ क्या गलत हो रहा है, फिर भी वह चुप रहता है, परन्तु समाज के कल्याण के लिए आवाज उठाना उन्हें स्वीकार्य नहीं है इससे पता चलता है कि दुनिया अब कितनी खोखली होती जा रही है। राष्ट्रहित के बारे में सोचने के बजाय लोग अपने मनोरंजन के साधन ढूंढने में व्यस्त हैं, जो भविष्य में समाज के लिए और भी खतरनाक साबित हो सकता है। इससे समाज के उस दोहारे चरित्र व चेहरे की सच्चाई उजागर होती है जो असल में चालाक और धोखेबाज है लेकिन समाज की नज़रो में वो खुद को मासूम और पवित्र दिखता है।

जेल में :– यह कहानी इस कहानी संग्रह की अंतिम कहानी है। इसमें लेखक ने सबसे पहले पुलिस और पुलिस तंत्र की मनमानी तथा व्यवस्था पर सवाल उठाया है। साथ ही, उन्होंने यह भी दर्शाया है कि चॉकलेट जैसी व्यवस्था समाज के हर कोने में मौजूद है चाहे वह सभ्य समाज हो या फिर जेल जैसी जगह। चॉकलेट को केवल मनोरंजन और शौकियापन का प्रतीक नहीं माना गया है, बल्कि इसे एक घृणा की दृष्टि से भी देखा गया है, जो समाज में गहरी जड़ें जमाए बैठी समस्याओं को उजागर करता है।

"सुक्खू, जेल में 'ऐसा काम' क्यों होता है? यह तो बहुत बुरी बात है। इसका मतलब तो यही हुआ कि पापी यहाँ आकर भयानक पापी बन जाता है। इसे रोका क्यों नहीं जाता ?''[16]

जेल के कैदियों का लड़कों के प्रति यौन आकर्षण यह दर्शाता है कि, चाहे समाज इसे स्वीकार करे या न करे, पुरुषों के प्रति यौन आकर्षण हर जगह मौजूद है, और हम चाहें तो भी इसे समाज से पूरी तरह खत्म नहीं कर सकते। साथ ही, यह हर घर की कहानी है, जहां किसी न किसी रूप में ऐसा कृत्य करने

वाला व्यक्ति जरूर मिल जाता है। उसे सुधारने के तमाम प्रयासों के बावजूद वह सुधरने को तैयार नहीं है, जो समाज में गहरी जड़ें जमाए बैठे नैतिक पतन की ओर इशारा करता है।

"ऐसा व्यभिचार जेल में मामूली बात है बाबा। क्या यहाँ, क्या पंजाब–बंगाल में और क्या काला पानी में। यह न कभी रुका है और न रुक सकता है।"[17]

अंत में लेखक कहते हैं कि यदि शुद्ध आचरण, धार्मिक विचार और मानवता को प्राथमिकता देने वाले नए कानून बनाए जाएं तो समाज में सुधार हो सकता है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया जाना चाहिए कि इस यौन शोषण का बच्चों के मन और भविष्य पर क्या प्रभाव पड़ता है और यह समाज के लिए क्यों गलत है। अगर इन बातों को समझाया जाए और उचित कदम उठाए जाएं तो इस अपराध को रोका जा सकता है।

लेकिन सरकार खुद इस पाप में लिप्त है और इसलिए इसे रोकने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाए जाते। जिन अपराधों के लिए सरकार लोगों को सज़ा देती है, वही अपराध उसकी जेलों में अक्सर होते रहते हैं। इसका सीधा मतलब यह है कि सरकार न्याय की देवी की तरह आंखों पर पट्टी बांधकर बैठी है, जिससे वह न तो अन्याय देख सकती है और न ही उसे रोकने की कोई जिम्मेदारी ले सकती है। हालाँकि, यहाँ एक बड़ा अंतर भी है। न्याय की देवी ने अपनी आँखों पर पट्टी बाँधी थी ताकि वह बिना किसी भेदभाव के निष्पक्ष रूप से न्याय कर सके। लेकिन आज की न्याय व्यवस्था में कानून अपनी मर्जी से यह खेल खेल रहा है, जहां सिर्फ सुविधा और पूर्वाग्रह के आधार पर ही न्याय दिया जा रहा है।

निष्कर्ष :– पांडेय बेचैन शर्मा 'उग्र' का कहानी संग्रह "चॉकलेट" समाज का पहला ऐसा कहानी संग्रह है जो समलैंगिकता के विषय पर खुलकर बात करने का साहस रखता है। कई सामाजिक विरोधों को सहने के बावजूद भी इस विषय पर लिखने के पीछे 'उग्र' की भविष्यदृष्टि सामने आती है। जहाँ एक ओर, आज के समय में यह विषय समाज के लिए बिल्कुल नया नहीं रहा, तो वहीं 1927 में लिखा गया यह संग्रह आज के समय की एक भविष्यवाणी के घोषणा पत्र के रूप में समझा जा सकता है। 'उग्र' द्वारा "चॉकलेट" शीर्षक इस बात को स्पष्ट करता है कि जैसे चॉकलेट नरम और मीठी होती है, वैसे ही सुंदर और मासूम बच्चे इस चॉकलेट की भाँति नरम होते हैं तथा इनके नरम एवं नाजुक स्वभाव की तुलना ही इन्हें चॉकलेट बनाता है।

"चॉकलेट" कहानी संग्रह में समाज के उस हर व्यक्ति पर 'उग्र' ने तीखी और पैनी आलोचना की है जो संपन्नता, शिक्षा, धन और सत्ता के नशे में आकर अबोध बालकों के साथ दुष्कर्म करते है और उनके बचपन को बर्बाद व नष्ट करने के लिए जिम्मेदार हैं। साथ ही, 'उग्र' बच्चों के अभिभावकों को भी उनके पथभ्रष्ट होने का कारण मानते हैं, क्योंकि उनका मानना है कि परिवार बच्चे के लिए एक आदर्श का काम करता है। किंतु जब बच्चा अपने ही परिवार को विलासिता और अनैतिकता में लिप्त देखता है, तो वही प्रवृत्ति उसमें भी जन्म लेने लगती है। इसके अतिरिक्त, आधुनिक शिक्षा प्रणाली पर भी कटाक्ष किया गया है, जहां 'उग्र' स्कूल के अध्यापकों को भी दोषी मानते हैं, जो बच्चों को एक खिलौना समझकर उनके साथ अनैतिक कृत्य करते हैं। एक शिक्षक का कार्य भविष्य का निर्माण करना है, लेकिन जब वही अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने लगे, तो समाज नैतिक पतन की ओर बढ़ने लगता है।

अंत में, लेखक ने सरकारी तंत्र से लेकर समाज के प्रतिष्ठित ठेकेदारों तक को इस यौन शोषण के लिए ज़िम्मेदार ठहराया है। जो लोग अपनी शक्ति, पद और धन का उपयोग देश के युवाओं के भविष्य को संवारने के लिए कर सकते थे, वही उन्हें गलत राह पर धकेल कर इस शोषण चक्र को आगे बढ़ाने में सहायक बन रहे हैं। अंततः इस कहानी संग्रह का मुख्य उद्देश्य समलैंगिकता और यौन शोषण जैसे मुद्दों पर खुलकर चर्चा करना और समाज को जागरूक करना है। यह बताया गया है कि यह विषय केवल सही या गलत तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक गंभीर सामाजिक समस्या है, जिसे समाज के हर वर्ग को मिलकर समझना होगा। 'उग्र' ने इस रचना के माध्यम से यही संदेश देने का प्रयास किया है कि समाज को इस विषय से अवगत कराया जाए और बच्चों को यौन शोषण से बचाने के लिए ठोस कदम उठाए जाएं।

संदर्भ–सूची :–

1. पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', 'चॉकलेट', पहला राजपाल संस्करण : 2021, राजपाल एण्ड सन्ज।
2. पृष्ठ संख्या– 22
3. पृष्ठ संख्या– 37
4. पृष्ठ संख्या– 37
5. पृष्ठ संख्या– 52
6. पृष्ठ संख्या– 66
7. पृष्ठ संख्या– 67
8. पृष्ठ संख्या– 73
9. पृष्ठ संख्या– 83
10. पृष्ठ संख्या– 85
11. पृष्ठ संख्या– 92
12. पृष्ठ संख्या– 92
13. पृष्ठ संख्या– 92
14. पृष्ठ संख्या– 93
15. पृष्ठ संख्या– 97
16. पृष्ठ संख्या– 106।
17. पृष्ठ संख्या– 106–0107।
18. 'Chocolate' by Pandey Bechan Sharma 'Ugra' created a furore over homosexuality in 1924 https://share&google/EWmaO9UeQa6TrlB4T
19. समाज की सच्चाइयां और नग्नता है 'चॉकलेट' में! – DAINIK JANWANI https://share&google/Sk5XgAÛy71PKmGoJM
20. Source: Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal https://share&google/9eB5NyLHmoi6DkBgZ
21. https://share&google/SB85UMvBnVYDnAchS
22. Source: International Journal of Applied Research https://share&google/sjXkioidrXtWSV3B2
23. पांडेय बेचन शर्मा उग्र चाकलेट आन्दोलन निबंध https://share&google/5VSr8HSy83rftuPYY
24. Chocolate and Other Writings on Male Homoeroticism on JSTOR https://share&google/7CRbdtPgSÛdzehqUu
25. Sense of era in the fiction of Pandey Bechan Sharma ^Ugra*: पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' के कथा साहित्य में युगबोध https://share&google/dnsfnikJHQACGjUsh
26. Source: NCERT https://share&google/MofSYrcLcSZLwÛlLj
27. https://share&google/5MqVFzQ6Jqdf2I11q

भारतीय ज्ञान परंपरा एवं हिंदी कविता में अभिव्यक्त पर्यावरणीय चेतना

अनुज कुमार*

मुख्य शब्द :– भारतीय ज्ञान परंपरा, हिंदी कविता, पर्यावरण, पारिस्थितिकी, ग्रामीण जीवन, संरक्षण एवं संवर्धन, चेतना, वेद–पुराण, उपनिषद।

किसी भी देश को उसकी धरोहरों के माध्यम से आसानी से जाना जा सकता है। ये धरोहरें उस देश की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को जानने का सशक्त माध्यम होती हैं। भारतीय ज्ञान परम्परा के माध्यम से वर्तमान पीढ़ी अपने अतीत को जान–समझ सकती है। साथ ही इससे प्राप्त अनुभव का उपयोग भविष्य निर्माण में कर सकती है। भारतीय ज्ञान परंपरा शुरुआत से ही सर्वे भवन्तु सुखिनः एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना की पोषक रही है। यह दृष्टिकोण सिर्फ समाज तक ही सीमित नहीं है अपितु इसमें समूची सृष्टि, पशु–पक्षी, नदी, पर्वत एवं आसमान तक को परिवार का हिस्सा माना गया है।भारतीय संस्कृति पर्यावरण के प्रति संवेदनशील रही है। वेद–पुराण, उपनिषद, स्मृति, महाकाव्य लोक परंपराओं तक में भी पर्यावरण के संरक्षण एवं संवर्धन के विषय में बताया गया है। भारतीय वाङ्मय के आदि ग्रंथ वेद हैं। इनमें वर्णित पाकृतिक चित्र प्रकृति प्रेम को उजागर करते हैं–

"ॐ द्यौ शान्तिरन्तरिक्षः शान्तिः
पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिः रोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिब्रह्मा शान्तिः सर्वः शान्तिः
शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि,
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।"[1]

आदिम काल से ही मनुष्य और पर्यावरण का संबंध अन्योन्याश्रित रहा है। मनुष्य भी अन्य प्राणियों की तरह पर्यावरण का एक प्रमुख अंग है। मनुष्य एवं पर्यावरण के मध्य चोली–दामन का संबंध है। पर्यावरण के प्रति अपने आदर–भाव को व्यक्त करने के लिए मनुष्य ने पर्यावरणीय उपादानों जैसे–हवा, पानी, पेड़–पौधे, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि को ईश्वर का रूप मानकर पूजा–अर्चना करता आया है। मनुष्य के इस आदर और स्नेह को स्वीकार करते हुए प्रकृति उस पर हमेशा अपनी कृपा बरसाती रहती है।

जीवन के लिए पर्यावरण जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक काव्य में मानवीय भाव और संवेदना है। कवि के लिए काव्य में प्रकृति का चित्रण उसी जीवन से जुड़ाव का संकेत है।

धर्म, दर्शन, कला, संस्कृति एवं साहित्य सभी में पर्यावरण को विशिष्ट स्थान प्राप्त है, किंतु काव्य में उसे विशेष स्थान दिया गया है। कवि अधिक संवेदनशीलता के कारण समस्त पर्यावरणीय दृश्यों से प्रभावित होकर वर्णन करता है। आदिकवि वाल्मीकि ने जब प्रकृति के दो निर्द्वन्द्व प्राणियों को मुक्त विहार करते देखा तो उनकी आत्मा भाव–विह्वल हो उठी लेकिन जब उसी जोड़े से एक को व्याध के वाण से आहत देखते हैं तो करुण–क्रदन फूट पड़ता है, सहसा उनके मुंह से एक श्लोक निकलता है परिणामस्वरूप वहीं से कविता का जन्म होता है–

मा निषाद। प्रतिष्ठां त्वामगमः शाश्वती समाः।
यत्क्रौंच मिथुना देकमवधी काम मोहिलाम्।।2

पर्यावरण के प्रति यह कवि–प्रेम अनादि काल से ही निरंतर जारी है। विशिष्टता यह है कि पर्यावरण के स्निग्ध रूप पर कवि मोहित है तो भावविह्वल होकर रचना करता है और यदि पर्यावरण पर संकट है तो केवल आभास ही नहीं देता, वरन् उसकी सुरक्षा के लिए अपने रचनाकर्म को समर्पित भी कर देता है। हिंदी साहित्य के अंतर्गत आदिकालीन कविता की बात की जाए तो रासो–काव्यों में प्रकृति का आलंबन एवं उद्दीपन दोनों रूपों में वर्णन किया गया है।

***शोधार्थी, हिंदी विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, जांट–पाली, महेंद्रगढ़, हरियाणा–123029।**

भक्तिकालीन कवियों की साधना में आध्यात्मिक तन्मयता व एकनिष्ठता का भाव विद्यमान रहा है। कबीर, तुलसीदास, सूरदास, जायसी की रचनाओ कई स्थलों पर पर्यावरण का रहस्यात्मक वर्णन हुआ है। तुलसीदास ने 'श्री रामचरितमानस' में लक्ष्मण औ सीता को वृक्षारोपण करते हुए दिखाया है–

तुलसी तरुवर विविध सुहाए।
कहुं–कहुं सिय, कहुं लखन लगाए।।[3]

रीतिकाल में भी कवियों ने प्रकृति की छटा को आलंकारिक रूप में अधिक दिखाया है, किंतु बिहारी पद्माकर, देव, सेनापति आदि ने उसके सौदर्य को अपनत्व भी दिया।

आधुनिक हिंदी काव्य में श्रीधर पाठक 'कश्मीर–सुषमा' में पर्यावरण का मनोहर चित्रण करते हैं। 'प्रिय प्रवास' में राधिका के हृदय की व्यथा प्रकृति के उपादानों में व्यंजित होती है, तो कृष्ण भी अपनी पीड़ा व्यक्त करने के लिए पर्यावरणीय प्रतीकों का सहारा लेते हैं।

आगे चलकर छायावादी कवियों के काव्य में पर्यावरण का विशद वर्णन दिखाई देता है। प्रकृति की भव्यता 'पंत', 'प्रसाद' 'निराला' की कविताओं में पाई जाती है। ये कवि पर्यावरण की रमणीयता का वर्णन करने में इतना मुग्ध हो गए हैं कि उन्हें प्रेयसी का प्रेम भी इसके आगे फीका लगने लगता है। पंत लिखते हैं:–

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल–जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन, भूल अभी से इस जग को।[4]

मनुष्य के पर्यावरण के प्रति भोगवादी रवैये ने जीवन को संकट में डाल दिया है। परिणामतः हमें अकाल, बाढ़ आदि प्राकृतिक त्रासदियों का सामना करना पड़ रहा है।

जयशंकर प्रसाद कृत 'कामायनी' में उन लोगों की तरफ इंगित किया गया है, जो पर्यावरण के साथ अनावश्यक खिलवाड़ करते हैं:–

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला के शीतल छांव।
एक पुरुष भीगे नयनों से, देख रहा था प्रलय प्रवाह।[5]

भारतीय परंपरा में प्रकृति का आनुष्ठानिक रूप में साहचर्य तो है ही, साथ ही भारतीय संस्कृति व लोक साहित्य भी पर्यावरण संरक्षण से ओत–प्रोत है। मानव की रचना का आधार भी पर्यावरण ही है:– "छिति जल पावक गगन समीरा" इन्हीं पाँच तत्वों से मानव शरीर का निर्माण हुआ है।

वर्तमान समय में विकास के नाम पर वैश्विक स्तर पर पर्यावरण के साथ किया जाने वाला खिलवाड़ आगामी समय भयंकर त्रासदीपूर्ण होने का संकेत देता है। राजमार्गों के दोनों किनारों पर कृषि योग्य भूमि पर बेतहाशा निर्माण कार्यों से पारिस्थितिकी तंत्र को नुकसान पहुँच रहा है।

मनुष्य की सत्ता प्रकृति के अणु–अणु में विद्यमान है। सभ्यता के विकासात्मक सोपान में जैसे तकनीकी, उद्योग, जनसंख्या में अनावश्यक वृद्धि, प्राकृतिक संसाधनों के अतिशय दोहन से उत्पन्न प्रदूषण ने पारिस्थितिकी तंत्र को असंतुलित करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ा है। मनुष्य ने जिस विधि से और जिस भी भूमिका में रहते हुए उसे मौका मिला है, उसने पर्यावरण का भरपूर शोषण किया है कभी तानाशाह बनकर तो कभी वैज्ञानिक और व्यापारी तथा उद्योगपति बनकर।

इसका परिणाम यह हो रहा है कि–
मेरे गर्भ से बहेगा रक्त
जो गंगोत्री से हुगली तक
गंगाजल हो जाएगा रक्तवर्ण
कौन रोक पाएगा प्रदूषण यह।[6]

मनुष्य अधिक सभ्य होने की लालसा में उससे भी ज्यादा असभ्य और क्रूर होता जा रहा है, वह इस तरह से मतांध है कि उसे तनिक भी भान नहीं हो पा रहा है कि वह आने वाली पीढ़ियों को क्या देगा?

वे जो बहुत सारे बच्चे
शोर कर रहे हैं
ध्यान से सुनो
कहीं वे पेड़ तो नहीं मांग रहे
पहाड़, नदियां, समुद्र तो नहीं मांग रहे
हवा धूप चांदनी तो नहीं मांग रहे

जमीन और आसमान तो नहीं मांग रहे
तो
दो
इन्हें यह सब
लाओ
कहीं से भी लाकर दो।7

समकालीन हिंदी कविता में जहां एक तरफ पर्यावरण असंतुलन के प्रति गहरा क्षोभ व्यक्त किया गया है तो वहीं दूसरी तरफ भविष्य के प्रति एक उम्मीद का भाव भी व्यक्त किया है गया–

कविता मनुष्य की संवेदन लय है
अमानुषीकरण की प्रक्रिया में सर्जनात्मक हस्तक्षेप है।[8]
बचाना ही हो तो बचाए जाने चाहिए गांव के खेत, जंगल में पेड़, शहर में हवा
पेड़ में घोसले।[9]

वर्तमान परिस्थिति में पर्यावरणीय असंतुलन से उपजी विसंगतियों का सबसे बड़ा शिकार भारतीय किसान है। समय से बारिश न होने पर कभी सूखा और कभी बाढ़ जैसी आपदा से परेशान होकर वह आत्महत्या करने पर मजबूर होता है। पर्यावरण के स्तम्भ, पानी, समुद्र, बारिश, हवा तथा पेड़ पर सभी आश्रित हैं। इन सभी की उपयोगिता भौर संवर्धन के विषय में कवि हरजेन्द्र चौधरी कहते हैं–

धरती पर पड़ा तड़फड़ाता है
विराट मछली सा
तब वह समुद्र है
आसमान में उड़ता है पंख लगाकर
गरजता हुआ तब बादल
× × ×
आदमी कहीं भी नहीं टिकने देता
जब समुद्र को
तब सो जाता है समुद्र
हमारी ही पुतलियों के भीतर।[10]

भूमंडलीकरण में विकास का मार्ग पर्यावरण विरोधी सिद्ध हुआ है।उपभोक्ता और बाजार की अपसंस्कृ ति मे खोखलापन, संवेदनहीनता और कुरूपता जन्म ले रही है। बाजारू संस्कृति ने मनुष्य को मूल्यहीन बना दिया है।

परमाणु बमों के विस्फोट, मिसाइलों का ध्वंस, पनडुब्बी का जलीय भेदन, ड्रोन और मारक हवाई जहाज तथा जैविक हथियारों से विश्व संकटग्रस्त है। नई सदी का चरित्र यही है, गाँव– शहर, खेत–खलिहान, फसलें, किसान–मजदूर सभी संत्रस्त हैं।चारों ओर कहर तथा चीख गूंजती है।कविता शब्दों के सार्थक प्रयोग से भयावह जीवन के सत्य का उद्घाटन करती है साथ ही संवेदना को व्यापक परिवेश से जोड़ती है।

उपभोग करने की बढ़ती कुप्रवृत्ति का ही परिणाम है कि आज धरती पर अनावश्यक रूप से दबाव बढ़ रहा है। अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए मनुष्य ने पर्यावरण तक को नहीं छोड़ा है।

सुन्दरचंद ठाकुर की कविता 'अभयारण्य' में एक ऐसे काल्पनिक महा–अभयारण्य की सृष्टि की गई है, जहाँ मानव सभ्यता का इतिहास दृश्य–दर–दृश्य उभरता जाता है।जो पारिस्थितिकीय असंतुलन का संकट समकालीन स्वार्थपरक वैश्विक चेतना ने उत्पन्न किया है, उसकी चेतना इस कविता में मुखर हुई है। प्रकृति की अपनी एक सत्ता है और मनुष्य उसका एक अवयव है।मनुष्य अपने ही अस्तित्व के लिए खतरा बना हुआ है।इसी प्रकार का भाव कवि उदय प्रकाश की कविता में देखने को मिलता है–

मैं जिनसे कर सकता था प्यार विशेषज्ञ जानते हैं वर्षों पहले मेरे बचपन के दिनों में
शिवालिक या मेकल या विंध्य की पहाड़ियों में
अंतिम बार देखी गई थी वह चिड़िया
जिस पेड़ पर बना सकती थी वह घोंसला
विशेषज्ञ जानते हैं वर्षों पहले अंतिम बार देखा गया था वह पेड़
अब उसके चित्र मिलते हैं

पुरा–वानस्पतिक किताबों में
तने के फॉसिल्स संग्रहालयों में।[11]

लीलाधर जगूड़ी की 'पेड़' कविता पर्यावरण संरक्षण एवं संतुलन पर लिखी गई कविता है, इसमें दिखाया गया है कि पेड़ किस प्रकार से प्राकृतिक हथियार के रूप में बढ़ते प्रदूषण को नष्ट कर सकते हैं। 'चिड़िया' कविता में जंगल में लगने वाली आग के वीभत्स दृश्य व उसके बाद नष्ट हुए प्राकृतिक जीवन का चित्रण है।जंगलों में लगी आग प्राकृतिक संसाधनों को स्वाहा तो करती ही है, साथ ही साथ निर्दोष वन्य जीवों का संहार भी करती है और इस आपदा से जो प्रदूषण फैलता है, वह अलग है क्योंकि,

हरियाली का पता नहीं कब की
कहाँ जा चुकी
सब तरफ ठंड, धूल, धुन्ध।[12]

जो नदियां पहले पवित्र मानी जाती थीं, वे अब गन्दी और बदबूदार होती जा रही हैं। उत्तर आधुनिक काल में विकास के चरण में पूंजीवादी औधोगिक क्रान्ति के गर्भ से जो विकास प्रक्रिया शुरू हुई, वह आज अपनी कीमत मांग रही है।

दुनिया के भविष्य को यदि वास्तविक अर्थों में सुरक्षित रखना है तो शक्तिशाली को शक्तिहीनों के लिए आर्थिक, राजनीतिक और पर्यावरण अधिकार छोड़ने ही पड़ेंगे, प्रकृति और अर्थ के प्रश्न शक्ति के प्रश्नों से गुंथे हुए हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पर्यावरण स्वयं में सचेत है किंतु उसके साथ छेड़छाड़ करना विनाश का कारण बनता जा रहा है। इससे न सिर्फ वर्तमान के लिए संकट उत्पन्न हो रहा है अपितु आगामी भविष्य में भी यह हानिकारक सिद्ध होगा। वर्तमान समय में जहां एक तरफ विकास के नाम पर पर्यावरणीय घटकों के साथ अनावश्यक खिलवाड़ किया जा रहा है तो वहीं दूसरी तरफ अनजाने में ही मनुष्य अपनी कब्र खोदता जा रहा है। आज दुनिया आर्थिक संकट के साथ–साथ दो तरह के पर्यावरणीय संकटों से भी घिरी है– एक जीवाश्म का संकट तो दूसरा जीवन तंत्र के संकट के रूप में।

अंततः कहा जा सकता है कि जब तक प्रकृति के उपादानों का संरक्षण और संवर्धन मानव नहीं करेगा तब तक पर्यावरणीय समस्याओं का समाधान हो पाना असंभव सा जान पड़ता है। ऐसी समस्याओं के निराकरण हेतु किए जा रहे सरकारी प्रयासों के साथ–साथ नागरिक समाज को भी अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करना नितांत आवश्यक है, सब के साझा प्रयासो से ही पर्यावरणीय असंतुलन जैसी वैश्विक समस्या से निपटा जा सकता है।

संदर्भ सूचीः–

1. यजुर्वेद, शान्ति सूक्त, 36–17।
2. वाल्मीकि रामायण, 1/2/15।
3. रामचरित मानस, तुलसीदास, 2/236/3।
4. सुमित्रानंदन पंत संचयन, कुमार विमल, पृष्ठ–51।
5. प्रसाद जयशंकर, कामायनी, चिंता सर्ग, पृष्ठ–5।
6. पंत सुरेन्द्र, पत्थरों पर टूटता जल, हिमाचल पुस्तक भण्डार, नई दिल्ली(1998), पृष्ठ–51।
7. रावत भगवत, निर्वाचित कविताएं, संपादक–विकास, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद(2004), पृष्ठ– 89–90।
8. विश्वास विनय, आज की कविता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली(2009), पृष्ठ–13।
9. प्रकाश उदय, रात में हारमोनियम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली(1998), पृष्ठ 21।
10. संपादक–विश्वास विनय, आज की कविता, पृष्ठ–299, 300।
11. प्रकाश उदय, रात में हारमोनियम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली(1998), पृष्ठ–4।
12. वाजपेयी कैलाश, भविष्य घट रहा है, भारतीय ज्ञान पीठ, नई दिल्ली(1999), पृष्ठ–69।

जहीर कुरेशी और सतीश दराडे जी की ग़ज़लों में मानवीय संवेदना

अबेद उल्लाह सय्यद बाबर अली बशारत अली*

प्रस्तावना :– ग़ज़ल हिंदी और मराठी साहित्य में मन की अनकही भावनाओं का वह सुंदर रूप है, जिसे जहीर कुरेशी जी और सतीश दराडे जी ने अपनी–अपनी मातृभाषा में बेहद प्रभावशाली अंदाज़ में आकार दिया। दोनों ग़ज़लकारों की रचनाएँ हमें उस गहरे मानवीय स्पर्श से परिचित कराती हैं, जो व्यक्तिपरक अनुभवों को सार्वभौमिक कर देती हैं। जहीर कुरेशी जी के हिंदी ग़ज़लों में भाषा की सहजता और जन–भाषा का प्राकृतिक प्रवाह दृष्टिगोचर होता है। वह न केवल शाब्दिक श्रृंगार को सजाते हैं, बल्कि आम आदमी के जज़्बातों को सहज अभिव्यक्ति में ढालते हैं, जिससे पाठक आत्मसात हो उठते हैं। मराठी ग़ज़लकार सतीश दराडे जी की ग़ज़लों की सहजता, प्रभावी अंदाज़ पाठकों के मन को छूता है और जातिगत द्वंद्व से ऊपर उठकर यह संदेश देता है कि जो मूलभूत सुख, पीड़ा और मानवीय सह–अस्तित्व की पुकार है।

ज़हीर कुरेशी जी की गज़लें आम आदमी के जीवन का आईना है। जिसमें शोषित और वंचित वर्ग के प्रतिबिम्ब हमें साफ़ नजर आते हैं। उन्होंने केवल साहित्य लेखन ही नहीं किया बल्कि सावर्जनिक कार्यों में भी गहरा योगदान दिया। लोगों के बीच वे एक ऐसा चेहरा बनकर उभरे जो आर्थिक सहयोग, सामाजिक न्याय जैसे प्रक्रियाओं में भी आगे रहते थे। वे एक शांत, लेकिन सशक्त आवाज है। धर्मनिरपेक्ष और वामपंथी मूल्यों की भूमि में उनका संघर्ष एक मजबूत सामाजिक चेतना का उदाहरण है। उनकी मित्रमंडली में अक्सर विचारों का आदान–प्रदान, चिंतन–चर्चा, और संकटों के समाधान की संवादात्मक सोच का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। उनकी काव्य दृष्टी काफी विस्तृत रही है जिसमें उन्होंने यथार्थ के सभी पहलुओं को अपने साहित्य में जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। लेखनी के स्वप्न (1975), एक टुकड़ा धूप (1979), चाँदनी का दुःख (1986), समंदर ब्याहने आया नहीं है (1992), भीड़ में सबसे अलग (2003), पेड़ तन कर भी नहीं टूटा (2010) यह उनकी ग़ज़ल संपदा है। उनकी लिखावट में गंगा–जमुना सांस्कृतिक पुल का एहसास होता है। उनके साहित्य में समाज का मानवीय स्पर्श साफ़ दिखाई देता है। सादगी से बोलने की उनकी शैली, दोहों में गहरे भावना का असर, और मंचों पर व्यक्त की गई आत्मीयता ये सब एक चौकस, आत्मपरख और संवेदनशील इंसान की झलक है। 1980 में 'एक टुकड़ा धूप' इस ग़ज़ल संग्रह के लिए सन्मानित किया गया। 'नदी के साथ दुर्घटना' इस गीत के लिए उन्हें गोपाल सिंह नेपाली पुरस्कार से सन्मानित किया गया।

सतीश जी टोकवाडी (बीड) महाराष्ट्र के एक लोकप्रिय शिक्षक और ग़ज़लकार हैं। उनकी ग़ज़ल लोक–जीवन से जुड़ी तथा सरल और सजीव भाषा में एक तोहफ़ा है। मराठी ग़ज़ल में वे युवावस्था में ही ग़ज़लों की बोलती आत्मा बनकर उभरे और उनकी शैली में हास्य–व्यंग और गहराई का मिश्रण नज़र आता है। उनके चार ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हैं – 'विठोबा संपली वारी', 'माझ्या आषाढाचे अंश', 'कैदखान्याच्या छतावर', 'श्वासांच्या समिधा' आदि। ग़ज़ल शैली में उनकी विशेषता यह है कि गहराई, आत्मानुभूति और मराठी बोलचाल की सहज भाषा और ऊर्जा का समावेश है। उनकी कविताओं में जीवन और मृत्यु के चक्र से उठती भावनाओं की विसंगति झलकती है। बीड, महाराष्ट्र, में उभरते हुए सतीश जी मराठी ग़ज़ल–संस्कृति में एक ताज़ा हवा बने रहे। वे अपने मिज़ाज के कारण साथी लेखक–मित्रों के काफ़ी क़रीब रहे। उनकी अचानक मृत्यु ने मराठी साहित्य–परिवेश को एक गहरी क्षति दी है। उनके शब्द आज भी उनके चाहने वालों के दिलों में बसे हैं।

*** हिंदी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय, पुणे–411007।**

दोनों ही व्यक्तियों का मूल मर्म मानवता, सामाजिक प्रतिबद्धता और साहित्य की भाषा का अलग–अलग रूप में वह प्रकट होता है। जहाँ जहीर जी का समय था समाज–सुधार, धर्मनिरपेक्षता और आर्थिक संचय से अंकित, वहीं सतीश दराडे जी का था भाव–प्रधान, लयात्मक, आत्म परीक्षण का मराठी साहित्य। दोनों ने मिलकर अपने–अपने साहित्य के माध्यम से साहित्य को समृद्ध किया साथ ही साथ समाज के लिए भी दिशादर्शक की भूमिका निभाई। सतीश दराडे की ग़ज़लें आपको गाँव-बस्ती, मिट्टी और सामाजिक संघर्षों के यथार्थ में ले जाती हैं। एक ओर जहीर की रचनाएँ आत्मनिरीक्षण की ओर बुलाती हैं, दूसरी ओर सतीश जी की ग़ज़लों में सह-जीवन और यथार्थ की मजबूत पुष्टि मिलती है।

जहीर कुरेशी और सतीश दराडे जी की ग़ज़लों में सामाजिक परिदृश्य :– साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं है या कोई भी साहित्यकार अपनी रचना को केवल मनोरंजन के लिए नहीं लिखता। मूलतः साहित्यकार संवेदनशील होते हैं। समाज में घट रही घटनाओं को वे बहुत ही सूक्ष्मता से देखते हैं और उनका लेखन करते हैं। समाज में व्याप्त विसंगतियों, अन्याय, गरीबी, भूक ,अमानवीयता ,धर्म, प्रथा, रूढ़ि, परम्परा का वे चित्रण करते हैं। मानवी मूल्यों का जहाँ–जहाँ से विघटन हो रहा है, वहाँ वे अपनी कलम चलाते हैं। जहीर कुरेशी और सतीश दराडे जी की ग़ज़लों में भी सामाजिक चेतना के विविध आयाम हमें दिखाई देते हैं।

मानवी मूल्यों का विघटन :– आज के समय में हमें दिखाई देता है कि मानवी मूल्यों का बड़ी तीव्र गति से विघटन हो रहा है। स्वार्थ के कारण मानवी मूल्यों को कम आँका जा रहा है। समाज प्रगत तो हो रहा है साथ ही साथ वह अपने मूल्यों से भी कोसो दूर जा रहा है। व्यक्ति अपनी मिटटी , गाँव ,परिवार से दिन–ब–दिन दूर जा रहा है, जिसका चित्रण जहीर कुरेशी जी और सतीश दराडे जी ने अपने ग़ज़लों में कुछ इस प्रकार किया है –

"घर में रहकर भी नहीं संवाद ,हम दोनों के बीच ,
मौन पसरा है कई हफ़्तों से ,संबंधों के बीच।"[1]

आज हम देखते हैं कि किस प्रकार से व्यक्ति परिवार विघटन की समस्या से जूझ रहा है। मोबाइल की वजह से भी हम अपनों से दूर जा रहे हैं। व्यक्ति के संवाद की जगह वाद ने ली है और इसी पर जहीर जी का यह शेर प्रकाश डालता हमें दिखाई देता है। दांपत्य जीवन के मूल्यों की कमी हमें यहाँ ज्ञात होती है। जहीर जी इस न होने वाले संवाद से चिंतित दिखाई देते हैं। वही इन्हीं मानवी मूल्यों को सतीश जी अपने शेर में कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं–

"कुणी हाकेस ओ का देत नाही रे
अरे आहात की मेलात लोकानों"

स्पष्ट है कि आज हर वह व्यक्ति अपने आप में इतना व्यस्त है कि उसे कोई आवाज़ भी दे तो वह रुकने को तैयार नहीं है। फिर चाहे वह कोई अपना हो या पराया किसी के भी पास दूसरों के दुःख–दर्द समझने ,सुनने की फुर्सत नहीं है। इस शेर से हमें व्यक्ति की स्वार्थी वृत्ति का भी पता चलता है। संवाद के लिए किसी के भी पास वक़्त नहीं है। इसी लिए सतीश जी लोगों को आप जिन्दा हो या मर गए इस प्रकार का सवाल करते दिखाई देते हैं।

परिवार विघटन :– आज के समय में व्यक्ति अपने आप को सभी अंगों से परिपूर्ण समझ रहा है और उसी दंभ में जी रहा है। उसे अपने परिवार में भाई ,माँ, पिता या दीगर रिश्तेदारों से कुछ संबंध रखने में रूचि नहीं रही है। वह उन्हें बोझ समझ रहा है। बढ़ते वृद्धाश्रम इसके साक्ष हैं। पिता अपने संतानो को पालने में अपार कष्ट उठाता है। माँ रात दिन बच्चों के सुखों के लिए कार्यरत रहती है लेकिन फिर भी परिवार विघटन का प्रमाण बढ़ गया है। जिसकी ओर दोनों साहित्यकारों का लक्ष हमें दिखाई देता है। जिसके उदाहण देखिए –

जहीर कुरेशी जी– "घर लौटते ही, सीधा गया संगिनी के पास,
माँ और बूढ़े बाप से बेटा नहीं मिला।"[2]

मतलब संगिनी के पास जाना कोई बुरी बात तो नहीं है लेकिन अपने बूढ़े माँ–बाप का भी ध्यान रखना, उनका हाल–चाल पूछना बच्चों का कर्तव्य है। जिससे उनके मन को भी आधार रहता है। एक शेर में हालचाल न पूछने पर माँ–बाप को क्या लगता है इसके बारे में भी जहीर जी लिखते हैं–

"हमारे बच्चे अगर पूछते नहीं हमको
हम उस तरह भी, निःसंतान होते जाते हैं।"[3]

यहाँ माँ–बाप के मन की अवस्था का बड़े ही गहरे अंदाज़ में उन्होंने चित्रण किया है। वहीं सतीश दराडे जी भी कहीं न कहीं पारिवारिक विघटन से होनेवाले मूल्य पतन को बखूबी जानते हैं। उनके ग़ज़लों में मन के भावनाओं को बहुत प्रभावी तरह से व्यक्त किया गया है। जिसका यह उदाहरण देखिए –

अंती तिच्या विधीला ना कावळा मिळाला
जी बोलवीत होती, चिमण्या दळण कराया।

यहाँ इस शेर का हम अर्थ लगाने की कोशिश करते हैं वे कहते हैं कि जिस बुढ़िया ने अपने जीते जी हर किसी का ख़याल रखा उसी के अंतिम समय में उसके लिए कोई नहीं था। सतीश जी की यही शैली उन्हें औरों से अलग बनाती है। ग्रामीण परिवेश से जुड़े,अपने मूल्यों से जुड़े ग़ज़लकार ने इस विघटन को बड़े अनोखे ढंग से देखा है।

समाज जीवन में व्याप्त विद्रूपता :– डॉ. शंभुनाथ तिवारी कहते हैं, 'सामाजिक विसंगतियों और समाज के बदबूदार चेहरे को उघाड़ने के लिए बहुत साहस की आवश्यकता होती है। हर कोई ऐसा साहस नहीं कर पाता।' लेकिन जहीर जी का साहस देखने लायक है। वे समाज के हर उस बेढंगी रूप को हमारे सामने बहुत ही साहसपूर्ण तरीके से रखते हैं –

"दिन दहाड़े रेप,हत्याकांड, डाके,
आजकल सड़कें ये मंजर देखती हैं।"[4]

आज हालात ही कुछ ऐसे हैं कि हर चौराहे पर दिन–दहाड़े मार–पीट,चोरी–चकारी,रेप,मर्डर, हिंसा दिखाई देती है। मानवी मूल्यों को पैरों तले कुचला जा रहा है। सोशल मिडिया भी इसके लिए जिम्मेदार है क्योंकि सोशल मिडिया इसी तरह की विषय वस्तु से जुड़े सिनेमा,धारावाहिक, वेब सीरीज दिखा रहा है। अतः आज स्वार्थपरक प्रवृत्ति ने मानवी मूल्यों को आखरी साँसों पर ला रखा है। ग़ज़लकारों ने इस विषय पर अपनी खूब कलम चलाई है। सतीश जी भी इसमें पीछे नहीं है वे कहते हैं –

जातीय दंगालीने छाटून हात नेले
देऊ कशी तिरंग्या आता तुला सलामी

उनका कहना है कि समाज में आज जाति के नाम पर लोग एक दूसरे से लड़ रहे हैं ,एक दूसरे का जाति के आधार पर, धर्म के आधार पर तिरस्कार कर रहे हैं। जिसका फल लोगों को अपना सब कुछ खोकर ही देना पड़ रहा है। इस हालत में हम किस तरह देश के बारे में सोच सकते हैं। जब की जाति,धर्म ,ऊंच –नीच, आदि बातों ने समाज में अपना सर उठाया है।

आम आदमी :– समाज में जिसे हमेशा से अपने अस्तित्व को बचाने के लिए लड़ना पड़ा, दो वक़्त की रोटी के लिए दिन–रात मेहनत करनी पड़ी, जिसके बदले उसे प्रताड़ना मिली ,संपन्न वर्ग से होनेवाले शोषण के खिलाफ आवाज़ सशक्त करना पड़ा, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, अभावों से लड़ना पड़ा और आज भी वह लड़ रहा है। हाशिए पर खड़े लोगों को आज भी अपने मुलभूत प्रश्नों के लिए धरने देने पड़ते हैं। ज़िल्लत उठानी पड़ती है। अत्याचार सहन करना पड़ता हैं। खून बहाना पड़ता है। इस वास्तविकता को ग़ज़ल ने अपने भीतर समाया है और इन समस्याओं पर भी प्रकाश डालने की कोशिश की है। जहीर जी और सतीश जी ने भी अपनी ग़ज़लों के माध्यम से आम आदमी का जीवन,उसकी कुंठा,पीड़ा दुःख– दर्द को हमारे सामने रखने की कोशिश की है।

जहीर कुरेशी – "उसे मरने से पहले थी जरुरत,
मरण के बाद,लाखों दान आया।"[5]

सतीश दराडे – 'जा जीवात्म्या कोणताही जन्म घे तू
तू पुढे अन दुःख पाठोपाठ आहे.

संपली देशातली सारी गरीबी
बातमी खोटी तरी भन्नाट आहे।'

दोनों ही ग़ज़लकारों के शेरों में हमें गरीबी, आम आदमी का जीवन,सामाजिक विसंगती,उनकी समस्याएँ आदि का चित्रण दिखाई देता है।

जहीर कुरेशी और सतीश दराडे जी की ग़ज़लों में राजनैतिक चेतना :— डॉ. परमलाल गुप्त के अनुसार, वर्तमान समय में राजनीती का महत्व बहुत बढ़ गया है। यह जीवन को प्रभावित करनेवाला सर्वप्रमुख तत्व बन गया है। पहले जिस प्रकार धर्म एक व्यापक और सर्वप्रधान तत्व था, उसी प्रकार आज राजनीती है। आज का साहित्यकार राजनीती से तटस्थ नहीं हो सकता है। वैसे ही जहीर जी और सतीश जी भी राजनीती से तटस्थ नहीं है। उन्होंने राजनीती किस तरह से अपने रंग दिखाती है। किस तरह से किसी योजना को, बिल को, प्रस्ताव को देखती है इन सभी बातों को सूक्ष्मता से अपने ग़ज़लों में दर्ज किया है। आज हम देख सकते हैं कि वर्तमान समय में राजनीती का स्तर हद से ज्यादा गिरा हुआ है। हिंदू —मुस्लिम यह बरसों से चली आ रही राजनीतिक परंपरा को नेताओं ने और अधिक तीव्र स्वरुप देकर समाज में हिंसा को बढ़ावा दिया है। भ्रष्टाचार की हदे तो अमर्याद स्वरुप ले चुकी हैं। इन सभी बातों पर हमारे दोनों ग़ज़लकारों की कलम बखूबी चली है। आज के नेता में झूठ, फरेब, मक्कारी, द्वेष, तिरस्कार, संकुचित प्रवृत्ति, स्वार्थ, चाटुकारिता आदि सभी गुण से ओतप्रोत भरे हुए दिखाई देते हैं। आम आदमी के आटे दाल का उन्हें कोई लेना देना नहीं है। पुराने, घिसे—पिटे, घूम—फिरकर वही धार्मिक मुद्दे, संस्कृति के नाम का झूठा चोला पहन कर वह समाज में अस्थिरता पैदा करने का काम जोरो—शोरो से कर रहे हैं। यह सभी बातें हर साहित्यकार को बड़ी चुभती हैं और वे अपने साहित्य के माध्यम से उस पर प्रहार करते हैं। जहीर कुरेशी और सतीश दराडे जी भी नेताओं के इन सभी गुणों से परिचित हैं और उन्होंने बहुत ही गंभीरता से इन मुद्दों पर अपनी कलम चलाई है। उदाहरण—

"भीड़ भी, बारूद लेकर मुट्ठियाँ कसने लगी,
एक भाषण के करिश्मे का असर है सामने।"[6]

जहीर जी का यह शेर समाज की वास्तविकता को उजागर कर रहा है। आज नेता हर मंच से भड़काऊ भाषणों की भरमार करते नजर आते हैं। उसका परिणाम दंगों के रूप में, झगड़ों के रूप में हमारे सामने दिखाई दे रहा है। नेता समाज में हर वक़्त अशांति चाहता है ताकि वह अपनी रोटी इन मुद्दों पर सेंक लें। कुछ लोग नेता के इसी जाल में फसकर अपने ही जैसे आम लोगों के साथ झगड़ा, दंगा करते हैं। भाषणों का यह असर जहीर जी यहाँ इस शेर के माध्यम से हमें बता रहे हैं।

सतीश दराडे जी भी नेताओं पर अपने शेरों के माध्यम से जोरदार व्यंग कसते नजर आते हैं। नेताओं के भष्टाचार की खबरे आए दिन आम बात हो गई है। ढूंढने पर भी हमें कोई ईमानदार नेता नजर नहीं आता। यह देश के आज के हालात हैं। भ्रष्टता मानो नेता का मुलभुत गुणधर्म सा बन गया है। जितना बड़ा नेता उतना बड़ा भ्रष्ट या उतना ही बेईमान। यह आज के राजनीती की अवस्था है। इसी भ्रष्ट नेता से सतीश जी अपने शेर के माध्यम से कुछ सवाल पूछते नजर आते हैं—

'जनता भनंग इथली सत्ता धनिक भाऊ
विकसित देश माझा मी नागरिक भाऊ
आमची सुगी ऋतूंच्या गेली घशात सारी
तुमच्या बरे निघाले खुर्चीत पीक भाऊ'

आज के देश की हालत को स्पष्ट करता यह शेर कहता है, विकसित देश के हम नागरिक हैं। नागरिक ऐसे हैं जिन्हे अपने जिम्मेदारियों का रत्तीभर एहसास नहीं है और इसी वजह से यहाँ के नेता भ्रष्टाचार कर धनी बने हैं। दूसरे शेर में वे कहते हैं कि हमारी पूरी फज़ल तो ख़राब मौसम के कारण नष्ट हो गई खराब हो गई लेकिन आपकी कुर्सी से कैसे अच्छी फसल निकली है? इसका जवाब वे नेता से मांग रहे हैं। बहुत ही बेझिझक शैली में वे अपने शेरों को व्यक्त करते हैं। उनके लेखन में कहीं भी तटस्थता नजर नहीं आती। वे अपने बेबाक अंदाज़ में राजनीती पर खुलकर व्यंग कसते नजर आते हैं।

जहीर कुरेशी और सतीश दराडे जी की ग़ज़लों में नारी विमर्श :– उत्तर आधुनिक काल में स्त्री विमर्श को लेकर साहित्य सृजन ने काफी गति प्राप्त की है। भारत में हमेशा से नारी की स्थिति दयनीय रही है। नारी को समाज ने हमेशा से हाशिए पर ही रखा है। उसका हर अंग से शोषण किया गया है। पुरुष वर्चस्वता की मानसिकता के कारण वह केवल परिवार और भोगवादी प्रवृत्तियों के बीच फँसी हुई है। साहित्य ने हमेशा से स्त्री का आधार बनने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ग़ज़लकारों ने नारी विमर्श का गहन चिंतन कर उसकी स्थिति को प्रकाशित किया है। जहीर जी और सतीश जी भी इस प्रक्रिया में आगे हैं उन्होंने भी अपने कलम के या साहित्य के माध्यम से स्त्री मुक्ति के लिए प्रयास किया है, जिसके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं –

"औरत के चरित्र को लेकर,मर्द का सोचना पुराना है।
मौका मिलते ही सिर उठाएगा,आदमी भेड़िया पुराना है।
'रेप' के केस में गवाह बिना, 'कोर्ट' का फैसला पुराना है।
यौन–अपराध को हवा देता, काम का देवता पुराना है।"[7]

प्रस्तुत शेरों से हम समझ सकते हैं कि नारी को लेकर काफी छोटी सोच पुरुष रखता है। उसमें जानवरों की प्रवृत्ति है, जो मौका मिलने पर बलात्कार या अत्याचारों जैसे दुष्कर्मों को भी करने से नहीं चुकती। बलात्कारियों को जब उनके दुष्कर्मों की सजा मिलनी चाहिए वहाँ साम दाम दंड भेद कर उन्हें बचाया जाता है। वर्तमान समय में यह शेर बहुत ही मार्मिकता से समाज का चित्रण करते हमें दिखाई देते हैं।

'मंदिरापाशीच हिंसाचार झाला,
देव नसतो आज साक्षात्कार झाला'

सतीश दराडे जी का यह शेर बहुत ही गहराई तक उतरता है। धर्म ने किस तरह से औरतों को अपने हक़ से दूर रखा कहीं न कहीं यह शेर उसकी और इशारा कर रहा है। धर्म की आड़ में, संस्कृति की आड़ में उन पर जो भी बंधन बांधे गए हैं, उन्हें तोड़ने की आवश्यकता है। आज व्यक्ति इतना गिर चूका है कि वह धार्मिक स्थानों,सरकारी दफ़्तर,पुलिस थाना आदि जगहों पर दुष्कर्मों को अंजाम दे रहा है। यह पूरे मानव सभ्यता के लिए शर्म की बात है। सतीश जी ने अपने ग़ज़लों में इस प्रकार की बातों पर अपना मत व्यक्त किया है।

जहीर कुरेशी और सतीश दराडे जी की ग़ज़लों में वेदना एवं निराशा के स्वर :– कविता का जन्म ही वेदना से हुआ है। सुमित्रानंदन पंत जी कहते हैं, 'वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान, निकलकर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।' सतीश दराडे जी का एक बहुत सुंदर शेर इसी अर्थ में है। वे कहते हैं – 'उगा जन्मते का घरंदाज कविता, पिढीजात दुःखे मिळाली असावी' जीवन में मुश्किल परिस्थितियों के कारण वेदना एवं निराशा के स्वर मुखरित हुए। आज हम देखते हैं मानवी मूल्यों के पतन के कारण हर व्यक्ति अपने आप को अकेला, बेबस, दुःखी देख रहा है। रोजमर्रा के जीवन से ग्रस्त आदमी नशाखोरी में डूबा दिखाई देगा। कहीं गरीबी के कारण, कहीं असमानता के कारण, घरेलु झगड़ों के कारण आदि तमाम बातों के कारण उसके जीवन में दुःख, निराशा, पीड़ा, दर्द आदि भावों की अभिव्यक्ति ज्यादा हो रही है। इन्हीं भावों को ग़ज़ल बड़े अच्छे अपने भीतर समाती आयी है। आज के आधुनिक समय में हर क्षेत्र में सामाजिक,आर्थिक, नैतिक या राजनीतिक त्रासदी की स्थितियां व्याप्त हैं। इन्हीं बातों से साहित्यकार परेशान होकर अपनी कलम कुछ इस प्रकार चलाता है–

वेळेत वेळ काढून मी श्वास घेत आहे
दररोज जीवनाला महसूल देत आहे

सतीश जी का उपर्युक्त शेर यह कहने का प्रयास कर रहा है कि आज जीवन में आदमी को आदमी के लिए, खुद के लिए, परिवार के लिए, रिश्तेदारों के लिए, दोस्तों के लिए बिलकुल भी वक़्त नहीं है। दैनंदिन जीवन में वह इतना व्यस्त हो गया है की मानों साँस लेने तक की फुरसत नहीं बची। वह समय निकाल कर साँस भी ले रहा है तो वह केवल जीने का महसूल या टैक्स अपनी जिंदगी को दे रहा है।

इतना दैनंदिन जीवन पीड़ा से भरा हुआ है। वहीं जहीर जी ने भी मानव की संवेदनहीनता,अकेलेपन की पीड़ा,एक– दूसरे के प्रति द्वेष, तिरस्कार आदि बातों को अभिव्यक्त किया है।

पैर अपने थे,मगर उनके इशारों पर चले
लोगकठपुतली से घिरी और तारों में लिपटे चले।[8]

मनुष्य का जीवन संघर्षमय होता है। ज्यादातर लोगों के जीवन में दो वक़्त के रोटी के लिए भी बहुत सारा संघर्ष करना पड़ता है। आज गरीब गरीब होता जा रहा है और अमीर और अधिक अमीर होता जा रहा है। छोटे छोटे सुखों, सुविधाओं के लिए भी सर्वसामान्य व्यक्ति जूझ रहा है। सर्वसामान्य व्यक्ति को अपने मालिक या दूसरे के इशारे पर चलना पड़ता है, इसी बात को यह शेर व्यक्त कर रहा है।

आर्थिक बोध :– आज के समय में आपकी आर्थिक स्थिति आपके जीवन के सभी पहलुओं को निर्धारित करती है। व्यक्ति के जीवन में अर्थ ही उसे अलग–अलग वर्गों में विभाजित करता है। बढ़ती महंगाई,बढ़ता पूंजीवाद,बढ़ती जरूरतें सर्वसाधारण व्यक्ति के जीवन की बाधाएँ बनी हुई हैं। आज के आर्थिक दुर्दशा के जिम्मेदार भ्रष्ट नेता एवं स्वार्थी शासन व्यवस्था है। आज पूंजीवादी व्यक्तियों का शासन पर गहरा प्रभाव एवं दबाव है। शासन किसानों के तरफ से कर्जा वसूल रहा है और मील मालिकों को अनुदान के रूप में पैसा बाट रहा है। हमारा समाजवादी समाज रचना का स्वप्न कैसे पूर्ण होगा यह हमारे सामने मूल प्रश्न है। नेता झूठ बोलने में माहिर हैं वे इन सवालों पे चुप हैं या तो फिर झूठ बोल रहे हैं एक सतीश जी का शेर देखिए–

रंग कर्जाने दिला शेतास आम्ही
देश मग टीव्हीत हिरवागार झाला

यह हाल हमारे देश का है। किसान कर्ज में डूबा है और मिडिया या नेता उसे अपना श्रेय समझकर दुनिया के सामने बता रहे हैं। इसी समस्या को जहीर जी भी एक अलग ढंग से लिखते हैं। उनका शेर महंगाई को लेकर बात करता दिखाई देता है –

1. "पूजागृह में शस्त्रों के भंडार भरे
   शस्त्र बने भगवान कि अपना देश यही।"[9]

दूसरा शेर

2. उसे खाते हैं खुश होकर करोडो
   जो रोटी तुमको बासी दिख रही है।[10]

दोनों ग़ज़लकार अपने युग की आर्थिक स्तिथि का बोध हमें करा रहे हैं। भूख, रोटी, शिक्षा, शोषण, ऊंच–नीचता आदि बातों के माध्यम से वे पूंजीवादी व्यवस्था का सच हमारे सामने रख रहे हैं।

जहीर कुरेशी और सतीश दराडे जी की ग़ज़लों में धार्मिक परिदृश्य :– धर्म मनुष्य के आसानी के लिए बनाया गया था। जिसमें वह अपनी पशुता छोड़े और एक अच्छा जीवन व्यतीत करें यह उसका उद्देश था। आज धर्म काफी बोना,संकुचित और मानव समाज में वैमनस्य बढ़ानेवाला हथियार बना है। आज हर धर्म खतरे में है यह कहकर समाज में सांप्रदायिकता बढ़ाने का काम जोरो–शोरों से शुरू है। आज इतिहास के साथ छेड़खानी कर, धार्मिक मुद्दों के आधार पर उसे लिखा जा रहा है या फिर भीड़ के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। शासक अपने कुर्सी के लिए धार्मिक मुद्दों को हमेशा जनता के बीच उठाते है। समाज में फसाद निर्माण करते हैं। धर्म आज हर नौजवान के सर पर चढ़ा हुआ है या चढ़ाया गया है। इन सारी बातों को साहित्यकार लिखता आया है और आज भी लिख रहा है। सतीश दराडे और जहीर कुरेशी भी इस सूचि में हैं दोनों ने अपनी कलम के माध्यम से धार्मिक परिदृश्य को हमारे सामने रखा है। सतीश जी का एक शेर उदाहरण के लिए देखिए –

देव ताजा की शिळा माहित नाही
का तरी भाळी टिळा माहित नाही

यहाँ इस शेर में सतीश जी भगवान के अस्तित्व पर ही प्रश्न उठा रहे हैं। भगवान है या नहीं पता नहीं लेकिन मनुष्य पैदा होने के साथ ही उसे जाति,धर्म,भगवान,कुल सब–कुछ मिल जाता हैं। यह कैसे होता है यह कुछ पता नहीं है लेकिन हो रहा है। यही बात वे यहाँ बता रहे हैं।

"रूढ़ियों का किला पुराना है,
जिसमें बैठा खुदा पुराना है।"[11]

जब धर्म निर्माण किए गए थे वह समय अलग था। उस वक़्त उस तरह के धर्म की, खुदा की,भगवान की,रूढ़ियों की आवश्यकता थी लेकिन आज समय अलग है। आज के समय में पुराने भगवान,प्रथा,रूढ़ियों को ख़त्म करने की आवश्यकता है। यह बात इस शेर से जहीर जी स्पष्ट कर रहे हैं।

इस तरह से हम उनके साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन कर सकते हैं। भाषा की दृष्टी से दोनों ही ग़ज़लकार हमें सशक्त दिखाई देते हैं।तत्सम, तद्भव,देशज,विदेशी शब्दों का प्रयोग उनकी ग़ज़लों में दिखते हैं।बिम्बों का प्रयोग भी बखूबी किया गया है। अलग–अलग मिथक दिखाई देते हैं। उनकी ग़ज़लों में ग्रामीण शब्दों का प्रयोग, मुहावरे, लोकोक्तियाँ,तरह–तरह के प्रतीक हमें दिखाई देते हैं। अलंकार योजना,व्यंगात्मकता आदि का अच्छे से प्रयोग किया गया है। निष्कर्षता साहित्य की भूमिका में सतीश दराडे और जहीर कुरेशी जी का योगदान बहुमूल्य है। मराठी और हिंदी ग़ज़ल में दोनों ग़ज़लकारों का बहुत अहम स्थान है।

संदर्भ–सूची :–

1. भीड़ में सबसे अलग –जहीर कुरेशी – पृ. 39।
2. ग़ज़लकार जहीर कुरेशी की काव्य दृष्टी – पृ. 27।
3. ग़ज़लकार जहीर कुरेशी की काव्य दृष्टी – पृ 27।
4. ग़ज़लकार जहीर कुरेशी की काव्य दृष्टी – पृ. 31।
5. भीड़ में सबसे अलग –जहीर कुरेशी – पृ. 8।
6. चाँदनी का दुःख –जहीर कुरेशी पृ. 75।
7. ग़ज़लकार जहीर कुरेशी की काव्य दृष्टी – पृ. 69।
8. समंदर ब्याहने नहीं आया है –जहीर कुरेशी – पृ. 177।
9. भीड़ में सबसे अलग –जहीर कुरेशी – पृ. 41।
10. पेड़ तनकर भी नहीं टूटा–जहीर कुरेशी पृ. 26।
11. ग़ज़लकार जहीर कुरेशी की काव्य दृष्टी – पृ. 106।

महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण का महत्त्व

डॉ. वसीम आलम*

नवजागरण का सीधा अर्थ है "नई जीवन दृष्टि"। नवजागरण फ्रेंच शब्द रेनेसां (त्मदंपेंदबम) का हिंदी अनुवाद है। नवजागरण ने आधुनिक जीवन दृष्टि को जन्म दिया, जिसका संबंध सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जागरण से था। भारत में नवजागरण का उदय औपनिवेशिक काल में हुआ। मूल रूप से सभी प्रकार की रूढ़ी, जड़ता, शोषण, उत्पीड़न के विरुद्ध चुनौती देने का नाम ही नवजागरण है। बंगाल में नवजागरण की शुरुआत जहां राजा राममोहन राय (1775–1833) से लेकर कवि गुरु रवींद्रनाथ ठाकुर (1861–1941) तक माना जाता है, वहीं हिंदी नवजागरण का आरंभ 1857 की क्रांति से माना जाता है। देशी विदेशी शोषण, शोषण के मुख्य कारण तथा उसके निवारण को लेकर तत्कालीन बुद्धिजीवी, लेखक, साहित्यकार आदि गहन चिंतन मनन कर रहे थे, जिसका प्रभाव तत्कालीन साहित्य में दिखाई देने लगा था। हिंदी नवजागरण के पहले अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। सन 1857 की क्रांति ने भारतीय समाज में क्रांतिकारी चेतना को जन्म दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि सामाजिक स्तर से लेकर आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक सभी स्तरों पर नई चेतना का जन्म हुआ। यह नई चेतना या नवजागरण सामाजिक कुप्रथाओं, जड़ परंपराओं, अंध–विश्वासों के विरोध से आरंभ होकर सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा तक चला तथा इसके विपरीत विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा की मांग को बलवती किया। इसी नवजागरण में हिंदी की जातीय चेतना का विकास होता है। जिसका विकसित स्वरूप हमें द्विवेदी युग में दिखाई देता है। प्रोफेसर इरफान हबीब का मानना है कि नवजागरण असल में एक रीज़न अर्थात कारण है। यही कारण था तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में अमूल चूल परिवर्तन। यह समय की मांग थी। नवजागरण के आने से जिस आधुनिक जीवन दृष्टि का उदय हुआ, उसने हर प्रकार की दकियानूसी मान्यताओं को तोड़ दिया। इस नए जीवन दृष्टि ने हर क्षेत्र, हर वर्ग, समुदाय, जाति, धर्म के लोगों को प्रभावित किया। साथ ही साथ उनकी मानसिक चेतना में एक बदलाव आया। यह बदलाव नवीनता का था। इस नवीन बदलाव ने उनकी सोच को प्रभावित किया। सोच में आए बदलाव ने लोगों को नवजागरण की ओर उन्मुख किया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी का समय काल सन 1900 से लेकर सन 1920 तक रहा। ज़ाहिर बात है कि देश ब्रितानी साम्राज्य के अधीन था। ब्रितानी साम्राज्यवाद तथा देशी सामंतवाद ने देशवासियों को निचोड़ दिया था। इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं "पुराने और नए सामंतवाद में यही अंतर है। पहले भी प्रजा शोषित थी, दरिद्र थी, किंतु अकाल में इस तरह लाखों आदमी जान से हाथ न धोते थे। अंग्रेजों ने प्रचार किया था कि मुगल शासन में जनता पर बड़ा अत्याचार किया गया और उन्होंने आकर नई शासन व्यवस्था में प्रजा की सुख सुविधा का ध्यान रखा। यह उसी तरह की धूर्तता थी जिसकी ओर गदर के नेताओं ने बार बार संकेत किया था।"[1] स्पष्ट है कि लोगों की दशा और दिशा कितनी भयावह थी। इनकी साम्राज्यवादी व्यवस्था का मूल था शासन करना और मुनाफा कमाना। अंग्रेज किसी भी देश पर सीधे हमला नहीं किया करते थे। पहले वे व्यापार के उद्देश्य से जाते थे तथा धीरे–धीरे अपना प्रभुत्व स्थापित कर उस देश को अपने अधीन कर लेते थे। यही उनकी साम्राज्यवादी नीति थी। वे इसमें सफल भी हुए। इस संबंध में रामविलास शर्मा कहते हैं कि "अंग्रेज व्यापारियों ने 17वीं और 18वीं सदी में जहाँ जहाँ अपना प्रभुत्व कायम किया, वहाँ उन्होंने व्यापार को बढ़ावा दिया, विश्व बाजार कायम किया और इस बाज़ार में जिस माल की हर तरफ मांग थी और बिक्री होती थी, वह था मनुष्य।"[2]

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसी बात को लक्ष्य कर मार्च 1908 की 'सरस्वती' में उन्होंने 'गुलामों का व्यापार' शीर्षक टिप्पणी लिखी। इसी तरह सत्यदेव ने मई 1909 की 'सरस्वती' में अब्राहम लिंकन की शतवर्षी शीर्षक से एक लेख लिखा। इस लेख के द्वारा उन्होंने बताया कि अंग्रेजों ने अमेरिका में अपने उपनिवेश स्थापित करते समय पुर्तगालियों से मिलकर गुलामों के व्यापार में हाथ बंटाया था। यह पूर्ण रूप से अमानवीय कृत्य था।

*** सहायक प्राध्यापक, त्रिवेणीदेवी भलोटिया कॉलेज, रानीगंज (पश्चिम बंगाल)**

भारत के संदर्भ में यही नजरिया अंग्रेजों का था। उनकी इसी अवमानवीयता का चित्रण करते हुए रामविलास शर्मा जी उल्लेख करते हैं कि – "जो सभ्यता दास प्रथा के आधार पर चली थी, वह पिछड़े हुए मानव समुदायों को नए बौद्धिक प्रकाश की ओर क्या ले जाती, वह स्वयं निहायत अवैज्ञानिक विचारधारा का समर्थन करती थी।"[3] हिंदी नवजागरण के संदर्भ में महावीरप्रसाद द्विवेदी के कार्य एवं उनके योगदान का मूल्यांकन करते हुए डॉक्टर नामवर सिंह तथा रामवृक्ष द्वारा उनके साहित्यिक कार्यों का एक संकलन प्रकाशित किया। इस प्रकाशित संकलन को नाम दिया "हिंदी नवजागरण के अग्रदूत आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी"। हिंदी नवजागरण की पृष्ठभूमि पर अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ. नामवर सिंह कहते हैं कि हिंदी नवजागरण का बीज मंत्र फूंकने वाले प्रथम अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे, जिनकी मुख्य प्रतिज्ञा यह थी कि "स्वत्व निज भारत गहै"। भारतेंदु का स्वत्व वही था जिसे आज जातीय अस्मिता, जातीय पहचान और अंग्रेजी में आइडेंटिटी कहते हैं। भारतेन्दु के साथ ही उस दौर के सभी साहित्यकारों के लिए अपनी पहचान की पहली शर्त थी अपनी भाषा "निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति कौ मूल"। इसी कड़ी में डॉ नगेंद्र ने द्विवेदी युग का एक नया नामकरण करते हुए उसे जागरण सुधार काल कहा। हिंदी कविता को रीतिकालीन श्रृंगारिकता से राष्ट्रीयता की ओर तथा जड़ता से अग्रगति की ओर, रूढ़ियों से स्वच्छंदता की ओर ले जाने का महत्वपूर्ण कार्य बीसवीं सदी के पहले दो दशकों का उल्लेखनीय महत्त्व है।

हिंदी साहित्य के इतिहास का अध्ययन करते समय हम यह देखते हैं कि जहाँ भारतेंदु एवं उनके समकालीन लेखक, साहित्यकार भारतवर्ष की दुर्दशा पर अपना दुख व्यक्त करते रह गए थे, वहीं महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनके समकालीन लेखक, साहित्यकार आदि ने भारतवर्ष की मार्मिक व्यथा के चित्रण के साथ ही साथ देश के हर नागरिक को राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के लिये जागृत किया तथा उन्हें इसके लिए आत्म बलिदान के लिए भी प्रेरित किया। साहित्य के क्षेत्र में दिवेदी जी सीमित अर्थ में साहित्यकार नहीं हैं, उनका मुख्य लक्ष्य हिंदी प्रदेश में नई सामाजिक चेतना का प्रसार करना था। इस संबंध में डॉ. रामविलास शर्मा उल्लेख करते हुए कहते हैं कि "महावीर प्रसाद द्विवेदी की भूमिका एक शिक्षक की भूमिका है, केवल साहित्यकार की नहीं।"[4] द्विवेदी जी का दृष्टिकोण, हिंदी भाषा को लेकर जो था, वह जातीय स्वरूप पर आधारित था, ठीक उसी तरह वे हिंदी साहित्य के जातीय स्वरूप के प्रति भी उतने सजग एवं जागरूक थे। अपनी पुस्तक महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण में उल्लेख करते हुए कहा है कि "जैसे भाषा के बारे में द्विवेदी जी हिंदी के जातीय स्वरूप की चर्चा करते हैं, वैसे ही हिंदी साहित्य के जातीय स्वरूप के प्रति भी वह अत्यंत जागरूक हैं। जो लोग कला की एकांत साधना पर ज़ोर देते हैं या उसके शाश्वत मूल्यों पर ही ध्यान केंद्रित करते हैं, उनकी समझ मेँ यह बात ज़रा मुश्किल से आती है कि साहित्य का जातीय स्वरूप भी होता है। जैसे किसी भाषा के बोलने वालों के अस्तित्व के बिना उस भाषा के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती, वैसे ही उस भाषा के माध्यम से साहित्य रचने, उसे पढ़ने और सुननेवालों के समुदाय के बिना उस साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती।"[5]

समग्रता में हम कह सकते हैं कि महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने समाज से लेकर राष्ट्र तथा साहित्य के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका का निर्वाह किया है। उनकी यह भूमिका हिंदी नवजागरण के इतिहास में महत्वपूर्ण है। हर युग का साहित्यकार अपने युग की चेतना से प्रभावित होता है और युगीन चेतना से प्रभावित होकर वह समाज की दशा दिशा को प्रभावित करता है। साथ ही साथ व्यक्ति की चेतना को जाग्रत करता है। यह जागरण ही बदलाव का सूचक है। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी उन गिने चुने साहित्यकारों में से एक हैं, जिन्होंने अपनी लेखनी एवं अदम्य साहस के द्वारा समाज में, लोगो में तथा साहित्य में नई जीवन दृष्टि का संचार किया।

सन्दर्भ–सूची :–

1. शर्मा, रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या –24।
2. वही, पृष्ठ संख्या – 37।
3. वही, पृष्ठ संख्या – 39।
4. वही, पृष्ठ संख्या – 270।
5. वही, पृष्ठ संख्या – 270।

भारतीय प्रवासियों की भूमिका का समीक्षात्मक अध्ययन (खाड़ी देशों के वर्तमान संन्दर्भ में)

ईशा*

डॉ. रचना यादव**

सारांश– भारतीय प्रवासी सम्पूर्ण विश्व में आर्थिक, सामाजिक व सांस्क्रतिक जुड़ाव को बढ़ाते है जैसे– विभिन्न भाषाओं में बात करना विभिन्न संस्कृतियों के नियमों को पालन करना और विभिन्न देशों में अपने श्रम, कौशल का विकास करते है। वर्तमान में भारतीय प्रवासी लगभग 20 मिलियन है जो पूरी दुनिया में नैतिक मूल्य, आर्थिक क्रियाओं व वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को दर्शाता है। भारतीय प्रवासी भारत की नरम कूटनीति को सफल बनाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते है। ग्लोबल माइग्रेशन रिपोर्ट 2020 में भारतीय प्रवासियों की सबसे बड़ी संख्या रही हैं। 2022 GMR रिपोर्ट में चीन, मेक्सिको, रूस व भारत चार देश शीर्ष पर रहे हैं (www.mea.gov.in, 2023)। भारतीय विश्व में वैश्वीकरण व व्यापारिकता के कारण प्रवास करने में रूचि लेने लगे हैं। भारतीय प्रवासियों की अधिक रुचि खाड़ी देशों की ओर है। 2020 में भारतीय संसद की रिपोर्ट के आकड़ो से स्पष्ट है कि भारतीय प्रवासी भौगोलिक रूप से खाड़ी देश (UAE, कुवैत) में व्यापक रूप से फैले हुये है। प्रस्तुत शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य है कि भारतीय प्रवासियों का खाड़ी देशों के नरम कूटनीति को बढाना है। भारतीय प्रवासी ने खाड़ी देश से आर्थिक योगदान के जुड़ाव को बढावा दिया है। इसके साथ ही भारतीय प्रवासियों के द्वारा भेजे गए धन भुगतान से सकारात्मक प्रणाली का निर्माण होता है। कुशल श्रमिकों के प्रवास से भारत में खाड़ी देश से एक विशेष आर्थिक व राजनीतिक जुड़ाव को बढावा दिया। भारतीय प्रवासी श्रमिकों ने भारत की गुप्त सूचना, वाणिज्यिक और व्यवसायिक विचारों और प्रौद्योगिकी के प्रवाह को भी सुविधाजनक बनाया है। प्रस्तुत शोधपत्र द्वितीयक आकड़ो पर आधरित है इसकी शोधपद्धती में वर्णनात्मक व विवरणात्मक शोधपद्धती का प्रयोग किया है।

प्रमुख शब्द– भारतीय प्रवासियों की स्थिति, भारतीय विदेशनीति, नरम कूटनीति।

प्रस्तावना– प्राचीनकाल से ही भारत व खाड़ी देशों के मध्य क्षेत्रीय व्यापार व आर्थिक क्रियाओं को सुचारू रूप से चलाया जा रहा है। खाड़ी देश में भारतीयों की उपस्थिति सिल्क रूट से प्रारंभ हुई है। जब से ही भारत व खाड़ी देश के मध्य व्यापारिक संबंधो का प्रारंभ हुआ। सन 1980 में खाड़ी सहयोग परिषद का गठन किया गया। जिससे भारत के लोग खाड़ी देशों को जाने में रूचि लेने लगे। इससे खाड़ी देशों में भारतीय प्रवासियों को अपने सांस्क्रतिक व आर्थिक जुड़ाव को बढ़ावा मिला।

खाड़ी देशों का मानचित्र

स्रोत– https://www.britannica.com/topic/Gulf-Cooperation-Council

*शोधार्थी–राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, दयालबाग शिक्षण संस्थान डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी, दयालबाग–आगरा–282005।

** असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र एवं राजनीति विज्ञान विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, दयालबाग शिक्षण संस्थान डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी, दयालबाग–आगरा–282005।

खाड़ी देशों में भारतीय प्रवासी के कारण भारतीय जुड़ाव को बढावा मिला है जैसे सांस्क्रतिक फैलाव, सामाजिक जुड़ाव इत्यादि। भारत ने खाड़ी देशों के प्रवासियों के कारण नरम कूटनीतिक सम्बंधो को अपनाया है। इससे भारत के कई उद्देश्यों की पूर्ति की गई। भारत की खाड़ी देशों के साथ एक क्षेत्रीय साझेदारी के रूप में आर्थिक व राजनीतिक शक्ति केंद्र के रूप में उभरी है ताकि आगमी वर्षो में खाड़ी देशों के साथ भारतीय जुड़ाव बढे। खाड़ी क्षेत्र भारत के लिए एक प्रमुख व्यापारिक भागीदारी के रूप में उभरा है। इसके साथ यह क्षेत्र भारत का भविष्य में भी एक मुख्य भागीदार की भूमिका निभाएगा। खाड़ी देशों में भारतीय प्रवासियों की भी बहुत बड़ी भागीदारी है।

आर्थिक एवं वाणिज्यिक सम्बंध– खाड़ी सहयोग परिषद की स्थापना 25 मई 1981 को रियाद, सऊदी अरब में बनाया गया। खाड़ी क्षेत्र भारत का प्रमुख व्यापारिक सहयोगी है तथा यह भविष्य में भी भारत के निवेश के रूप में भी सहयोग प्रदान करेगा। खाड़ी देश सामूहिक रूप से एक बड़े प्रवासी समुदाय की भूमिका निभाते हैं जिससे खाड़ी व्यापार निवेश व आर्थिक क्रियाओं में सहयोग प्राप्त होता है। भारत के खाड़ी देशों के साथ तेल व गैस के बढते आयात, बढते व्यापार और निवेश और क्षेत्र में लगभग 6.5 मिलियन भारतीय श्रमिकों की उपस्थिति से भारत के खाड़ी क्षेत्र से संबंधो को बहुत अधिक मजबूती प्रदान करने में सहायता देता है(mea.gov.in, 2023)। खाड़ी देश भारत की निर्मित वस्तुओं और सेवाओं के निर्यात के लिए उत्कृष्ट बाजार प्रदान करते है। लगभग 10 मिलियन भारतीय प्रवासी खाड़ी देशों में रहते है जो औसतन सालाना बिलियन डॉलर राशि प्रेषण भेजते है। विश्व बैंक के अनुसार भारत 2021 में दुनिया में प्रेषण का सबसे बड़ा प्राप्तकर्ता जिससे लगभग 87 बिलियन डॉलर खाड़ी क्षेत्र से आया था। भारत के वित्त मंत्रालय के आंकड़ो के अनुसार 2021–22 में भारत का निर्यात 2020–21 में 27.8 बिलियन डॉलर से 2021–22 में 44 बिलियन डॉलर हो गया जो 58% से अधिक वढोत्तरी हुई है। यह भारत के 2021–22 में भारत के कुल निर्यात का 10.4% था। केन्द्रीय मंत्रालय PPAC रिपोर्ट के अनुसार भारत ने 2021–22 विभिन्न देशों से 212.2 मिलियन टन कच्चा तेल लिया जिसमें कि 22% खाड़ी देशों से आयात किया(commerce.gov.in, 2022)।

राजनीतिक सम्बंध– भारत की खाड़ी देशों के प्रति नरम कूटनीति रही है इसका एक कारण यह भी है भारतीय प्रवासियों का खाड़ी देशों से भारत के व्यापारिक सम्बंध रहे है। भारतीय विदेशनीति में बदलाव होने के पश्चात् भी प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने खाड़ी देशों के साथ शांति व मैत्रीपूर्ण सम्बंधों क बनाये रखा है व आर्थिक लाभ को सुनिश्चित करते हुये प्रमुख क्षेत्रों में जुड़ाव की अनुमति देता है। खाड़ी क्षेत्र भारत के राष्ट्रीय हितों के सबसे महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक है। इसका सीधा सम्बंध भारतीय राजनीति और प्रवासी सुरक्षा व हित नीतियों से जो भारतीय प्रवासिओं को भारत से जोड़े रखता है। यह प्रवासी भारत के सांस्क्रतिक व सामाजिक जुड़ाव को बढावा देता है। भारतीय प्रवासी पूरी तरह से एक हस्तांतरित राजनीतिक वोट बैंक होने के साथ–साथ भारत के लिए नरम कूटनीति का भी मुख्य विषय के रूप में भी सामने आया है जिसके लिए भारत सरकार के द्वारा खाड़ी देशों में रह रहे भारतीय प्रवासियों के लिए कुछ कानून व योजनाएँ बनाई हैं जैसे– राष्ट्रीय प्रवासी श्रम नीति, ई–श्रम पोर्टल इत्यादि है।

भारतीय प्रवासियों के लिए कानूनी श्रम संहितायें है–

- वेतन संहिता, 2018
- औधोगिक सम्बंध, 2020
- सामाजिक सुरक्षा संहिता, 2020
- व्यवसायिक सुरक्षा स्वास्थ्य और कार्यदशा संहिता, 2020

सामाजिक, सांस्क्रतिक व धार्मिक सम्बंध– लगभग 8.5 मिलियन भारतीय प्रवासी खाड़ी देशों में रहते व काम करते है जो दुनिया में प्रवासियों की सबसे बड़ी संख्या है। अरब प्रायद्वीप की भारत से भौगोलिक और ऐतिहासिक निकटता इसे भारतियों के लिए एक सुविधाजनक गंतव्य बनाती है। आज भारतीय सम्पूर्ण विश्व में निवास कर रहे है तथा अपने संस्कति की छाप छोड़ रहे है किन्तु खाड़ी देशों के प्रति भारतीयों का एक अलग ही जुड़ाव देखने को मिलता है। भारतीय प्रवासी खाड़ी देशों में जाकर वहाँ पर मूल निवासियों के साथ अपनी संस्क्रति को बढ़ावा देते हैं। यह सामाजिक एकीकरण को दर्शाता है। भारतीय प्रवासियों के बसुधैव कुटुम्बकम की भावना को बढाता है। भारतीय प्रवासियों की एक बड़ी संख्या लगभग 70% भारतीय मजदूरों, तकनीशियनों, घरेलू नौकर व ड्राइवरों के रूप में काम करते है हालाँकि पिछले दशक में कुशल और

उच्च कुशल प्रवासन की प्रकृति बढ़ी है। खाड़ी क्षेत्र में समाज में प्रवासी समुदाय को अपने धर्म व सांस्क्रतिक मानदंडो व मूल्यों का पालन करने की स्वतंत्रता है। हालाँकि खाड़ी देशों में प्रवासी समुदायों का सामाजिक–सांस्क्रतिक सम्पर्क भारतीय संस्कति की गरिमा को फैलाने के रूप में सहायक बन रहा है।

रोजगार की ओर रुख– भारतीय प्रवासी खाड़ी देशों की ओर पलायन करने का एक बड़ा उद्देश्य है खाड़ी देशों में अच्छे रोजगार की प्राप्ति जिससे भारतीय नागरिक खाड़ी देशों की ओर आकर्षित होते है। 1970 के बाद खाड़ी क्षेत्र में भारतीय श्रमिकों का पलायन बढ गया इसके परिणाम–स्वरूप खाड़ी क्षेत्र की अर्थव्यवस्था का तेजी से विस्तार हुआ। इसके कारण खाड़ी क्षेत्र में विदेशी श्रमिकों को आमन्त्रित करने, अपनाने की नीति शुरू की। खाड़ी देश विशेष रूप से भारत और अन्य दक्षिण एशियाई देशों से श्रमिकों को भर्ती करने में रूचि रखते है। खाड़ी क्षेत्र में प्रवास करने वाले एशियाई व पश्चिमी प्रवासी लगभग 70% तक है जो खाड़ी क्षेत्र की आर्थिक सामाजिक व राजनीतिक क्षेत्रों में अपनी विशेष भूमिका निभाती है। खाड़ी में भारतीय प्रवासी श्रमिकों की कुल आबादी 31.5% है (ministry of external affairs, 2023)। 2011 में कुबैत में भारतीय श्रमिकों की सबसे बड़ी हिस्सेदारी थी। विदेश मंत्रालय के अनुसार 2016 में खाड़ी देशों में 6 मिलियन भारतीय श्रमिक प्रवासी थे (ministry of external affairs, 2023)।

भारतीय प्रवासियों की खाड़ी देशों के प्रति पलायन में विशेष रुचि रखने के प्रमुख कारण निम्न हैं। भारतीय प्रवासी विगत बर्षों में खाड़ी क्षेत्र को ही अपना पसंदीदा क्षेत्र के रूप में चुन रहे है इसके कुछ कारण है–

- खाड़ी देशों में रोजगार व शिक्षा के अवसर।
- व्यापार व ज्ञान के आदान–प्रदान के लिए।
- धार्मिक कारण।
- रोजगार में निम्न व उच्च कुशल श्रमिकों का चयन।

तालिका 1. खाड़ी क्षेत्र में भारतीय प्रवासियों की संख्या वर्ष 2023 में

खाड़ी देशों के नाम	भारतीय प्रवासियों की संख्या (2023) आंकडें मिलियन में है
ब्रुनेई	326658
कुवैत	1029861
ओमान	781141
कतर	746550
सऊदी अरब	2594947
संयुक्त अरब अमीरात	3425144
कुल	8904301

स्रोत– https://www.mea.gov.in/population-of-overseas-indians.htm

उपरोक्त आंकडों से स्प्ष्ट है कि भारतीय प्रवासी खाड़ी क्षेत्र में लगभग 10 मिलियन हैं यह आंकडें 2023 के जीएमआर रिपोर्ट के अनुसार है जिसमें ब्रुनेई में भारतीय प्रवासी 326658, कुवैत में 1029861, ओमान में 781141, कतर में 746550, सऊदी अरब 2594947 और यू.ए.ई. में 3425144 अर्थात् कुल 8904301 भारतीय प्रवासियों कि प्रवासन संख्या 2023 में रही है।

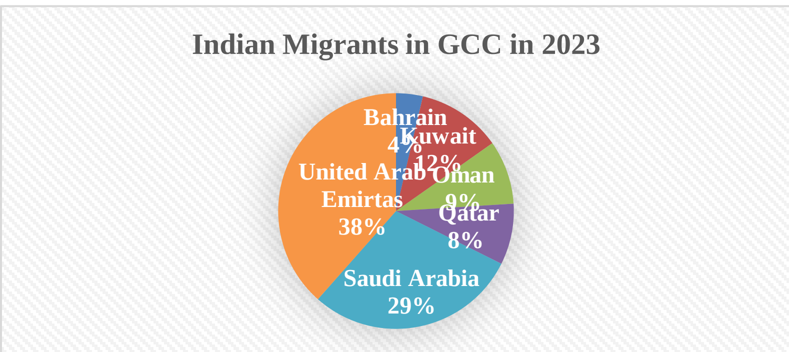

स्रोत– https://www.mea.gov.in/population-of-overseas-indians.htm

चार्ट 1. खाड़ी क्षेत्र में भारतीय प्रवासियों की संख्या

तालिका 2. खाड़ी क्षेत्र में भारतीय प्रवासियों की संख्या वर्ष 2023 में

खाड़ी देशों के नाम	भारतीय प्रवासियों की संख्या (2025) आंकडें मिलियन में है
ब्रुनेई	30422
कुवैत	1991056
ओमान	1373270
कतर	1673568
सऊदी अरब	4927018
संयुक्त अरब अमीरात	7137696
कुल	17133030

उपरोक्त आंकडों से स्प्ष्ट है कि भारतीय प्रवासी खाड़ी क्षेत्र में 17 मिलियन हैं यह आंकडें 2025 के जीएमआर रिपोर्ट के अनुसार है जिसमें ब्रुनेई में भारतीय प्रवासी 30422, कुवैत में 1991056, ओमान में 1373270, कतर में 1673568, सऊदी अरब 4927018, और यू.ए.ई. में 7137696, अर्थात् कुल 17133030 भारतीय प्रवासियों कि प्रवासन संख्या 2025 में रही है।

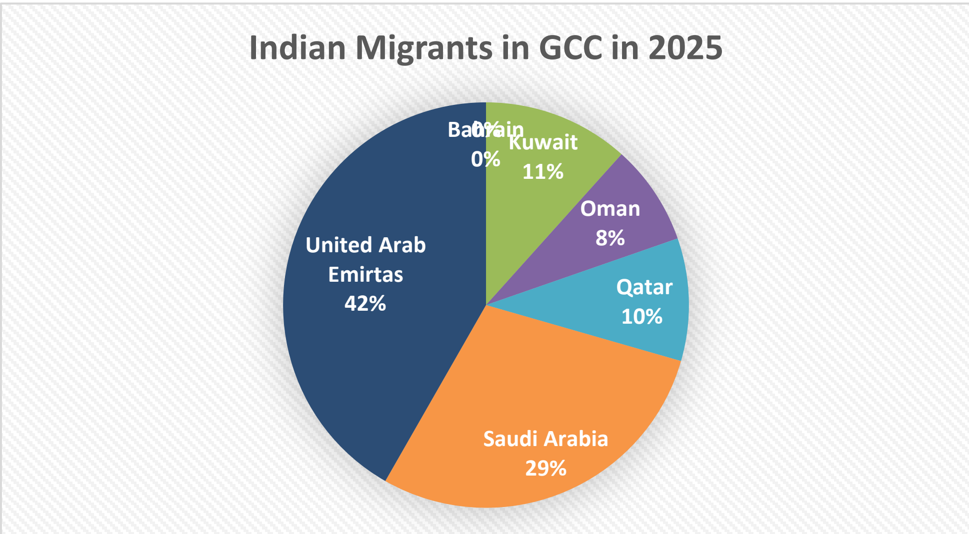

स्रोत– https://www.mea.gov.in/population-of-overseas-indians.htm

चार्ट 2. खाड़ी क्षेत्र में भारतीय प्रवासियों की संख्या

भारतीय प्रवासियों के खाड़ी क्षेत्र में प्रमुख कार्य क्षेत्र–

- **निर्माण उद्योग:** भारतीय मजदूरों की सबसे बड़ी संख्या निर्माण और बुनियादी ढांचा परियोजनाओं में कार्यरत है।
- **स्वास्थ्य सेवा क्षेत्र:** डॉक्टर, नर्स और अन्य स्वास्थ्यकर्मी भी बड़ी संख्या में कार्यरत हैं।
- **आईटी और प्रबंधन:** कुशल पेशेवर विभिन्न कंपनियों में उच्च पदों पर कार्यरत हैं।
- **घरेलू सेवाएँ:** भारतीय महिलाएँ घरेलू कामगार के रूप में भी कार्य करती हैं।

भारतीय प्रवासियों के खाड़ी क्षेत्र में रोजगार के अवसर और उनका भारतीय प्रवासियों पर प्रभाव–

- खाड़ी देशों में उच्च वेतन और बेहतर जीवनशैली की संभावनाएँ भारतीय श्रमिकों को आकर्षित करती हैं।

- निर्माण, परिवहन, हेल्थकेयर और तकनीकी क्षेत्रों में रोजगार के अवसर अधिक उपलब्ध हैं।
- हाल के वर्षों में कई भारतीय प्रवासी अपने व्यवसाय भी स्थापित कर रहे हैं।

भारतीय प्रवासियों के समक्ष आने वाली चुनौतियाँ–

- **कम वेतन और शोषणः** कम कुशल मजदूरों को शोषण का सामना करना पड़ता है।
- **कानूनी मुद्देः** वीजा और श्रम कानूनों में बदलाव प्रवासियों को प्रभावित करते हैं।
- **सामाजिक चुनौतियाँः** प्रवासी श्रमिकों को सांस्कृतिक भिन्नता और भाषा की समस्या का सामना करना पड़ता है।

भारत सरकार की भारतीय प्रवासियों के लिए नीतियाँ–

- भारत सरकार ने ''प्रवासी भारतीय दिवस'' और ''ई–माइग्रेट'' जैसी पहलें शुरू की हैं।
- प्रवासी श्रमिकों के लिए बीमा और सुरक्षा उपायों को लागू किया गया है।
- खाड़ी देशों के साथ श्रमिक अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए हैं।

वर्तमान परिदृश्य में भारतीय प्रवासियों की स्थिति और भविष्य की संभावनाएँ–

- COVID 19 महामारी के बाद प्रवासियों की स्थिति में बदलाव आया है।
- अब तकनीकी और डिजिटल क्षेत्रों में भी रोजगार के अवसर बढ़ रहे हैं।
- आत्मनिर्भर भारत अभियान के तहत कई प्रवासी श्रमिक स्वदेश लौटकर रोजगार के नए अवसर तलाश रहे हैं।

भारतीय प्रवासी श्रमिक खाड़ी देशों की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। हालाँकि, उन्हें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। सरकार को नीतिगत सुधारों और प्रवासियों के कल्याण के लिए अधिक प्रयास करने की आवश्यकता है।

भारतीय प्रवासियों के लिए सुझावः

1. प्रवासी श्रमिकों के लिए कानूनी सहायता और संरक्षण को और मजबूत किया जाए।
2. खाड़ी देशों में रोजगार के नए अवसरों को खोजने के लिए डिजिटल प्लेटफार्म विकसित किए जाएँ।
3. प्रवासियों को उनके अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में अधिक जागरूक किया जाए।

इस प्रकार, भारतीय प्रवासी श्रमिकों की भूमिका को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए सरकार, नियोक्ता और स्वयं प्रवासियों को मिलकर प्रयास करने होंगे।

निष्कर्ष– उपरोक्त विवरण के आधार पर कहा जा सकता है कि भारतीय प्रवासियों का खाड़ी देशों के प्रति विशेष लगाव रहा है। खाड़ी देश भारत के लिए एक महत्वपूर्ण मित्र देशों में से एक है। भारत के लिए सदैव खाड़ी देशों का एक विशेष राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक व सांस्क्रतिक महत्त्व है। खाड़ी सहयोग परिषद से भारत के लिए व्यापार, निवेश, ऊर्जा, श्रम शक्ति के क्षेत्र में महत्वपूर्ण अवसर प्राप्त हुये है। भारत के खाड़ी देशों से द्विपक्षीय व्यापार में तेल का अधिक व्यापार किया जाता है। भारत के प्रवासी नागरिक भी अपनी आर्थिक क्रियाओं से भारतीय अर्थव्यवस्था में एक बड़ा योगदान देने के साथ अपने सांस्क्रतिक व सामाजिक जुड़ाव को भी बढाते है। भारत के द्वारा अपने प्रवासी नागरिकों के लिए कई नीतियों को बनाया गया ताकि उनको सुरक्षा प्राप्त कराई जा सके। इसके आलावा भारत को अपनी "लुक वेस्ट" नीति की ओर भी अधिक ध्यान देना चाहिये ताकि खाड़ी देशों के साथ और अधिक मजबूत सम्बंधों को स्थापित किया जा सके। भारत का खाड़ी देशों में निवेश व तेल, ऊर्जा के व्यापारिक सम्बंधो को मजबूत रखने के लिए साथ भविष्य में भी तेल पूर्ति के हितों के लिए भी कार्य करने होंगें। भारतीय प्रवासियों की खाड़ी देशों में भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है, विशेष रूप से आर्थिक और सामाजिक दृष्टिकोण से हालाँकि, बदलते वैश्विक परिवेश और सरकारी नीतियों के चलते रोजगार की प्रवृत्तियों में बदलाव हो रहा है। भारतीय प्रवासियों को अब नए

अवसरों की तलाश में कौशल उन्नयन और वैकल्पिक कैरियर विकल्पों को अपनाना होगा। सरकार और निजी क्षेत्र को मिलकर उनके लिए अनुकूल नीतियाँ बनानी चाहिए ताकि वे अपने कौशल और अनुभव का लाभ उठा सकें।

संदर्भ–सूची :–

1. Al Shehabi, O., & Hanieh, A. (2015). *Transit States: Labour, Migration and Citizenship in the Gulf*. Pluto Press.
2. Gornall, J. (2011, December 2). Sun sets on British Empire as UAE raises its flag. *The National*.
3. Hamza, S. (2014). Migrant Labor in the Arabian Gulf. *Tennessee Research and Creative Exchange*.
4. Jain, P. C. (2019). Indian Traders in the Gulf: A Historical Perspective. *The Diplomat*.
5. Kapiszewski, A. (2006). Arab Versus Asian Migrant Workers in the GCC Countries. *United Nations Expert Group Meeting on International Migration and Development in the Arab Region*.
6. Lorimer, J. G. (1908). *Gazetteer of the Persian Gulf*.
7. Pillalamarri, A. (2016). India and the Persian Gulf States Share a Long History. *The Diplomat*.
8. Shah, N. M. (2013). Labour Migration from Asian to GCC Countries: Trends, Patterns and Policies. *Middle East Law and Governance*, 5(1-2), 36-70.
9. Storbeck, D. (2011). Indian Labour Migration to the Arab Gulf States: The Impact of a Growing Interdependence. *Internationales Asienforum*, 42(1-2), 45-70.
10. Thiollet, H. (2011). Migration as Diplomacy: Labor Migrants, Refugees, and Arab Regional Politics in the Oil-Rich Countries. *International Labor and Working-Class History*, 79(1), 103-121.
11. Vora, N. (2013). *Impossible Citizens: Dubai's Indian Diaspora*. Duke University Press.
12. Zachariah, K. C., & Rajan, S. I. (2004). Indian Workers in the UAE: Employment, Wages, and Working Conditions. *Economic and Political Weekly*, 39(22), 2227-2234.
13. Allday, L. (2014, August 13). The British In The Gulf: An Overview. *Qatar Digital Library*.
14. Embassy of India, Riyadh, Saudi Arabia https://www.coiriyadh.gov.in
15. Ahmad. T, (2021), India-Gulf ties over the next decade: Navigating Frontier areas for Cooperation, Observer Research Foundation.
16. Pradhan. K. P, (2014), India's Relationship with the Gulf Cooperation Council: Need to Look Beyond Business, ISBN: 978-93-82169-38-3.
17. Pethiyagoda. K, (2017), India-GCC Relations: Delhi's Strategic Opportunity, Brookings Doha Centre Analysis Paper.
18. Duamar. Muddassin, (2023), India's Gulf Policy: From Non- Alignment to Multi-Alignment, Published online by Cambridge University
19. Ashwarya. Sujata, (2023), India's National Role conception on relationship with GCC Countries under Modi: focus on Saudi-Arabia, Journal of Asian and African Studies.
20. Government of India ministry of commerce and industry.
21. commerce.gov.in
22. dgft.gov.in/cp/
23. commerce.gov.in
24. www.dgft.gov.in
25. https://www.mea.gov.in
26. https://www.ilo.org
27. https://www.hrw.org
28. https://www.ituc-csi-org
29. https://www.un.org
30. https://www.mei.edu
31. https://www.mea.gov.in/population-of-overseas-indians.htm
32. https://www.mea.gov.in/population-of-overseas-indians.htm
33. https://www.britannica.com/topic/Gulf-Cooperation-Council

☙★❧

गढ़पुरा का नमक सत्याग्रह एवं श्री बाबू का प्रतिरोध

संतोष कुमार*

सारांश :– भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में सन् 1930 ई0 का नमक सत्याग्रह मील का पत्थर है। राष्ट्रीय स्तर पर गांधीजी के नेतृत्व में आयोजित इस सत्याग्रह का नेतृत्व बिहार में डॉ. श्रीकृष्ण सिंह के कंधों पर था। गांधीजी के प्रति अटूट निष्ठा, राष्ट्र प्रेम, कुशल नेतृत्व क्षमता, अदम्य साहस, ओजस्वी वाणी व सर्वस्व न्योछावर करने की दृढ़ इच्छा शक्ति ने उन्हें शीघ्र ही बिहार का अग्रणी नेता बना दिया। अस्वस्थ होने के बावजूद गढ़पुरा के नमक सत्याग्रह का सफल नेतृत्व करने के कारण ही गांधीजी ने उन्हें 'बिहार के प्रथम सत्याग्रही' की उपमा से अलंकृत किया। अंततः गढ़पुरा अपने सफल सत्याग्रह के कारण 'बिहार का दांडी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मुख्य शब्द :– नमक सत्याग्रह, गढ़पुरा, श्रीकृष्ण सिंह, गांधीजी, स्वयंसेवक, कांग्रेस, ब्रिटिश हुकूमत आदि।

भूमिका – 'श्री बाबू' एवं 'बिहार केसरी' के उपनाम से विख्यात डॉ0 श्री कृष्ण सिंह बिहार में हुए स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रमुख हस्ताक्षर थे। असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन से भारत छोड़ो आंदोलन तक में उनका संघर्ष, समर्पण, निष्ठा व त्याग उल्लेखीनय रहा है। मुंगेर के डॉ0 श्रीकृष्ण सिंह जिन्होंने न केवल बिहार को एक प्रमुख कांग्रेसी प्रांत बनाने में योगदान दिया बल्कि बिहारियों की पूरी की पूरी पीढ़ी को राजनीतिक रूप से जागृत करने, देशभक्त व क्रान्तिकारी बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कुमार कालिका प्रसाद सिंह ने लिखा हैः "I dare say again" " That is rousing and inspiring a whole generation of Biharis into Political conciousness and making Bihar a leading Congress Province Babu Shri Krishna Sinha's oratory has had the largest share and credit." [1]

श्रीकृष्ण सिंह के व्यक्तित्व पर इनके पिता का प्रभाव था। इनके पिता उदार व धार्मिक प्रवृत्ति के थे। श्रीकृष्ण सिंह के व्यक्तिगत, सार्वजनिक व राजनीतिक जीवन पर धर्म का प्रभाव बचपन से ही व्याप्त हो गया था। मुंगेर के जिला स्कूल में वे जब कक्षा नौंवी के छात्र थे तो स्कूल के एक बंगाली शिक्षक के विचारों से प्रभावित होकर एक दिन अपने एक हाथ में गीता तथा दूसरे हाथ में कृपाण लेकर मुंगेर के प्रसिद्ध कष्टहरणी घाट पर गंगा नदी में छाती भर पानी में प्रवेश कर यह प्रतिज्ञा ली कि वे ब्रिटिश सरकार को हटाकर ही दम लेंगे।[2] उनकी यह प्रतिज्ञा देश के आजाद होने तक बनी रही। मैट्रिक की परीक्षा 1890 में उत्तीर्ण करने के पश्चात् उच्च शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से पटना कॉलेज पटना में वे गंगा तट पर स्थित मिंटो हॉस्टल के कमरा सं0–4 में रहते थे। इस समय एक अनोखी घटना घटी। ब्रिटेन के राजा किंग जार्ज का पटना में आगमन हुआ। पूरे शहर को राजा के स्वागत में दुल्हन की तरह सजाया गया। वे गंगा तट पर बने बैराज के उद्घाटन के लिए आए हुए थे। सभी नगरवासी इस शानदार कार्यक्रम को देखने के लिए उत्सुक थे। इस उत्सव को देखने के लिए जन सैलाब गंगा तट पर उमड़ा पड़ा। परंतु देश प्रेम की उत्कट भावना से ओत–प्रोत युवा श्रीकृष्ण सिंह ने अपने कमरे की गंगा तट पर खुलने वाली खिड़की को बंद कर दिया और शोर से भरे इस तमाशे को देखने से इंकार कर दिया। शायद वे चुपचाप अपने उस गुप्त प्रतिज्ञा को याद कर रहे थे जो शायद उन्होंने वर्षों कष्टहरणी घाट पर लिया था। इस प्रकार वे एक विशिष्ट प्रतीकात्मक विरोध के गवाह बने।[3]

मुख्य प्रतिपाध :– श्रीकृष्ण सिंह अपने पढ़ाई पूरी करने के पश्चात् 1915 में मुंगेर पहुंचे। मुंगेर न्यायालय में एक वकील के रूप में प्रैक्टिस शुरू की और कुछ ही दिनों में वकालत की दुनिया में अपना नाम रोशन कर लिया। वर्ष 1916 श्रीकृष्ण के लिए दैवीय संयोग को लेकर आया। उन्होंने पहली बार बनारस के सेंट्रल हिन्दू कॉलेज में गांधीजी को देखा। गांधीजी के प्रभावशाली भाषण से मुंगेर के इस नौजवान वकील ने अच्छी तरह

***असिस्टेंट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष इतिहास विभाग, आर0 डी0 एण्ड डी0 जे0 कॉलेज, मुंगेर, बिहार।**

से समझ लिया कि आजादी के संघर्ष के महानायक गांधीजी ही है। वे गांधीजी से आध्यात्मिक जुड़ाव महसूस करने लग। दिसम्बर 1920 में गांधीजी मुंगेर आए और शाह मोहम्मद जुबैर के निवास पर ठहरे। यहीं पर श्रीकृष्ण सिंह की मुलाकात गांधीजी से हुई और वे सदा के लिए गांधीजी के अनुयायी हो गए।[4]

साइमन कमीशन की असफलता, नेहरू रिपोर्ट की अस्वीकार्यता व कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन आदि घटनाएं तेजी से देश की राजनीतिक परिदृश्य को बदल रही थी। 15 जनवरी 1930 को कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक अहमदाबाद में हुई। इसमें 'पूर्ण स्वराज' के लिए सविनय अवज्ञा आंदोलन का निर्णय लिया गया था।[5] इसके लिए महात्मा गांधी व अन्य को आंदोलन का नेता बनाया गया। महात्मा गांधी ने नमक के एकाधिकार पर ब्रिटिश शासन को चुनौती दी। गांधीजी के अनुसार नमक एक ऐसी वस्तु थी जिसकी आवश्यकता अमीर से गरीब तक को थी और इसपर कर लगाना अमानवीयता है और इस नमक पर कर पॉच आना वार्षिक थी जो एक गरीब आदमी के तीन दिनों की आय थी।[6] गांधीजी ने कहा कि जैसे हवा, धूप और पानी पर कर नहीं लगाया जा सकता वैसे ही नमक पर भी कर नहीं लगाया जा सकता। ये प्रकृति की देन है।[7] गांधीजी ने 2 मार्च 1930 को वाइसराय लार्ड इर्विन के नाम से एक पत्र भेजा जिसमें नमक सत्याग्रह शुरू करने की घोषणा की गई थी और इसके कारण भी बताए गए थे। 12 मार्च 1930 को प्रातः छह बजे गांधीजी अपने चुने हुए 78 सत्याग्राहियों के साथ साबरमती आश्रम अहमदाबाद से 200 मील दूर समुद्र तट पर स्थित दांडी नामक स्थान की ओर चल पड़े और 24 दिनों की यात्रा के पश्चात् 5 अप्रैल को समुद्र में स्नान किया और वापस आकर नमक का एक ढ़ेला उठाया और कानून भंग किया।[8] इस समाचार से पूरे देश में बिजली–सी दौड़ गई। पूरे देश में नमक कानून भंग किया जाने लगा। कई मास तक भारत में असाधारण स्थिति बनी रही। नमक सत्याग्रह की धमक बिहार आ पहुंची। बिहार के लोगों ने इसका समर्थन किया। बिहार चारों ओर से जमीन से घिरा राज्य था। यहां नमक बनाना अत्यंत कठिन कार्य थ। परंतु यहां भी नमक कर के विरोध में लोगों को संगठित कर आंदोलन चलाया गया। बिहार में नमक सत्याग्रह की शुरूआत 15 अप्रैल 1930 को सारण व चंपारण जिलों में हुई। पटना में यह आंदोलन 16 अप्रैल को हुआ।[9]

मुंगेर में डॉ0 श्रीकृष्ण सिंह एवं शाह मो0 जुबैर के नेतृत्व में कांग्रेस की गतिविधियां तेजी से फैलने लगी। डॉ0 श्रीकृष्ण सिंह ने कौंसिल जाना बंद कर दयिा। अपने सहयोगियों कार्यकर्त्ताओं एवं नेताओं के साथ गांव–गांव घूमकर लोगों को नमक कानून उल्लंघन करने के लिए तैयार कर लिया। गांधीजी के आहवान् पर मुंगेर कांग्रेस की एक बैठक डॉ0 श्रीकृष्ण सिंह की अध्यक्षता में हुई। बैठक बुलाने का मुख्य उद्देश्य था नमक कानून तोड़ने के लिए कार्यस्थल (स्थान) का चयन करना। इस बैठक में गढ़पुरा निवासी बिंदेश्वरी बाबू ने एक स्वर से खचाखच भरे हॉल में गढ़पुरा का नाम प्रस्तावित किया। अंततः इस प्रस्ताव को मान लिया गया। दूसरा स्थान सदर सब डिवीजन में चौकी ग्राम को चुना गया।[10] कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए स्वयंसेवकों की दो टोली बनाई गई जो क्रमशः श्रीकृष्ण सिंह व श्री नंद किशोर सिन्हा के नेतृत्व में गठित की गई थी।

नमक सत्याग्रह आंदोलन के समय डॉ0 श्रीकृष्ण सिंह का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। फिर भी संकल्प के धनी श्रीकृष्ण सिंह ने गोगरी के ग्यारह प्रमुख सत्याग्रहियों के साथ 17 अप्रैल 1930 को गढ़पुरा के लिए प्रस्थान किया। सत्याग्रह में भाग लेने वाले विभिन्न सत्याग्रहियों के जत्थे को 'गांधी जत्था', 'तिलक जत्था', 'राजेन्द्र जत्था', 'नेहरू जत्था' में बांट दिया गया था। सत्याग्रहियों से उन बातों को याद दिलाया गया जिसमें गांधीजी ने सत्याग्रहियों से कहा था ''जब पुलिस आपके हाथ से नमक छीनने आए तो आप उसे न छोड़ें। जबतक अपनी कलाईयां नहीं टूट जाती तब तक अपनी मुठि्टयां जरा भी ढ़ीली न पड़ने दें। यदि आपके मन में सत्याग्रह के प्रति श्रद्धा होगी तो आपकी मुटि्ठयां वज्र बन जाएगी।[11] आंदोलन के कार्यों में प्रमुख रूप से नमक कानून को तोड़ना, नमक बनाना, शराब, अफीम आदि की दुकानों पर धरना देना, कर नहीं देना आदि थे। प्रस्थान के पूर्व डॉ0 श्रीकृष्ण सिंह ने तत्कालीन जिला कलेक्टर ली साहब को पत्र लिखकर सूचना दिया था कि ''हम सत्याग्रही महात्मा गांधी के आदेशानुसार 21 अप्रैल 1930 को बिना टैक्स के नमक बनायेंगे। इस पर ली साहब ने जबाव दिया कि यह आपकी मर्जी है कि आपलोग गांधीजी के

आदेश के मुताबिक काम करते हैं और हम ब्रिटिश सरकार के नौकर है हमकों जो आदेश सरकार देगी हम करेंगे।''[12]

डॉ0 श्रीकृष्ण सिंह ने मुंगेर के ऐतिहासिक कष्टहरणी घाट से नाव द्वारा प्रस्थान करने का निर्णय लिया था। 17 अप्रैल 1930 को कष्टहरणी घाट के गंगा तट पर हजारों लोग उनकी विदाई के लिए गंगा तट पर मौजूद थे। मुंगेर के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता शाह मोहम्मद जुबैर, कुमार कालिका प्रसाद सिन्हा और अन्य लोग भावुक होकर रो रहे थे। मुंगेर से गढ़पुरा की दूरी लगभग 22 मील की थी। गंगा पार कर बेगुसराय से गढ़पुरा तक की पैदल यात्रा के दौरान डॉ0 श्रीकृष्ण सिंह का जत्था जिन–जिन गांवों के पास से गुजरा, स्थानीय नागरिकों ने दिल खोलकर स्वागत किया। सभी सत्याग्रहियों को फूलों की माला व माथे पर चंदन का टीका लगाकर स्वागत किया जाता था। 22 मील की दूरी व चार दिनों की सत्याग्रह पदयात्रा के क्रम में गोगरी , जमालपुर, परबत्ता, मंझौल होते हुए 20 अप्रैल, 1930 की शाम श्रीकृष्ण सिंह गढ़पुरा पहुंचे। ग्यारह सदस्य साथियों में गोगरी जमालपुर के सुरेश मिश्रा और मुरली मिश्र, सिकरौली के ब्रह्मदेव शर्मा, कमलेश्वरी सिंह, मंझौल के रामकिशोर सिंह, गढ़पुरा के महावीर बाबू, बिन्देश्वरी बाबू, बनारसी प्रसाद सिंह, दामोदर प्रसाद सिंह जैसे अनेक युवा कर्मठ सत्याग्रही थे। गढ़पुरा के लोगों ने दिल खोलकर सत्याग्रहियों का अभिनन्दन किया। इस दौरान पुलिस–प्रशासन मुस्तैद रही। गुप्तचरों का जाल बिछ गया। इस सत्याग्रह में हजारों लोगों की भीड़ बच्चे, नौजवान व बूढ़े सभी शामिल थे। 21 अप्रैल 1930 को प्रातःकाल का समय जब गढ़पुरा में डॉ0 श्रीकृष्ण सिंह ने सत्याग्रहियों एवं कार्यकर्त्ताओं की एक मीटिंग बुलाई। गाँव के लोगों ने सत्याग्रहियों को हर तरह से मदद देने का आश्वासन दिया। मुंगेर से श्री बाबू सिर्फ सत्याग्रहियों के साथ रवाना हुए थे। लेकिन रास्ते में विभिन्न गांवों के लोग उनके जत्थे में जुड़ते चले गए। सभी लोग एक सम्मोहन में बंधे हुए थे। सभी संकल्पित थे गांधीजी के आहवान् का तथा श्रीकृष्ण सिंह के साध्य को पूर्ण करने का गढ़पुरा में स्वयंसेवकों की संख्या 3–4 हजार तक पहुंच गई थी। यहां यह उल्लेखनीय है कि जनता का व्यापक समर्थन श्रीकृष्ण सिंह द्वारा चलाए इस नमक सत्याग्रह को मिला।

मुंगेर के कलक्टर ली साहब ने नमक सत्याग्रह को असफल बनाने के लिए सारे हथकंडे अपनाए। प्रशासन–पुलिस जगह–जगह लोगों को डरा रही थी। नमक आंदोलन में भाग लेने वालों को जेल का डर दिखाया जा रहा था। उन दिनों बेगूसराय सबडिविजन में चार थाने थे। सारे थाने के थानेदारों और पुलिस इंस्पेक्टर तथा एस0 पी0 को बुलाया तथा आदेश दिया कि थाने के सभी सिपाहियों , चौकीदारों तथा दफादारों को पहले ही गढ़पुरा बुला लिया जाय। सत्याग्रह के दो दिन पूर्व ही 50 मिलिट्री के जवान गढ़पुरा पहुंच गए थे।[13] गढ़पुरा के लोगों ने यह पहले ही निर्णय ले लिया था कि अंग्रेजी हुक्मरानों के गुर्गो को किसी तरह की खुशामद नहीं की जाएगी। 22 मील की लंबी दूरी, अस्वस्थ तन तथा पैर में पड़े छाले की परवाह न करते हुए इस युवा वकील ने सत्याग्रह स्थल 'दुर्गागद्दी' पहुंच गए। वहां इस समय करीब 50–60 हजार लोगों की भीड़ जमा हो गई थी, लोगों में एक अजीब सी उत्तेजना, अनजान सा डर व्याप्त था, लोग श्रीकृष्ण सिंह की वीरता, साहस, समर्पण को देखने के लिए आतुर थे। आखिर वह पल आ ही गया जब श्रीबाबू ने तिरंगा को फहरा कर लोगों को आहवान् किया कि गांधीजी के बताए रास्ते पर चलकर हमें देश को आजादी दिलानी है। हम सत्य अहिंसा के पुजारी है। हमें मारा जाए या जेलों में डाल दिया जाए या खौलते कड़ाह में डाल दिया जाए। हमलोग हिंसा का रास्ता नहीं अपनाएंगे।[14]

इस आहवान् के बाद नोनिया मिट्टी से नमक बनाने का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। यह घटना स्वाधीनता की लड़ाई का अहम पड़ाव था। जैसे ही लोहे के बड़े–बड़े कड़ाह में नोनिया मिट्टी एवं उसमें पानी मिलाकर चूल्हा जलाया गया। वैसे ही सी0 आई0डी0 ने आला अधिकारियों को इसकी सूचना दी कि नमक बनाने का कार्य आरंभ हो चुका है। इसके बाद बेगूसराय के एस0 डी0 ओ0 अय्यर साहब दल बल के साथ सत्याग्रह स्थल पर आ धमके और चेतावनी के लहजे में ही श्रीकृष्ण सिंह से कहा कि नमक बनाने का लाइसेंस दिखाइए। डॉ0 श्रीकृष्ण सिंह ने जबाव दिया कि कौन–सी चीज का लाइसेंस मांग रहे हैं? अय्यर साहब ने कहा तो आप नमक बना रहे हैं, उसका लाइसेंस कलक्टर साहब से लेना पड़ता है। डॉ0 कृष्ण सिंह ने बड़ी निडरता से कहा कि इसके लिए अब कलक्टर साहब से लाइसेंस लेने की जरूरत नहीं है। तब

अय्यर साहब ने ए0एस0पी0 को आदेश दिया कि नमक बनाना अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ हैं बल प्रयोग करते हुए चूल्हा चौकी तोड़ दीजिए। ए0एस0पी0 ने तुरंत अपने जवानों को आदेश दिया कि स्वयंसेवकों को हटाकर लाठी के सहारे सारे चूल्हा चौकी तोड़ दो।[15]

स्वयंसेवकों का जत्था जो नमक बनाने के काम में जुटा था। तुरंत एक–दूसरे का हाथ पकड़कर कड़ाह को घेरे में ले लिया। अंग्रेजी सिपाही भी अपनी ताकत से सत्याग्रहियों को खींच रहे थे। पुलिस ने न केवल नमक बनाने के बर्त्तन और सामग्री छीन ली बल्कि स्वयंसेवकों पर भीषण लाठी चार्ज किया। गोगरी के सत्याग्रही श्री मुरलीधर झा के शरीर के कुछ हिस्से उस समय जल गए। जब वे नमक के बर्त्तनों को पुलिस द्वारा जब्त किये जाने से रोकने की कोशिश कर रहे थे। उनका पूरा चेहरा जल गया। नमक कानून तोड़ने की गतिविधियां 20 अप्रैल को तय तिथि से शुरू हुई और दो–तीन दिनों तक पुलिस के कड़े प्रतिरोध के बावजूद जारी रही। गढ़पुरा के नमक सत्याग्रह में गोगरी थाने के नेता श्री सुरेशचंद, मिश्रा की माँ भी शामिल थी जो श्रीकृष्ण सिंह के नेतृत्व में चले नमक आंदोलन में महिलाओं की भागीदारी का प्रमाण है।[16] स्वयंसेवक के कड़ाह में गिरने और उलटने के कारण कई स्वयंसेवक जल गए। यह दृश्य वास्तव में नाटकीय हो गया। पुलिस ने उबलते हुए बर्त्तनों को चूल्हे से ढकेलना शुरू किया। आगे क्या करना है यह करने में श्रीकृष्ण सिंह को केवल एक सेकेंड का समय लगा। उन्होंने अचानक अपने हाथों से उबलते हुए बर्त्तन को उठाया और एक सच्चे सत्याग्रही की तरह पुलिस के हमले से बचाने के लिए अपने आगोश में छिपा लिया जैसे एक ममतामयी माँ अपनी नवजात बच्चे की रक्षा करती है। एक अधिकारी ने श्रीकृष्ण सिंह का पैर पकड़ लिया। उन्हें धक्का देकर जमीन पर गिरा दिया और बेरहमी से जमीन पर रगड़ दिया, इस दिल को छू लेने वाले तमाशे को देखकर गढ़पुरा के स्थानीय लोगों में हड़कंप मच गया। लेकिन श्रीबाबू ने लोगों को शांत रहने और कोई हलचल नहीं पैदा करने के लिए कहा, श्रीबाबू उठकर सत्याग्रहियों का मनोबल ऊँचा करते हुए कहा– ''मुट्ठी टूट जाए पर खुले नहीं।'' [17]

कड़ाह के गिरने और उलटने के क्रम में गर्म शोरे के पानी का छींटा उड़कर डॉ0 श्रीकृष्ण बाबू के शरीर पर पड़ा जिसके कारण उनके शरीर पर कई फोड़े हो गए। छीना–झपटी के क्रम में श्रीबाबू की टोपी कहीं गिरी, चश्मा गिरकर टूट गया। उनकी आंखों में भी चोट आई, कपड़े फट गए। उनके पैर, केहुना तथा हाथ पर फोड़े निकल आए। कपड़े खून, पसीने व मिट्टी से सन गए। तोड़–फोड़ उठा–पटक का ताण्डव घंटे भर चलता रहा। चोट इतनी गंभीर थी कि उन्हें बेगूसराय अस्पताल में भर्त्ती करना पड़ा। इलाज के बाद उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिस उन्हें बेगूसराय से बखरी डाक बंग्ला पर ले गई जहाँ एस0 डी0 ओ0 अय्यर ने मात्र दस मिनट की सुनवाई में उन्हें छह महीने की सजा सुनाकर भागलपुर जेल भेज दिया। श्री बाबू के जेल जाने के बाद भी गढ़पुरा में नमक सत्याग्रह आंदोलन चलता रहा। लगभग तीन सप्ताह तक उत्तरी मुंगेर में नमक निर्माण के लिए गढ़पुरा सबसे महत्वपूर्ण केन्द्र बना रहा। गढ़पुरा के लोगों ने अंग्रेजों के अत्याचारों से दुःखी होकर गुप्त रूप से ईश्वर से प्रार्थना की कि ऐसी अधर्मी, क्रूर सरकार जल्द ही समाप्त हो।[18] श्रीकृष्ण सिंह एवं इनके सहयोगियों की गिरफ्तारी की एवं अंग्रेजों की दमनकारी नीति की पूरे बिहार में निंदा हुई। श्रीकृष्ण सिंह को भागलपुर जेल से निकालकार हजारीबाग सेंट्रल जेल भेज दिया गया। हजारीबाग ले जाते समय श्रीकृष्ण सिंह का बाँया हाथ नंद कुमार सिंह के दाहिने हाथ से बंधा था। नाथनगर रेलवे स्टेशन पर लोगों की भारी भीड़ जमा हो गई थी। श्रीकृष्ण सिंह ने नंद कुमार सिंह के साथ बंधे हाथ उठाकर लोगों का अभिवादन स्वीकार करते हुए कहा कि ' इस हथकड़ी की कुंजी उनके देशभक्त साथियों के हाथ में है।'[19] अंग्रेजी सरकार की इस बर्बरतापूर्ण कारवाई पर उस समय के अखबारों में भी कड़ा विरोध हुआ, श्रीकृष्ण सिंह को हथकड़ी पहनाकर जेल भेजने से बिहार एवं उड़ीसा लेजिस्लेटिव कौंसिल में भी काफी हंगामा हुआ, अक्टूबर 1930 में, श्रीकृष्ण सिंह जेल से रिहा हो गए। रिहा होने के बाद श्रीकृष्ण सिंह ने मुंगेर में सविनय अवज्ञा के कार्यक्रमों को पुनः शुरू किया।

निष्कर्ष :– निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि बिहार में श्रीकृष्ण सिंह के नेतृत्व में चलाया गया नमक सत्याग्रह आंदोलन गांधीजी के अहिंसक विरोध के सिद्धांतों पर आधारित था। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महात्मा गांधी तथा पं0 जवाहरलाल नेहरू ने कई मौकों पर श्री बाबू की प्रशंसा की। वे बिहार में महात्मा

गांधी के प्रमुख सहयोगी के रूप में उभरे। उनके नेतृत्व गुण से प्रभावित होकर महात्मा गांधी ने उन्हें 'बिहार का प्रथम सत्याग्रही' कहा। बिहार में गढ़पुरा (बेगूसराय) भारी जन आंदोलन एवं विप्लव का केन्द्र बन गया था। इसी कारण गढ़पुरा की तुलना 'बिहार के दांडी' से की जाती है।

संदर्भ–सूची :–

1. Prasad, R.C., Sinha A.K., ' Shri Krishna Sinha, A Biography ',N.K. Interprises Assari road Dariyaganj , New Delhi, P-9.
2. प्रसाद रामचन्द्र, 'आधुनिक भारत के निर्माता श्रीकृष्ण सिंह' (1986), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ0–25।
3. प्रसाद, आर0 सी0, सिन्हा, ए0 के0 ' श्रीकृष्ण सिन्हा ए बायोग्राफी', पृ0–13।
4. सिद्धिकी, बेताब, ' मेमार–ए–कौम : शाह मो0 जुबैर', नई आजादी प्रेस, सब्जी बाग, पटना, 1990, पृ0–57।
5. The Indian Annual Register, Jan-Jun, Vol-I 1930, P- 336.
6. नारायण, दिनेश कुमार, 'बिहार में स्वतंत्रता संग्राम के प्रेरक प्रसंग', प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, फरवरी 1987', पृ0–33।
7. वही', पृ0–33।
8. Brown, J.M. ' Gandhi : Prisoner of Hope' Yale University Press, 1991, P- 236-237.
9. हिन्दुस्तान, बेगूसराय, 1 अगस्त 2022।
10. प्रसाद रामचन्द्र पूर्वोवत, पृ0– 56।
11. माचवे, डॉ0 प्रभाकर, 'नमक आंदोलन', प्रकाशन विभाग, मार्च 1990 पृ0– 44।
12. सिंह, पशुपति नाथ ' बिहार केसरी डॉ0 श्रीकृष्ण सिंह स्मृति–कलश', (1987), श्रीकृष्ण ज्ञान मंदिर, छज्जूबाग, पटना पृ0–81।
13. सिंह, पशुपतिनाथ, पूर्वोक्त, पृ0–184।
14. सिंह, पशुपतिनाथ, पूर्वोक्त, पृ0–163।
15. पूर्वोक्त, पृ0 – 186।
16. अम्बष्ठ, जी0 पी0, 'मुंगेर जिला की राजनीतिक प्राप्ति का इतिहास श्री कृष्ण सिंह अभिनंदन ग्रंथ पृ0– 138–139।
17. सिंह, महेन्द्र नारायण, 'बिहार केसरी और नमक सत्याग्रह नरता के अभियान, बिहार इतिहास परिषद, बिहार, पृ0– 59।
18. Prasad, RC, Sinha A.K. ' Shri Krishna Singh A Biography', P-15.
19. प्रसाद, रामचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ0– 58।

अभिनवप्रणववादे सृष्टितत्त्वम्

डॉ. आकांक्षा यादव*

श्रीओङ्कारनाथदेवः तस्य 'ब्रह्मानुसन्धानम्' इति ग्रन्ये प्रतिपादयति यत् जगदिदं शब्दाज् जायते वागेव विश्वा भुवननि यज्ञे वाच इत् सर्वममृतं यज्ञे मर्त्यमिति ऋग्वर्णः। भर्तृहरिणाप्युक्तं "शब्दस्य परिणामोऽयमित्याम्नायविदो विदुः[1] इति। शतपथब्राह्मर्णोऽपि दृश्यते– 'वाचो वा इदं सर्वं प्रभवति।' शब्दोऽयं न प्राकृतः, अपि तु अनाहतः शब्दः; यतो हि अभिनवप्रणववादे ओङ्कार एव जगतः निमित्तमुपादानश्च कारणम्। ब्रह्मानुसन्धाने इत्युक्तं यदादौ केवलं ब्रह्म परप्रणव आसीत्। तस्मादव्यक्त अक्षर अपरप्रणवः, ततः महत्, महतः अहङ्कारः, तस्मादहङ्कारात् पञ्चतन्मात्रम्, ततः भूतसमूहा उत्पद्यन्ते। एतैरावृतः अक्षरः ओङ्कारः। महत्तत्त्वमेव हिरण्यगर्भः पश्यन्ती नाम्नी शब्दावस्या च।[2] साख्यदर्शनस्य सिद्धांन्तं अत्र प्राप्तम्, भेद केवल अव्यक्तस्य विषये अस्ति। सांख्यमते अव्यक्त प्रकृरिति, अत्र तु प्रणव एव।

वेदादिशास्त्रसम्मता सृष्टिः – अद्वैतवेदान्ते व्यवहारभूभावविद्यादशायां सृष्टिरिति स्वीक्रियते। सा च सृष्टिः सकलजीवीयकर्मानुसारेण जीवभोगार्थमिति स्थितैव। परं तु तत्त्वबोधनाय सृष्टिवर्णन परतत्त्वबोधप्रकरणे सर्वत्रीपनिषदि मुमुक्षोः तत्वबोधोपायो भवतीति न तत्र परमतात्पर्य, सृष्टिजानस्य स्वातन्त्रस्य कस्मिन्नपि पुरुषार्थेऽनुपयोगात्। पुरुषार्थोपयोगितया श्रुतिषु कुत्राप्यविहितत्वात्। तत्र परमतात्पर्याभावादेव सृष्टिः श्रुत्तिषु क्वचित् क्रमेण क्वचित् व्युत्पतिक्रमेण, क्वचिदक्रमेण युगपदपि वर्णिता। श्रुतिक्रमेण सर्वत्र क्रमनिर्णये सृष्टिज्ञानस्य नान्यत्फलमस्ति। अतः स्वतन्त्रमोक्षफलबद्–ब्रह्मज्ञानाङ्गतया सृष्टिज्ञानमुपयोगि नर्वेदिति तत्फलेनैव फलवत् परम्परया। अथवा निष्फलमेव स्वार्ये। सृष्टेः परमार्थदशायां मिध्यात्वोत्तया निराकरणात् मिध्यासृष्टेः पुरुषार्थी न सुवच। सृष्टिश्च बेदान्ते ब्रह्मणः स्वरूपेणाप्रच्युतस्यैव सतो विचित्रपरिणामः। स च अयथार्थ इति सूत्रभाष्ये निर्णीतोऽर्थः। अयमेव पञ्चदशीमामत्यादिटीकासु विवर्त इति व्यवहतः।

दृष्टिसमसमया सृष्टिः दृष्टिरेव सृष्टिरिति सिद्धान्तलेशसंग्रहे दर्शिता या सा द्विविधाऽपि नाङ्गीक्रियते भाष्ये कुवाप्यनुक्तेः सृष्टदृष्टिरित्येवैका व्यवहारभूमौ यथायथं स्वीकृता सूत्रेभाष्ये च। वचानुभवमापामरसाधारणी सृष्टदृष्टिरेव बहुसम्मता अबाधिता. यावद् विद्योदय भागिनी, दृष्टिसृष्टट्याङ्गीकारः परं परमहंसानां जीवन्मुक्तानां जातुचिदुचितः। बढ़ानां तु नोचितः अन्यथा यावन्मोक्ष लिङ्गशरीरस्वीकृतिमुत्रे तदापीतेः संसारव्यपदेशात् इतीदं बोधितमेव स्यात्।

परमाणुमूलकस्य जगतः सृष्टिः – क्षुद्रात् महत आरम्भ इति दृष्ट्वा परमाणुरेव प्राथमिकस्य कार्यस्य नियतमुपादानं कारणमेवं मन्यन्ते काणादगौतमाः। तेषां मते द्वौ परमाणू परस्परसंयोजनेन प्रायम्येन द्वयणुक इति कार्यमारभते। द्वयणुकोऽयं परमाणोः सावयवं कार्यम्। अथ परमाणोः त्रिषु त्रयणुके उत्पन्ने तत् द्वयणुकाः परस्परसंयोजनेन त्र्यणुक इति महत्–सावयवं कार्यमारभते। कदापि वा द्वयणुकात् चतुरणुकस्य आरम्भो भवति। अनेन क्रमेण गिति–समुद्रादेः सकलसावयवस्य कार्यस्य सृष्टिर्भवति। परमाणोः द्वयणुके उत्पन्ने जाते तस्य परमाणोः रूप–रस–गन्ध–स्पर्शादयः विशेषगुणाः तस्मिन् द्वयणुके सजातीयान् अपरान् रूपरसदीन् विशेषगुणान् रभन्ते। एवं कारणसकलानां गुणा एव स्व–स्वकार्येषु गुणक्रियादीनारभन्ते। यद्यपि कारणस्य सामान्यगुणः कदाचित् तस्य कार्य विजातीयगुणमारभते, तथापि कारणस्य विशेषगुण न कदापि तस्य कार्ये विजातीयगुणमारभते। यदि स्यादेतत् तर्हि नीलकपालात् पीतघटस्य रक्तसूत्राच्च पीतपटस्यारम्भो भवेत्। व्यवहारदशायान्तु एतन्त्र दृश्यन्ते। अतः कारणस्य विशेषगुणाः कार्येषु समान–जातीयान् विशेषगुणान्तरान् आरभन्ते इति न्यायवैशेषिकाः।[3]

सृष्टिविषये मीमांसकमतिः – चतुर्विधेभ्यः परमाणुभ्यः द्वयणुकादिक्रमेण स्थूलस्य जगतः यः आरम्भो भवति तं प्रतिवादिनां मीमांसकानामेतद् वक्तव्ये यत् यदि कदापि एतच्चतुर्विधपरमाणून् विना किमपि कार्यद्रव्यं न वर्तते,

---

***प्रवक्ता, एकलव्य आदर्श आवासीय विद्यालय, बीजापुर–छतीसगढ़।**

तर्हि कस्मिन्नपि काले तच्चतुर्विधपरमाणूनां परस्परसंयोगेन द्वयणुकादिक्रमेण स्थूलकार्यद्रव्यस्यारम्भो भवेदिति वा। यदि द्वयणुकादिक्रमेण स्थूलस्य कार्यद्रव्यस्यारम्भो 'भवेत् तदेव परमाणु–कारणवादः प्रतिष्ठितः स्यात्। यदि एतन्न भवेत्तर्हि वादोऽयं न प्रतिष्ठितोऽभविष्यत्। यदि कस्मिंश्चन काले परमाणुयावत् सकलावयवानां विभागः सम्भवेद् अपि च कार्यवर्गस्य नाशो भवेत् तर्हि तदा केवलं परमाणुसमूहाः स्थातुं समर्थाः भवेयुः। ते च द्वयणुकादिक्रमेण कार्यवर्गस्य आरम्भकाः भवितुं शक्नुवन्ति। तत्तु न सम्भवति। जगति कतिपयानां वस्तूनामवयवसमूहविभागात् तस्यावयवसकलस्य उपादानभूताः परमाणुसमूहाः परस्परं पृथक् भूताः भवन्ति।

उपनिषदि सृष्टितत्त्वम् – विज्ञानसम्मतं खलु उपनिषदि वेदान्तदर्शने च वर्णितं सृष्टितत्त्वम्। प्रकृतेः सर्वप्रथमं महत्तत्त्वमभिव्यक्तमिति सांख्याः। शङ्कराचार्येणापि महत्–तत्त्वमिदं स्वीक्रियते। अपि तु सः ब्रह्मसूत्रभाष्ये सांख्योक्तं महत्तत्त्वमवैदिकमिति आपत्तिमुत्थापयति। तस्य मूलमेतत् यत् सांख्योक्तं महत्तत्त्वं पुरुषचैतन्यात् स्वतन्त्रे स्वाधीनं वस्तु वा। शङ्कराचार्यमते तु महत्तत्वं ब्रह्मणः स्वतन्त्रे स्वाधीनं च न भवितुमर्हति। अस्मात् स्वाधीनताहेतुत्वादेव सांख्योक्तप्रकृतिमहत्तत्त्वादिशब्दग्रहणे शङ्करस्यापत्तिरिति। अतस्तेन महानात्मा इति उच्यते। इदं तु प्राणः हिरण्यगर्भो वेति तस्य मतम्। श्रुतावपि अस्य प्राणस्य हिरण्यगर्भस्य वा उल्लेखः वर्तते। यथा– 'अन्नात् प्राणः', 'एतस्मात् जायते प्राणः।[4] 'स प्राणमसृजत्', 'प्राणाख्ये प्रथमजम्' इत्यादयः। अयं प्राणः हिरण्यगर्भो वा अव्यक्तशक्तेः प्रथमो विकासः। कठोपनिषद्भाष्ये तेनोक्तम् 'अव्यक्ताद् यत् प्रथमं जातं हिरण्यगर्भतत्त्वं बोधाबोधात्मकं महानात्मा'।[5] मुण्डकोपनिषद्भाष्येऽपि स बीजाङ्कुरदृष्टान्तवदेतत् समश्यते।[6] ऐतरेयोपनिषदः[7] शाङ्करभाष्ये जगतः बीजस्वरूपिणी–अव्यक्तशक्तेः प्रवर्तकं अयं बुद्ध्यात्मा (महदात्मा) इत्यभिधीयते।[8] श्रुतावपि नानास्थले हिरण्यगर्भः सूत्रम् इति शब्देन निर्दिष्टः। सूत्रमिदं वायुरिति परिचितः। अतः समेन अर्थेन प्राणः, सूत्रम्, वायुश्च श्रुतावुक्ताः।[9] श्रुतिकथितः वायुरयं न च स्थूलः वायुः यतः श्रुतौ प्राणबोधकः एव वायुशब्दः। बृहदारण्यकोपनिषदि वायोरस्य अमूर्तता सूक्ष्मता वा वयं पश्यामः। छान्दोग्योपनिषदः संवर्गविद्यायामेतदुक्तं यत् अग्निः वायुः सूर्यः प्रभृतयः पदार्थाः वायोरभिव्यक्ताः अन्ते च इमे सर्वे वायौ लीयन्ते। आनन्दगिरिरपि एतत् समर्थयति।[10] अत एव अव्यक्तशक्तिः सर्वप्रथमे हिरण्यगर्भरूपेण सूत्ररूपेण वायुरूपेण अभिव्यक्ता। तैत्तिरीयभाष्येऽपि उक्तं यत् सूर्यचन्द्रादयः आधिदैविकाः पदार्थाः वायौ प्रलीयन्ते। वायुना ब्रह्मसर्वविधानां पदार्थानां संहर्ता। "परिम्रियन्तेऽस्मिन् देवा इति परिमरो वायुः। वायुराकाशेनानना इति आकाशं वाय्वात्मानमुपासीत्'।[11] व्याप्तः' ऐतरेयारण्यकभाष्ये शङ्कराचार्येण 'प्रसिद्ध आकाशः प्राणेन 'अस्मिन्नाकाशे प्राण उप्तः' इत्यादयः कथितम्।[12]

सृष्टिविषये पुराणप्रसङ्गः – पुराणेषु सृष्टिप्रकरणमतिगहनं विद्यते। सर्गाविर्भावरहस्यज्ञानान्तरमेव दृश्यरहस्यज्ञानं भवितुमर्हति। सृष्टिस्तावच्चतुर्विधा भवति– १. प्राकृतिकी सृष्टिः, २. ब्राह्मी सृष्टिः, ३. मानसी सृष्टिः, ४. मैथुनी सृष्टिरिति। तत्र सर्वप्रथमं ब्रह्मप्रकृतौ अव्यक्तावस्थातो व्यक्तावस्थामधिगतायां सृष्ट्यामनन्तकोटिब्रह्माण्डव्यापकस्य ब्रह्मण ईक्षणातो या सृष्टिः प्रादुर्भवति, सा प्राकृतिकी प्रथमा सृष्टिरित्यभिधीयते, यतो हि सा प्रकृत्या स्वभावेनैव भवति। तदनन्तरं ब्रह्माविष्णुमहेशात्मकस्य मूर्तित्रयस्याविर्भावो भवति। इमे त्रय एव प्रतिब्रह्माण्डं सगुणा ब्रह्मणः प्रतिनिधयः ईश्वरा उच्यन्ते। तत्र ब्रह्मणः सकाशाद् द्वितीया ब्राह्मी सृष्टिरुत्पद्यते। ततो ब्रह्मणो मानसपुत्रैः प्रजापतिभिर्देवदानवमानवादीनां विस्तीर्णा तृतीया मानसी सृष्टिरुच्यते। तदनन्तरं उद्भिज्जस्वेदजाण्डजजरायुजमानवेषु स्त्रीपुरुषसंयोगजन्या चतुर्थी मैथुनी सृष्टिरुत्पद्यते। तत्र ब्राह्या मानस्याश्च सृष्टेः रहस्यमन्तर्दृष्टयो योगिन एवानुभवन्ति, न साधारणजनास्तद्रहस्यमवगन्तु पारयन्ति। ब्राह्मां मानस्याञ्च सृष्टावेव वेदाविर्भावः पुराणप्राकट्यं भवति। अतो वेदानां पुराणानाञ्च वास्तविकं रहस्यं न साधारणबुद्धिगम्यं भवति।

अभिनवप्रणववादे सृष्टिः – सृष्टिप्रसङ्गे श्रुतिभिर्दृष्टमिति यत् 'ब्रह्म वा इदमग्र आसीत्', 'आत्मा वा इदमेकमग्र 'सदेव आसीत् नान्यत् किञ्चनमिषत्', 'स ईक्षत लोकानुसृजा', सोम्येदमग्रमासीदेकमेवाद्वितीयम्', 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति' इत्यादयः। अत्र श्रुतिनिर्देशो भवति यदादौ जगदिदं ब्रह्मस्वरूपमित्यासीत्। सृष्टेः प्राक् जगदात्मस्वरूपे एव अतिष्ठत्; निमेषादिः क्रियाशील अन्यत् किमपि नासीत्। ततः स आत्मा एवमैक्षत लोकसमूहस्य सृष्टिर्भवेदिति न वा। अनन्तरं स एतांल्लोकान् असृजत्। नामरूपेण प्रकाशात् पूर्वं जगदिदं एकमात्रं सद्वस्तु–ब्रह्मरूपेण अतिष्ठत्। यदा तदैक्षत बहु स्यामिति तदा सृष्टेः प्रथमं स्पन्दनं ध्वनितम्। अत्र

'ईक्षण' पदस्यार्थः चलनमिति। एतदेव प्रथम–शब्दात्मक–स्पन्दनम् ओङ्कारः। अनन्तकालं यावद् विश्वब्रह्माण्डं समाश्रित्य शब्दात्मक–ओङ्कार–स्पन्दनमिदं ध्वनितं भवति। वेदादि–सर्वाणि शास्त्राण्यपि शब्दात्मकाद् ओङ्कारस्पन्दनाज् जातानि।[13] ऋग्वेदसंहितायां समाम्नातः "गौरीर्मियाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी अष्टपदी नवपदी वभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्।।[14]

सृष्टिकाले परमे पदे परमाकाशे प्रतिष्ठिता गौरवर्णा वाग्देवी सलिलतरङ्गत्वद् वर्णं पदं वाक्यम् इत्यादीन् रचयन् शब्दं ससर्ज। प्रथम सा प्रणवरूपेण एकपदी सन् व्योममयस्य पुरुषस्य हृदि आविर्भूताऽभवत्। ततः सा व्याहृतिरूपेण सावित्रीरूपेण च द्विपदी बभूव। अनन्तरं वेदचतुष्टयरूपेण चतुष्पदी, ततः षड्वेदाङ्गरूपेण पुराणरूपेण धर्मशास्त्ररूपेण चाष्टपदी अभवत्। तत्पश्चात् न्याय–सांख्य–योग–पाश्चरात्र–पाशुपत–आयुर्वेद–धनुर्वेद–गन्धर्ववेदरूपैश्च नवपदी सन् आविर्वभूव। ततोऽनन्तवाक् सन्दर्भरूपेण इयं सर्ववर्णमयी सर्वध्वनिमयी सहस्राक्षरा वाग्देवी व्योम्न्रः आविर्भूताऽभवत्। प्रसङ्गत उल्लेखनीयम्–

"कार्यं यत्र विभाव्यते किमपि तत्स्यन्दने सव्यापकम्। स्पन्दञ्चापि तथा जगत् सुविदितः शब्दान्वयी सर्वदा।।
सृष्टिश्चैव तथादिमाकृतिः विशेषस्तदभूत स्पन्दिनी। शब्दश्ञ्चोद्भवत्तथा प्रणव इत्योङ्काररूपः शिवः।।

अर्थात् यत्र किंप्रकारं कर्म साधितं तदा अवश्यमेव स्पन्दने कम्पनं वा भवति। यत्र स्पन्दनं वर्तते, तत्र शब्द अवश्यम्भाविरूपेण वर्तते। अतः सृष्टिरूपे कार्यकाले गुणत्रयाणां साम्यावस्थामयि–प्रकृतिमध्ये यत् प्रथमं स्पन्दनं हिल्लोलध्वनिर्वा उत्थितो भवति, तदेव आर्यसाधने विज्ञाने अपूर्वशिवरूपि–नादाङ्गीभूतस्य बिन्दोः विश्लेषणरूप अ–उ–म इति ओङ्कारः।

दृष्टान्तमुखेन श्रीओङ्कारनाथदेवः सृष्टिप्रक्रियां प्रकाशयति। यथा जलं घनीभूत्वा शैलो भवति तथा केवले प्रणवस्पन्दनाद् आधिभौतिकाः पदार्थाः, आध्यात्मिकाः चक्षुः कर्णादीन्द्रियसमुदायाः आधिदैविकाश्च सूर्यचन्द्रमाग्रहतारकादयः समुत्पन्नाः। तेन प्रणवनादेन सर्वे सञ्जीविताः भवन्ति। अपि चाये प्रणवनादः समग्र ब्रह्माण्ड समाच्छादयति। अयं च शब्दं करोति कारयति च। चतुर्दशकोटि–चतुर्दशलक्ष–सप्ततिसहस्रयोजन परिमितः विस्तारः पाताललोकात् सत्यलोकपर्यन्तम्। चतुर्दशभुवनानां प्रत्यैकस्य परिमाणं पञ्चाशत्कोटियोजनम्। ब्रह्माण्डमेकं क्रमेण दशगुणकं जल–तेजः–वायु–आकाश–अहंतत्त्व–महत्तत्त्व–प्रकृति इत्याकारेण सप्तावरणवेष्टितम्। एवमनन्तकोटिब्रह्माण्डेषु ओङ्कारनादः लीलां करोति। एतस्मिन् अनन्तकोटिब्रह्माण्डे अपरप्रणवः स्पन्दितो भवति। अपि च परप्रणवस्यैकपादे अनन्तकोटिब्रह्माण्डानि वर्तन्ते। अवशिष्टस्य त्रिपादस्य विवरणमविदितम्। परप्रणवस्य अर्थाद् अनुपहितचैतन्यस्य शब्दात्मक–अपरप्रणवस्य अर्थाद् उपहितचैतन्यस्य च समष्टिः महाप्रणव इति उक्तं शास्त्रेषु।[15]

गीतायाः प्रणवप्रेमपीयूषभाष्ये श्रीओङ्कारनाथः ओङ्कारब्रह्मणः जगत्सृष्टिक्रम निरूपयति। तत्रोच्यते एकाद्वितीयादोङ्कारब्रह्मणः अव्यक्त अक्षर ओमिति नादः समुत्पन्नः जातः। ततः महत्स्यन्दनं, महत्तत्त्वादहङ्कारः, अहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राः– शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः। ततः क्षितिः, अप् तेजः, मरुत्, व्योमिति। सात्त्विक–राजसिक–तामसिकभेदेनापि अहङ्कारः त्रिविधः। सात्त्विकादहङ्कारात् मनस इन्द्रियाणाञ्चाधिष्ठातृ–देवताः, राजस–अहङ्काराद्दशेन्द्रियाणि, तामस–अहङ्कारात् सूक्ष्मानि तन्मात्रानि, तस्मात् पञ्चभूतानि, पञ्चीकृत–पञ्चमहाभूताच्चतुर्दश–भुवनात्मकं ब्रह्माण्डम् देव–तिर्यक्–नर–जरायुजाण्डजोद्भिज्न–स्वेदजाः। एवमाकाशाद् वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भयः पृथिवी सञ्जाता। प्रणवस्पन्दनाज् जगतः सृष्टिरियम्। सर्वत्र सा परमा प्रकृतिः प्राणशक्तिरूपेण लीलां करोति।[16] महत्तत्त्वात् पञ्चीकृतपञ्चमहाभूतानि यावत् सर्वमेव प्रणवस्पन्दनादुत्पत्रमिति।

आधिदैविकेषु आधिभौतिकेषु आध्यात्मिकेषु सर्वेषु पदार्थेषु प्रवणस्पन्दने स्थूलतया सूक्ष्मतया चावस्थितम्। सूक्ष्माकाशः ज्योतिश्च नादरूपेण स्थूलायां वृक्षलतायां मानवे सूर्यचन्द्रादिषु चक्षुकर्णादिषु अवतिष्ठेते। मूलं तत्त्वमेकमेव; तदेव ओङ्कारब्रह्म इति श्रीओङ्कारनाथदेवस्य राद्धान्तः। प्रकृतिपरिणामजानि तत्त्वानि बहुविधानि। केचन प्रकृतिः पुरुषञ्च द्विविधमिति मन्यन्ते। अन्ये च त्रिविधमिति चिदचिदीश्वराच। सांख्यमते चतुर्विंशतितत्त्वम् प्रकृतिः, महत्, अहङ्कारः, पञ्चतन्मात्रानि, मनः, श्रोत्रं, त्वक्, चक्षुः, जिह्वा, घ्राणं, वाक्, पाणिः, पादः, पायुः,

उपस्थ चैतानि एकादशेन्द्रियाणि पञ्चभूतानि च। मतान्तरे तु, पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि, पञ्श्चकर्मेन्द्रियाणि, पञ्चप्राणाः, पञ्चतन्मात्रानि, मनः, बुद्धिः, चित्तम्, अहङ्कारश्चेति। ये तत्त्ववादिनः षट्त्रिंशत्तत्त्वं स्वीकुर्वन्ति तेषां मते उपरोक्तेन चतुर्विंशतितत्त्वेन सह पञ्चीकृतानि पञ्चभूतानि, स्थूलशरीरं, सूक्ष्मशरीरं, कारणशरीरं, जाग्रदवस्था, स्वप्नावस्था, सुषुप्यवस्था, प्रकृतिश्च सम्मिलिताः। षण्णवतित्तत्त्ववादिनस्तु उपरोक्तेन षट्त्रिंशत्तत्त्वेन सह षड्भावविकाराः, अशना पिपासा शोकः मोहः जरा मृत्युः इमाः षडूर्मिः, त्वक्, शोणितः, मांसः, मेदः, मज्जा, अस्थिः एते षट्कोशाः, कामक्रोधलीनमोहमदमात्सर्यादयः परिपवः, विश्चतैजसप्राज्ञाच जीवत्रयं सत्त्वरजस्तम इति गुणत्रयम्, प्राण्थानागतार्जितति कर्मत्रयं, वचनादानगमनविसर्गानन्दा इति कर्मपञ्चकम्, सङ्कल्पः, अध्यवसायः, अभिमानम्, अवधारणम्, मुदिता, करुणा, मैत्री, उपेक्षा, दिक्, वायुः, सूर्यः प्रचेता, अश्चिद्वयम्, अत्रिः इन्द्रः, उपेन्द्रः, मृत्युः, चन्द्रः, ब्रह्मा, रुद्रः, क्षेत्रज्ञः, ईश्चरश्चैतानि तत्त्वानि स्वीकुर्वन्ति। सर्वमेवोङ्कारादुत्पत्रम्। यदा तस्य सीलैषणा जागरिता भवति, तदा अनन्तात्राकारान् धृत्वा एकः सः बहु भूत्वा लीलां करोति अपि च तेनोच्यते अस्य जगतः अस्तित्वं केवलं प्रणवस्पन्दनोपरि निर्भरशीलम्।

जीवोऽपि तस्माद् महाकाशाद् ओङ्काराद् आगच्छति पुनश्च तस्मिन् प्रणवे ओङ्कारे वा प्रलीयते। जगति कियत्काले स्थूलसूक्ष्मादिशरीरं धृत्वा केवले क्रीडति जीवोऽयम्। छान्दोग्यश्रुतावेव दृश्यते– 'सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि आकाशादेव समुत्पद्यन्ते आकाशं प्रत्यस्तं यान्ति आकाश ह एव एभ्यो ज्यायान् आकाशः परायणम्। अत एव श्रेष्ठोऽयमाकाशः। स एव परमाश्रयः। 'आकाशते आकासयति इति वा' व्युत्पत्त्यनुसारेण अयों भवति सम्यरूपेण प्रकाशते सम्यरूपेण वा प्रकाशयतीति।

प्रणवप्रेमपीयूषभाध्ये एतदुक्तं यदाकाशे स्पन्दिते वायौ (प्राणे) वायुना दीप्तो भूत्वा तेजो विकीर्यते। अस्मादेव तेज एव क्रियायाः प्रथमो प्रकाशः। एवम्प्रकारेण शत्तपेशे अर्थात् सूक्ष्मांशे अत्रादांशे प्राणांशः तेजः आलोकाकारेण विकीर्णो भवति। समकाले तस्य कार्याश अर्यादत्रांशः (रयिः सोमो वा) घनीभूतो भवति। अस्य घनीभवनस्य प्रथमावस्था तरलम्, सम्पन्ने अधिकतरे घनीभवने कठिनावस्था सम्प्राप्ता। कठिनावस्थेयं पृथिवी। सृष्टिविषये आसक्तिरहितावस्थेति हेतुत्वात् श्रीभगवान् कर्ता सत्तेऽपि अकर्तेति। श्रीओङ्कारनाथदेवस्य मते प्रकृतिः, पुरुषः, महत्तत्त्वम्, अहंकारः, पञ्चतन्मात्रानि, एकादशेन्द्रियाणि, पञ्चमहाभूतानि, सत्त्वरजस्तम् इति गुणत्रयम् एतानि अष्टाविंशति तत्त्वानि ब्रह्मादिस्थावरान्तकार्यानि यज्ज्ञानेन उपलब्धानि, अपि च तत्त्वसकले परमात्म–तत्त्वानुगतं यज्ज्ञानं तदेव विज्ञानमिति–

"एतदेव हि विज्ञानं न तथैकेन येन यत्।
स्थित्युत्पत्त्यपायान् पश्येद् भावानां त्रिगुणात्मनाम्।।

संन्दर्भ–सुची :–

1. वाक्यपदीयम्, ब्रह्मकाण्ड, 120।
2. ब्रह्मानुसन्धानम्, पृ० –26।
3. रूप–रस–गन्ध – स्पर्श –परिमाण– स्नेह–यत्नाः परत्रारम्भकाः। – प्रशस्तपादभाष्य,पृ० –१२४।
4. मुण्डकोपनिषद 2 /1 / 3।
5. मुण्डकोपनिषद 1 /1 /8।
6. ऐतरेय उपनिषद 5 / 6 पर शाङ्करभाष्य।
7. वहीं।
8. वही
9. माण्डुक्य उपनिषद् 1 /1 / 8 पर आनन्दगिरि टीका।
10. तैतिरीयोपनिषद 3/10 पर शाङ्कर भाय।
11. ऐतरेयोपनिषद् 2/2 पर शाङ्कर भान्य।
12. ब्रह्मसूत्र 1/4/16 शाङ्करभाष्य।
13. ब्रह्मानुसन्धानम्, पृ० –26।
14. ऋग्वेदसंहिता –2/3/12।
15. ब्रह्मानुसन्धानम्, पृ०व–125।
16. गीता, ३/२८ पर प्रणवप्रमेयपीयूषभाष्य।

Cultural Contours and Global Contrasts

A Critical Exploration of Women's Historiography in India and the West

Dr. Pratibha Misra*

Abstract :- Women's historiography exhibits distinct trajectories in India and the West, reflecting divergent cultural ethos, national identities, and scholarly approaches. This article critically analyzes the nature and evolution of women's historiography in India and globally, highlighting key differences. In India, women's historiography appears deeply rooted in cultural traditions, national pride, and identity, contrasting with Western patterns emphasizing feminist movements and gender critiques. Drawing upon works by scholars like Tanika Sirkar, Leela Kasturi, Mrinalini Sinha, Gerda Lerner, Joan Scott, and many others, this analysis underscores the interplay of cultural contexts, colonial legacies, and academic discourses shaping women's histories.

Introduction :- Historiography concerning women—i.e., the writing and interpretation of women's history—has emerged as an essential field of historical scholarship. Women's historiography has emerged as a significant field of study globally, yet its contours and emphases vary markedly across cultural and geographical contexts. In India, the narration of women's histories is intertwined with cultural ethos, national identity, and pride (Chakravarti, 1998), differing from Western trajectories often characterized by feminist critiques and gendered power analyses (Lerner, 1986; Scott, 1986). This article examines major scholarly trends in women's historiography in India from ancient times to the present, and situates the Indian approach alongside Western counterparts to underscore distinct historiographical paradigms.

Women's Historiography Globally: The Western Trajectory- In the West, women's historiography evolved primarily as a feminist corrective to androcentric historical narratives dominated by male concerns. Its genesis is often traced to the late eighteenth century, with Mary Wollstonecraft's seminal 1792 work "A Vindication of the Rights of Woman," advocating women's education and rights . The field expanded significantly in the 1960s-70s, concurrent with the second-wave feminist movement, when historians began to systematically recover women's experiences, contributions, and agency in political, social, economic, and cultural realms.

Western women's historiography emphasizes feminist theoretical frameworks such as gender theory, intersectionality, and postmodern critiques. It interrogates the construction of gender roles and systems of patriarchy, analyzing how women's oppression intertwines with race, class, and sexuality. The discipline also examines how women disrupted, resisted, or negotiated dominant power structures, often focusing on marginalized or subaltern women's voices.

Moreover, Western feminist historiography often challenges colonialist and Eurocentric historical models, emphasizing the need for decolonizing perspectives and acknowledging epistemic violence in the production of knowledge about colonized women . This has led to wide-ranging scholarly debates about universalism versus cultural specificity in feminist history.

Women's Historiography in India: Roots in Cultural Ethos and National Identity- In contrast, women's historiography in India is fundamentally embedded in the country's ancient cultural ethos, religious texts, and nationalist discourses that often imbue women's history with symbolic significance for collective identity and pride. Historical narratives trace women's roles back to the Indus Valley Civilization where archaeological evidence suggests women enjoyed relatively equal status in domestic

*** Associate Professor-Dept. of History, DAV College, Varanasi.**

and productive spheres . Early Vedic texts and epics like the Ramayana and Mahabharata also portray women with agency, including rights to education, political participation, and religious rituals.However, Indian women's historiography also acknowledges the ebb and flow of women's status, with marked declines during later Vedic periods and medieval times. Notably, women's historical narratives are deeply intertwined with the nationalist movement, wherein women were portrayed as bearers of cultural values, honor, and sacrifice for the motherland, reinforcing a collective identity.

The discipline gained momentum in India during the 1970s, notably after the government report "Towards Equality" (1974) exposed persistent gender inequalities post-independence, sparking academic and activist interest in women's studies . Indian feminist historians have adopted Western feminist methodologies selectively but adapted them to the Indian context, focusing on intersectionality concerning caste, class, religion, and ethnicity . They emphasize women's subjectivity, agency, everyday resistance, and participation in nationalist and social reform movements, while also exposing the complex socio-political forces that shaped gender relations.

Evolution and Trends in Indian Women's Historiography

The historiography of women in India has evolved through multiple phases :- Ancient and Classical Histories - Women were often represented in texts like the Vedas as scholars, sages, and participants in rituals, signaling a historical recognition of women's intellectual and spiritual roles . These representations formed a cultural basis for female dignity and power, often symbolized by the concept of "Shakti" (feminine power).

Medieval Period: Histories document increasing patriarchal control with the imposition of restrictions through practices like purdah and child marriage, accompanied by a decline in women's public roles. However, oppositional strands are also recorded, such as women saints and poets in Bhakti traditions who asserted spiritual autonomy.

Colonial and Nationalist Era - Women's experiences became focal points in nationalist narratives, where cultural pride was linked to women's sanctity and sacrifice. Several women leaders emerged as political actors, but traditional gender norms continued to restrain broad-based gender equality. Indian feminist historiography highlighted not only oppression but also women's active engagement in reform movements.

Post-1970s Feminist Scholarship - The contemporary Indian women's historiography has been marked by theoretical sophistication, uncovering women's agency in everyday life and political movements, intersectional analyses combining gender with caste and community identities, and a critical stance toward colonial and nationalist historiographies. Feminist historians attempt to 're-render' Dalit and tribal women's testimonies and recover diverse voices often occluded in mainstream history.

Differences in Nature and Evolution: India vs. the West :- Despite shared concerns, major differences characterize Indian and Western women's historiography with regard to the following aspects -

Foundational Ethos - Indian women historiography is Deeply rooted in cultural heritage, religious ethos, and national identity .Western viewpoint emerged from feminist movements critiquing patriarchy and historical silencing .

Focus- In India, there seems an interplay of gender with caste, religion, and nation; retrieval often linked to cultural pride and collective identity. The west Focuses on gender roles, power dynamics, theorization of patriarchy, race, class, sexuality intersectionality .

Methodologies- Indian scholarship Adapts Western feminist theories selectively, emphasizing intersectionality and lived experiences; combines textual, oral, and archival sources Western scholarship uses feminist, postcolonial, and postmodern theoretical frameworks extensively .

Political Engagement- In Indian context, strong nexus with nationalist and social reform movements can be seen; women's history is also seen through the lense of political activism. In the west, Feminist activism and academic critique go hand in hand; emphasis on marginalized groups and structural critiques .

Periodization and Sources- Emphasis on traditional texts (Vedas, Epics), colonial records, oral histories; ancient roots prioritized in India. West scholarship uses diverse archives, cultural artifacts, and interdisciplinary sources; often excludes religious or nationalist frame.

Narrative Tone- Indian scholarship tends to intertwine with cultural and national pride narratives, sometimes valorizing women as cultural symbols, in sharp contrast with wedrern scholarship, Critical and analytical, often questioning essentialist notions and grand narratives

Conclusion :- Women's historiography in India and the West embodies distinct trajectories shaped by divergent cultural, political, and intellectual contexts. Indian women's historiography is uniquely embedded in historical texts and cultural symbolism, resonating with nationalist identity and pride, while mobilizing feminist perspectives to reveal women's agency and resistance within caste, class, and religious matrices. The Western approach has developed through radical feminist criticism and intersectional analyses targeting deeply entrenched power structures globally.

Together, these plural historiographical traditions enrich global understanding of women's pasts, facilitating nuanced insights into how gender, culture, and politics intertwine to shape historical narratives. Continued dialogue between Indian and Western women's historiographies promises to further deepen feminist scholarship, expanding beyond binaries toward inclusive and multifaceted historical reconstructions.

References :-

1. Altekar, A.S. (1956). _The Position of Women in Hindu Civilization_.
2. Bandyopadhyay, A. (n.d.). Her Story: Notes on Women's History. Indian Research Journal of Humanities and Social Sciences_.
3. Burton, A. (2003). Dwelling in the archive: Women writing house, home, and history in late colonial India. Oxford University Press.
4. Errington, E., & Khilnani, S. (2019). Women's and Gender History in India. European Review of History.
5. Fernandes, L. (2000). India's New Woman: Liberalization, Nationalism, and Gender. Duke University Press.
6. Forbes, G. (1998). Women in modern India. Cambridge University Press.
7. Forbes, G. (2003). Reflections on South Asian women's/gender history: Past and future. Feminist Studies, 29_(3), 531-547.
8. IJNRD. (2023). Historiography of Women's History in India. International Journal of Novel Research and Development, 8_(11).
9. Kasturi, L., & Mazumdar, V. (n.d.). Women and Indian Nationalism.
10. Mani, L. (1998). Contentious traditions: The debate on sati in colonial India_. University of California Press.
11. Preeti. (n.d.). The Role and Analysis of Women from Ancient to Modern Times in India. _Research Trend.
12. Roy, K. (2010). The power of gender and the gender of power: Explorations in early Indian history. Oxford University Press.
13. Sardar, S. (2024). A Historical Review on the Role and Status of Women in India from Ancient Age to the Contemporary Age. _Journal of Research in Humanities and Social Science, 12_(1).
14. Sarkar, T. (2001). _Hindu wife, Hindu nation: Community, religion, and cultural nationalism. Indiana University Press.
15. Scott, J. W. (1986). Gender: A Useful Category of Historical Analysis. _The American Historical Review, 91, 1053-1075. (link unavailable)
16. Sinha, M. (2006). _Specters of Mother India: The Global Restructuring of an Empire. Duke University Press.
17. Wollstonecraft, M. (1792). A Vindication of the Rights of Woman.

Pahadi Baba Cave Architecture and its Mythological Study

Dr. Heera Singh Gond*

Abstract: The region of Anuppur, rich in archaeological and mythological significance, reveals evidence of ancient human settlement through Stone Age tools discovered in places like Rajnagar, Pouradhar, and rock paintings discovered place Janakpur area Murelgarh hill and Ramgarh hills. During the Ramayana era, this area was part of South Kosala, and local legends suggest that Lord Rama, Sita, and Lakshmana spent time in the caves of Khodri Kanwahi and Ramgarh, linking the region to sacred traditions. The area possibly belonged to the ancient Chedi Mahajanapada, with later influences from the Maurya, Shunga, Satavahana, Kushan, and Gupta dynasties. Artefacts such as coins, inscriptions, and pottery found in places like Shivlahara and Dhanpur indicate a historically vibrant region, although large-scale remains are limited. These findings provide a foundation for the historical understanding of the spiritual and cultural presence of "Pahadi Baba" in the area.

History and Geographical Perspective :- Pahadi Baba Cave is located at 23°10'57.33" N latitude and 82°9'26.12" E longitude, situated in the Kotma tehsil of Anuppur district, approximately 6 kilometers southeast of the Bangawan Nagar Parishad. It lies about 100 meters off the Pauradhara 9, 10 road, accessible via a forest checkpoint and a dirt path. The small hillock extends over an area of approximately 300 square meters and is approachable from the left side before climbing to the top. Local priests and devotees have preserved the boundary walls, cave, and idols using cement and paint. The region is rich in natural beauty, with forests, hills, diverse vegetation, tribal communities, and coal minerals in abundance. It forms a part of the Vindhya mountain range, which lies in the eastern part of Baghelkhand, and also has historic ties to the Dakshin Koshal region, as Anuppur borders both Madhya Pradesh and Chhattisgarh. The Deccan Traps' volcanic eruptions formed the basalt rocks spread across eastern Anuppur, Manendragarh, Korea, and Pendra-Gaurela-Marwahi districts, where the Maikal range extends. The plateau is also believed to have originated from the Gondwana rock formations, and it is particularly known for its abundant coal deposits. The climate is generally moderate, but winters are short due to the coal-rich region. Being hilly, forested, and a coal belt, agriculture is nearly negligible. The natural vegetation mainly includes sal (shorea), tendu, pipal, banyan, bael, mango, custard apple, mahua, char, and palash trees. Water is a vital geographical resource, not only for agriculture but also for large-scale industries. However, the drainage system is mainly composed of seasonal streams, including the Kullariya Nala, which flows through Rajnagar and Pauradhara before joining the Hasdeo River in Manendragarh. It forms a waterfall near Bhaitagadh in the dense forests of Narayanpur, Chhattisgarh. Though it has tourist potential, the area is difficult to access. Water has played a central role in the development of human civilization. In Anuppur’s major drainage areas, Stone Age tools and artifacts made by primitive humans have been found in Rajnagar, Pauradhara, Jhiriyatola, Beliya, and similar sites. Marine fossils have also been found in Manendragarh, along with rock paintings in Janakpur area Murelgarh Hill, Dhanpur, and Ramgarh hills.

During the Ramayana era, parts of Anuppur and most of Chhattisgarh were known as Dakshin Koshal. It is believed that Lord Rama, during his exile, passed through this region en route to the Dandakaranya forest. Folk traditions suggest that Sitamarhi Cave (Khondari-Kanwavahi) was a place where Rama, Sita, and Lakshman stayed briefly. They later spent more time in the Ramgarh hills of Surguja, in Sita Bengra and Lakshman Bengra caves. No remains from the 6th century BCE have been found in this area, though it likely formed part of the Chedi Mahajanapada. Remains from the Maurya, Shunga, Satavahana, Kushan, and Gupta periods have been found in Anuppur and its bordering regions.

***Assistant Professor Department of History, “PMCOE” Government Tulsi College Anuppur (M.P.)**

Archaeological findings, such as coins, pottery, and inscriptions, have been discovered in Shivlahara and Darsagar. From Dhanpur, Surguja, and Amarkantak, other historical artifacts have also been recovered. This region likely saw rule from various local dynasties, though unfortunately, not many remains exist. Inscriptions from Budhikhar and Malga mention Panduvanshi rulers of the Maikal range. Copper plate inscriptions mention names like Nagbal, Bharatbal, and Indraraja, and record land donations made to Brahmins. From these inscriptions, it is learned that the Panduvanshi dynasty ruled areas near modern Amarkantak. Notable rulers included Jaybal, his son Vatsaraj, and grandsons Nagbal and Bharatbal. According to copper plate inscriptions from Bamhni (Kotma tehsil), Bharatbal married Lokprakasha, who may have been a princess of the Pandav dynasty of Dakshin Koshal, though some scholars consider her to be from the Amaryakul (Amar dynasty). After Bharatbal, the fate of the Panduvanshi dynasty remains unclear.

Later, the region came under the control of the Kalachuris, who ruled for a long time. Kalachuri-era remains such as Jatajuta Shiva-Parvati statue, Surya statue from Semra and Hari, and other artifacts have been found in and around Anuppur. Subsequently, the area came under the control of the Baghels, Marathas, and eventually the British Empire.The art and architecture of Pahadi Baba appear to be from a later period, likely around the 19th century. There are no significant archaeological remains found here. The tradition of carving natural rock shelters into dwellings and places of worship dates back to prehistoric and protohistoric times. However, those caves were small and natural. This tradition was continued by Dasaratha, son of Emperor Ashoka, who built caves for monks at the Barabar Hills. Over time, such rock-cut caves became a prominent part of Buddhist art.

During the medieval period, different religious traditions flourished, and rulers supported the construction of temples and caves. Local and tribal artists in this region followed this tradition by carving and depicting Vaishnava deities, Ardhanarishvara, Ganesh, Durga, Hanuman and their vahanas, as well as scenes of Lord Ram, Sita, and Lakshman crossing a river. It is believed that the natural caves were later modified by Brahmin monks into residences and temples. These caves have now been protected by boundary walls and remodeled using brick, iron, and cement. Inner structures like sanctums, pillars, and mandapas have been added, causing the original cave features to be obscured.

Cave Architecture and mythology :- The art and architecture of Pahadi Baba seem to belong to the later period, likely constructed around the 19th century. While the region has seen rule by various dynasties, no concrete remains have been found at this site. However, stone tools from the 6th to 12th century CE have been recovered from surrounding areas. The practice of carving natural rock shelters into places of residence and worship dates back to prehistoric and protohistoric times, but those caves were usually small and natural. This tradition continued during the Mauryan period, especially under Dasaratha, son of Ashoka, who built monastic caves at Barabar Hills.

In the spiritual tradition, mountains and caves hold a special place. Since ancient times, saints, sages, yogis, and ascetics have chosen caves for seclusion, meditation, and penance. These caves were not merely places of residence, but sacred spaces for self-realization and divine realization. Many mythical and folk traditions connected with cave architecture are found in our cultural history. Saints and sages lived in these caves, practicing meditation, chanting, and yoga. Their lives were extremely simple, disciplined, and devoted to the welfare of society. Rural communities believed that such saints possessed supernatural powers. People visited them for blessings, guidance, and solutions to life’s difficulties. These caves and hermitages have also been centers for rituals such as worship, communal feasts (bhandaras), fire sacrifices (yajnas), and religious ceremonies. Especially during the festival of Makar Sankranti, grand fairs are organized here, drawing devotees from distant places.

A remarkable aspect of these places was that saints from both Shaiva and Vaishnava traditions lived together in harmony. This coexistence symbolizes the generous spirit of Indian culture, where despite diverse paths of spiritual practice, the ultimate goal is considered to be the realization of God.

Cave No. 1 at Pahadi Baba is a large natural cave measuring approximately 600×400×600 cm. It has been modified using iron, cement, and rods to serve as a residential and devotional space. An iron gate and pillars for roof support have been added for safety.

Cave No. 2: Cave number 2 has been secured by enclosing a natural rock formation with walls. Its approximate dimensions are 160×150×95 cm. inside the cave, Vaishnava deities and their vehicles are intricately carved. Among these carvings, Garuda along with Vishnu and Lakshmi are depicted standing under the hood of a serpent (Nagphana). The walls have been secured with latticework and a gate. Further inside this cave, a small rock-cut cave with dimensions of approximately 95×85×18 cm has been constructed. It houses a statue of Goddess Kali along with imprints of wooden footprints (Padchinh) that have been installed.

Cave No. 3: Cave number 3 is a natural cave located amidst the rocks on a hillside, which has been enclosed with walls and converted into a cave structure. Its dimensions are approximately 270×230×95 cm. This cave depicts deities from both Vaishnava and Shaiva traditions. From the Shaiva tradition, benevolent deity Ganesha along with his vehicle, as well as Ardhanarishvara (a combined form of Shiva and Parvati) with their vehicle Nandi, weapons like the Trishul (trident), and Hanuman are depicted. From the Shakta tradition, Goddess Durga is shown riding a lion and holding her weapons. In the Vaishnava tradition, there is a scene depicting Lord Ram, the seventh avatar of Lord Vishnu and son of King Dasharatha, along with Lakshman and Sita during their exile, shown crossing the Ganga river by boat on the riverbank.

Cave No. 4: Cave number 4 is located at the far end of the hill, where a large statue of Lord Hanuman has been carved out of a natural rock formation. Walls and a ceiling have been constructed to give it the form of a cave. The approximate dimensions are 306×240×95 cm.

Conclusion: The Pahadi Baba Caves in Anuppur district represent a unique blend of natural geography, mythological associations, and evolving religious and architectural traditions. While the caves themselves likely date to the 19th century, their location in a region rich with archaeological, historical, and cultural significance gives them broader contextual importance. The area's connection to ancient human settlement, Stone Age tools and mythological references to Lord Rama’s exile during the Ramayana period suggest a long-standing spiritual presence. Although no major remains from earlier dynasties have been found directly at the Pahadi Baba site, surrounding discoveries—from the Maurya to the Kalachuri periods—indicate that the region was historically active. The caves, primarily natural formations later modified for religious use, reflect a continuation of the ancient Indian tradition of utilizing natural rock shelters for devotional and monastic purposes. The sculptures within the caves, depicting deities from Vaishnava, Shaiva, and Shakta traditions, highlight the religious syncretism and artistic expression of local and tribal communities.

Modern modifications, including the use of cement, iron, and brick, have both preserved and altered the original cave structures. Despite this, the site retains its spiritual significance and serves as a testimony to the enduring human connection with nature, devotion, and cultural continuity. The study of the Pahadi Baba Cave Architecture not only adds to our understanding of regional religious art but also emphasizes the importance of preserving such sites that encapsulate layers of history, mythology, and indigenous artistic traditions.

References :-

1. Sharma, R.K. Madhya Pradesh and Chhattisgarh ke Puratatva ka Sndarbhgranth, Madhya Pradesh Hindi Granth Academy, Bhopal, 2010.
2. Gond, Heera Singh. Unpublished Thesis, Amarkantak, 2019.
3. Agrawal, Manoj. Student Atlas – Chhattisgarh Edition, Destiny Publications, 2021.
4. Malpani, J.N. Archaeology of Anuppur District, Directorate of Culture, Bhopal.2009
5. Singh, Shailaja. Sculpture of Madhya Pradesh, Sridevi Printing Publication, Agra, 1996.
6. Chahar, M.L. Amarkantak Kshetra Ka Puravaibhav, New Delhi, 2017.
7. Pandey, V.K.Prachin Bharat ka Kalavastu evam Puratatva, Allahabad, 2009.

8. Shastri, A.M. Inscriptions of the Sarabhapuriya, Panduvamshi, and Somavamshi Dynasties, Part 2.2.1.
9. Chhabra, B.C. Epigraphica Indica, Vol. 27.
10. Mookerji, R.K. Bharat Kaumudi, Volume 1. 1945
11. Gond, H.S. Rock Art of the Koria district with special Reference to Murelgarh Hill, Journal of History, Archaeology and Architecture,2:1 2023, PP. 71-75.
12. Corpus Inscriptionum Indicarum, Volume 5.
13. I.A.R. (Indian Archaeology – A Review) 1975-76, Page 63.
14. Shastri, Venkateshwar. University Oriental Journal, Volumes 21–22.
15. Sharma, Rajkumar. History of Madhya Pradesh, Hindi Granth Academy, Bhopal.
16. Gond, H.S. Shailkrit Guhavastu Evam Murtikala Khodari, District Anuppur M.P. Alochan Drishti, Journal of Humanities Vol. 33, 2023, PP. 77-80.
17. Kumar, Vinay. Rock cut Cave at Village Khodari, Madhya Pradesh: An Ethno Archaeological Study, Journal of Multidisciplinary Studies in Archaeology 2 (2014) PP. 694-704.
18. Shrotriya, Alok. Shivlahra ki Shailotkeern Gufaon ka Pralekhikaran Aur Shilalekhon ka Vivechan, Madhya Bharti-83 (2022) PP. 48-64.

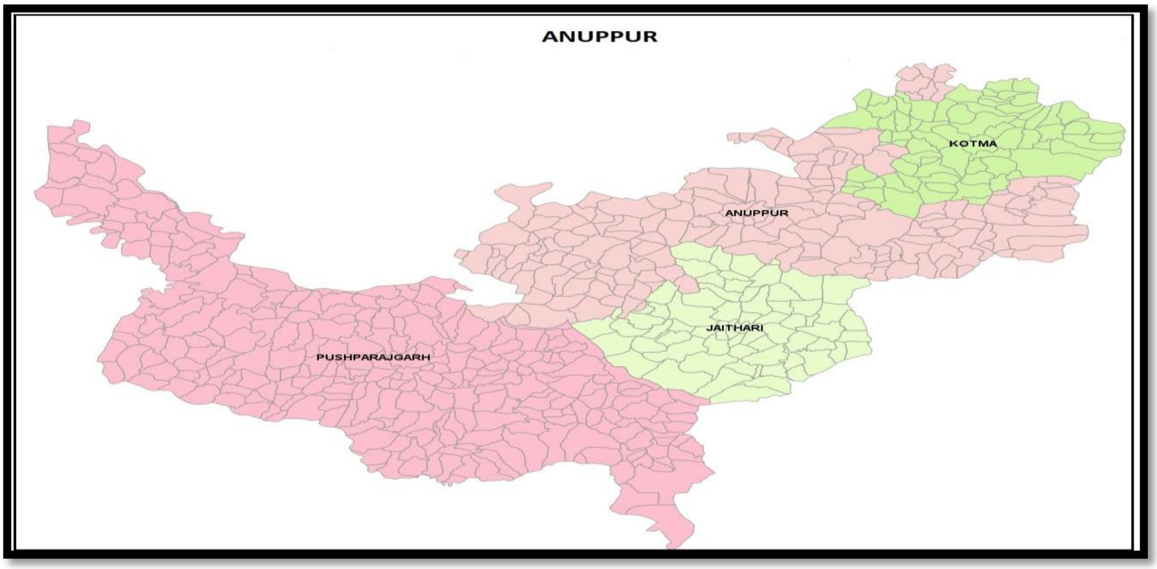

Fig. I: Anuppur District Map

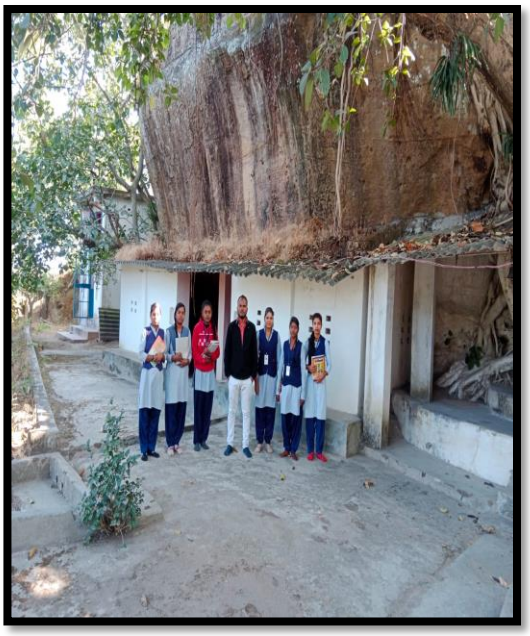

Fig.II: Pahadi Baba Cave (tree year ago)

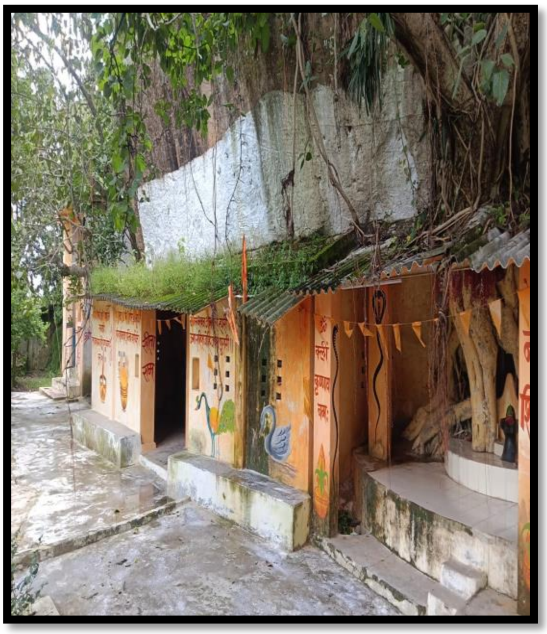

Fig. III: Pahadi Baba Cave

ഊ★ന്ദ

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला के तत्त्वावधान में

आधुनिक हिन्दी साहित्य और भारतीयता

विषय पर आयोजित द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी (दिनांक : 3-4 सितम्बर 2025) का प्रतिवेदन

डॉ. सुनील कुमार मानस*

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला में **"आधुनिक हिंदी साहित्य और भारतीयता"** विषय पर **दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी** का आयोजन **3–4 सितंबर, 2025** को हुआ।

कार्यक्रम का शुभारंभ **प्रो. चित्रंजन मिश्र** (पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पं. दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय), **प्रो. सोमा बंद्योपाध्याय** (कुलपति, पश्चिम बंगाल शिक्षण–प्रशिक्षण विश्वविद्यालय की) **श्री मेहरचंद नेगी** (सचिव, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला), एवं **डॉ. मनोज पाण्डेय** के कर कमलों दीप–प्रज्वलन एवं सरस्वती प्रतिमा के माल्यार्पण के साथ हुआ, इसके उपरांत संगोष्ठी संयोजक एवं भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान के एसोसिएट **डॉ. मनोज पाण्डेय** ने सभी अतिथियों, विद्वानों एवं प्रतिभागियों का हार्दिक स्वागत किया तथा संगोष्ठी के उद्देश्य और पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए विषय–प्रवर्तन प्रस्तुत किया। **डॉ. पाण्डेय** ने कहा कि "भारतीयता कोई स्थिर या जड़ संकल्पना नहीं है, बल्कि यह निरंतर विकसित होती हुई चेतना है, जो समय के साथ अपने स्वरूप को परिवर्तित करते हुए भी सांस्कृतिक एकात्मता, मानवीयता और लोकमंगल की भावना को जीवित रखती है।" डॉ. पाण्डेय ने आगे कहा कि हिंदी साहित्य को लेकर भारतीय चिंतन करना आज के समय की आवश्यकता है, क्योंकि जिस दौर में हम रह रहे हैं, उसमें राष्ट्रबोध का क्षरण लगातार हो रहा है और हमारी अस्मिता पर भी संकट उपस्थित है। इन चुनौतियों के बीच आधुनिक हिंदी साहित्य और भारतीयता पर चिंतन करना न केवल साहित्यिक, बल्कि सांस्कृतिक रूप से भी अत्यंत आवश्यक है। उद्घाटन सत्र में **प्रो. चित्रंजन मिश्र** ने **बीज–वक्तव्य** देते हुए आधुनिक हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि से लेकर समकालीन हिंदी साहित्य में निहित भारतीय चिंतन के वैचारिक आयामों को भली–भांति स्पष्ट किया। उनका मत था कि साहित्य अपने समय और उसकी आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति करता है। वह एक ओर औपनिवेशिक सत्ता से टकराकर स्वाधीनता का प्रेरक बनता है, वहीं दूसरी ओर समाज को अधिक समावेशी बनाने की मानसिकता को भी पुष्ट करता है। आगे उन्होंने कहा कि हमारा सम्पूर्ण साहित्य स्वाधीनता की खोज का साहित्य है। राजनीतिक और सांस्कृतिक चिंतन में हमारे साहित्यिक योगदान की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है। हमारी जातीय स्मृतियाँ वर्तमान और भविष्य दोनों की कारक भी हैं और उपादान भी। साहित्य की लोकभाषा की जितनी भी विशेषताएँ हैं, उन्होंने उन्हें विस्तारपूर्वक रेखांकित किया और साझी सांस्कृतिक विरासत को भारतीय चिंतन का मूल आधार बताया। उनका कहना था कि विवेक की कसौटी पर कसकर ही साहित्य के चिंतन का मूल्यांकन किया

***विभागाध्यक्ष–हिन्दी, सरकारी विनयन (कला) महाविद्यालय, बेचराजी, गुजरात–384415।**

जाना चाहिए। हमारे यहाँ शास्त्रार्थ की संवाद–धर्मिता, सह–अस्तित्व की भावना और जीवन के मूल मन्तव्य को समझने की परंपरा रही है। भारतीय चिंतन लौकिकता से अलौकिकता की ओर अग्रसर होता है और कई बार अलौकिकता से लौकिकता की ओर लौटता भी है। लौकिक और अलौकिक दोनों का मूल मन्तव्य यही है कि ज्ञान को केवल जानना पर्याप्त नहीं, बल्कि उसे आचरण में उतारना ही उसका सर्वोच्च सोपान है। सत्र की अध्यक्ष **प्रो. सोमा बंद्योपाध्याय** ने उद्घाटन सत्र के विचारों का समाहार करते हुए साहित्य की मूल अवधारणा को स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि विविधता में एकता का जो आधार आज हमारे समाज में दिखाई देता है, वह हमारे साहित्य की ही देन है। आधुनिक रचनाकारों ने अपने साहित्यिक सृजन के माध्यम से भारतीय चेतना, सह–अस्तित्व और सद्भावना के मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने रवींद्रनाथ टैगोर आदि की रचनाओं के अनेक उदाहरणों के माध्यम से इन विचारों को पुष्ट किया। कार्यक्रम की सराहना करते हुए उन्होंने यह आशा व्यक्त की कि आने वाले दो दिनों में संगोष्ठी से आधुनिक हिंदी साहित्य में निहित भारतीय चिंतन की अवधारणा और अधिक स्पष्ट, गहन तथा व्यापक रूप में सामने आएगी। उनका मानना भी था कि "भारत की आधुनिकता पश्चिमी अनुकरण की देन नहीं है, बल्कि यह हमारी अपनी परंपरा की पुनःव्याख्या और आत्मबोध से जन्मी आधुनिकता है।" सत्र के अंत में श्री **मेहर बन्द नेगी,** सचिव, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, ने सभी वक्ताओं, विद्वानों और प्रतिभागियों का आभार व्यक्त करते हुए धन्यवाद–ज्ञापन प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि संस्थान सदैव ऐसे बौद्धिक विमर्शों के माध्यम से भारतीय ज्ञान–परंपरा और आधुनिक विमर्शों के सेतु–निर्माण का कार्य करता रहेगा। उपरोक्त सत्र का समापन सामूहिक राष्ट्रगान के साथ हुआ।

प्रथम अकादमिक सत्र की शुरुआत **प्रो. अखिलेश गंगाधर** के व्याख्यान से हुई। उन्होंने बताया कि अज्ञेय के यहाँ आधुनिकता और भारतीयता का जो चिंतन मिलता है, वह अद्वितीय है। उनके साहित्य में जहाँ एक ओर सनातन की भावना विद्यमान है, वहीं आधुनिक होने का भाव भी उतनी ही गहराई से अभिव्यक्त होता है। अज्ञेय का मानना था कि निरंतर संस्कारवान होने की प्रक्रिया ही मानवता है। उन्होंने आगे कहा कि अज्ञेय की आधुनिकता मनुष्य के भीतर की यात्रा है– वह आधुनिकता– जो प्रश्न करती है, संशय करती है, परंतु अंततः आत्मबोध और संतुलन की ओर लौटती है। इस सत्र के द्वितीय वक्ता के रूप में सावित्रीबाई फुले विश्वविद्यालय, पुणे से पधारे **प्रो. विजय कुमार रोडे** ने "आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतीय सांस्कृतिक अवदान" विषय पर अपना शोधपत्र प्रस्तुत किया। उन्होंने अपने व्याख्यान में शिक्षा, अनुवाद और भारतीयता के बहुलतावादी दृष्टिकोण को केंद्र में रखा। भारतीय आधुनिकता आत्म–केन्द्रित न होकर लोक–समर्पित आधुनिकता है, जिसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता समाज के नैतिक अनुशासन से जुड़ी हुई है। सत्र के अध्यक्षीय उद्बोधन में **प्रो. गिरीश्वर मिश्र** ने संपूर्ण सत्र की वैचारिकी का विवेचन एवं विरेचन प्रस्तुत करते हुए कहा कि आधुनिकता भी एक प्रकार का संस्कार है, जिसे समय–समय पर परखने की आवश्यकता होती है, क्योंकि देश–काल के अनुसार संस्कारों में परिवर्तन होता रहता है। इस प्रक्रिया में हमें आत्म–अवलोकन करते रहना चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि आत्मा का अर्थ अत्यंत व्यापक है; उसका लोकहित ही उसका विस्तार है। साहित्य का कार्य मानव के भीतर संवाद की चेतना को जीवित रखना है। प्रत्येक रचनाकार अपने समय से संवाद करता है, और यही संवाद उसकी आधुनिकता का प्रमाण है। जो साहित्य अपने समय से संवाद नहीं करता, वह अप्रासंगिक हो जाता है। इसलिए साहित्य का दायित्व है कि वह मानवीय प्रश्नों को संबोधित करे। भारतीय आधुनिकता को समझने के लिए हमें पश्चिमी आधुनिकता के अनुकरण से आगे बढ़कर अपनी सांस्कृतिक, दार्शनिक और मानवीय जड़ों की ओर लौटना होगा। आगे वह कहते हैं कि भारतीय आधुनिकता केवल ऐतिहासिक या सामाजिक घटना नहीं है, बल्कि आत्मबोध का उत्कर्ष और संस्कृति की पुनर्रचना की प्रक्रिया है।"

द्वितीय अकादमिक सत्र की शुरुआत हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़ के **प्रो. वीरपाल सिंह यादव** के व्याख्यान से हुई। उन्होंने "भारतीय आधुनिकता की संकल्पना और साहित्य" विषय को केंद्र में रखते हुए कहा कि भारतीयता मानने का एक भाव है– स्वभाषा, स्वचिंतन और स्वदेशी का। आधुनिक साहित्य में इन तीनों तत्वों का गहरा उल्लेख मिलता है, जो भारतीय चिंतन को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करता है। उन्होंने यह भी कहा कि यह आधुनिकता संघर्षशील भी है और आत्मसंयमी भी, जो पश्चिमी

भौतिकतावादी दृष्टि से भिन्न, आध्यात्मिक गहराई और सामूहिकता की भावना से प्रेरित है। इस सत्र के द्वितीय वक्ता के रूप में बाबा भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ से पधारे **प्रो. सर्वेश सिंह** ने "आधुनिक हिंदी कथा–भाषा और भारतीयता" विषय पर अपने विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने कहा कि अनेक आधुनिक रचनाएँ ऐसी हैं, जो जीवन की यथार्थता और सामाजिक प्रश्नों को केंद्र में रखती हैं। उन्होंने कहा कि हिन्दी की आधुनिक कथाभाषा ने भारतीय जीवन–दृष्टि, लोक–संवेदना और विविध सांस्कृतिक यथार्थों को आत्मसात करते हुए अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। सत्र के अध्यक्षीय उद्बोधन में गुजरात की हिंदी विश्वविद्यालय, गांधीनगर के पूर्व अध्यक्ष **प्रो. आलोक गुप्त** ने दोनों वक्ताओं के व्याख्यानों का समाहार प्रस्तुत करते हुए कहा कि आधुनिक हिंदी साहित्य को दो कालखंडों– स्वतंत्रता–पूर्व और स्वतंत्रता–उत्तर– में विभाजित करके देखने से उसके मूल्यों और भारतीयता के दृष्टिकोण को अधिक स्पष्टता से समझा जा सकता है। उनके अनुसार, "भारतीयता का वास्तविक रूप वही है, जो समाज के अंतिम व्यक्ति की गरिमा और अधिकारों की रक्षा करे।" भारतीयता केवल सांस्कृतिक या आध्यात्मिक धारणा नहीं, बल्कि वह सामाजिक चेतना है जो अन्याय, शोषण और विषमता के विरुद्ध संघर्ष का प्रेरक तत्व बनती है।

तृतीय अकादमिक सत्र की शुरुआत **प्रो. विजय कुमार प्रधान** के व्याख्यान से हुई। उन्होंने भारतेंदु युग को केंद्र में रखते हुए कहा कि भारतेन्दु हरिश्चंद्र का चिंतन भारतीयता का सशक्त संवाहक है। उनके अनुसार, भारतेंदु केवल अपने समय के सामाजिक और सांस्कृतिक यथार्थ के संवेदनशील साक्षी ही नहीं थे, बल्कि वे नवजागरण की चेतना के अग्रदूत भी थे। उन्होंने भारतीय अवधारणाओं, मूल्यों और आत्मपरक दृष्टि से युक्त एक ऐसी चिंतनधारा को आगे बढ़ाया, जिसने आधुनिक हिंदी साहित्य की दिशा और दशा दोनों को प्रभावित किया। प्रो. प्रधान ने तमाम उदाहरणों के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि भारतेंदु युग में भारतीयता केवल परंपरा की पुनरावृत्ति नहीं, बल्कि नवीनता के साथ उसका पुनर्सृजन थी। इसके पश्चात् **डॉ. गिरिजा शंकर गौतम** ने "आधुनिक हिंदी काव्य में भारतीय जीवन–मूल्य" विषय पर अपना व्याख्यान प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि भारत भारती, साकेत, प्रिय प्रवास, कामायनी, राम की शक्ति पूजा और आत्मजयी जैसी रचनाएँ भारतीय चिंतन की निरंतर यात्रा को प्रतिष्ठित करती हैं। इन रचनाओं में निहित मूल्य न केवल राष्ट्रीय चेतना के वाहक हैं, बल्कि वे मानवता, धर्म, करुणा और आत्म–साक्षात्कार की भावना को भी पुनर्जीवित करते हैं। **डॉ. गौतम** ने आधुनिक कवियों के माध्यम से भारतीयता के पुनर्पाठ की आवश्यकता पर बल दिया। इस सत्र के तृतीय वक्ता **डॉ. रामप्रवेश रजक** ने "राष्ट्रबोध और आधुनिक हिंदी कविता" विषय पर अपने विचार रखे। उन्होंने बताया कि आधुनिक कवियों ने राष्ट्रबोध को केवल राजनीतिक अवधारणा के रूप में नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक और नैतिक चेतना के रूप में प्रस्तुत किया है। राष्ट्र उनके लिए भूमि या सीमा का नहीं, बल्कि भावना, उत्तरदायित्व और संवेदना का प्रतीक है। सत्र के अध्यक्षीय उद्बोधन में **प्रो. शिवप्रसाद शुक्ल** ने आधुनिकता और भारतीयता की अवधारणा पर विचार करते हुए कहा कि जब हम बार–बार 'भारतीयता' कहते हैं, तो यह प्रश्न उठता है कि वास्तव में भारतीयता है क्या? उन्होंने अपने तल्ख़ किंतु चिंतनशील अंदाज़ में साहित्यिक विमर्श के अनेक प्रश्न उपस्थित किए, जिनसे या तो लोग अनजान हैं या जानबूझकर दूरी बनाए रखते हैं। उन्होंने कहा कि साहित्य केवल मार्ग दिखाने का कार्य नहीं करता, बल्कि उस मार्ग पर चलने की प्रेरणा भी देता है। परंतु प्रश्न यह है कि उस मार्ग पर चल कौन रहा है? साहित्य की यही चुनौती और उसकी जीवंतता का प्रमाण भी है।

चतुर्थ अकादमिक सत्र की शुरुआत **डॉ. सुनील कुमार मानस** (सरकारी विनयन कॉलेज, बेचराजी– गुजरात) के वक्तव्य से हुई। उन्होंने विद्यानिवास मिश्र के साहित्यिक अवदान को केंद्र में रखते हुए भारत और भारतीयता के चिंतन को समझने में उनकी भूमिका को रेखांकित किया। उन्होंने बताया कि विद्यानिवास मिश्र ने भारतीय चिंतन की गहराइयों में उतरकर उसे न केवल व्याख्यायित किया, बल्कि उसे जीवन–व्यवहार और भाषिक संस्कारों से भी जोड़ा और स्पष्ट किया कि उनमें लोक, परंपरा, शास्त्र, संस्कृति और मानवीय संवेदनाओं का अद्भुत संगम दिखाई देता है। आगे उन्होंने स्पष्ट किया कि मिश्र के अनुसार भारतीयता का अर्थ है– "अनेकता में एकता की खोज", अर्थात विविधता में एकत्व की अनुभूति। फिर डॉ. मानस ने बताया कि मिश्र का भारतीयता–विचार तुलसी, कबीर और भारतेंदु की परंपरा से जुड़ता है, जो समन्वय और सह–अस्तित्व पर आधारित है। उन्होंने यह भी कहा कि विद्यानिवास मिश्र ने पश्चिमी

आधुनिकता का विरोध नहीं किया, बल्कि भारतीय परंपरा के आलोक में उसकी पुनर्व्याख्या की– जिससे एक संवादशील, मानवीय और सांस्कृतिक आधुनिकता का स्वर उभरता है। उनके अनुसार, विद्यानिवास मिश्र की दृष्टि में भारतीयता केवल अतीत का गौरव नहीं, बल्कि वर्तमान का आत्म–संस्कार और भविष्य की दिशा है। तत्पश्चात् **प्रो. राजेश कुमार गर्ग** ने "आधुनिक हिंदी साहित्य में भारतबोध" विषय पर अपना व्याख्यान प्रस्तुत किया। उन्होंने भारतेंदु, द्विवेदी और छायावाद युग के रचनाकारों के साहित्य को केंद्र में रखकर भारतबोध की अवधारणा को व्याख्यायित किया। प्रो. गर्ग ने यह भी कहा कि आधुनिक हिंदी साहित्य का मूल सरोकार अपने देश, समाज और परंपरा से संवाद करना है, और यही संवाद भारतबोध की सतत प्रक्रिया को जीवित रखता है। उन्होंने भारतेंदु से लेकर अज्ञेय तक की परंपरा का उल्लेख करते हुए कहा कि इन रचनाकारों ने भारत को केवल एक देश नहीं, बल्कि एक चेतना–भूमि के रूप में देखा, जहाँ धर्म, दर्शन, कला, लोक–जीवन और प्रकृति के बीच गहरा संवाद है। सत्र की अध्यक्षता करते हुए **प्रो. सोमा बंधोपाध्याय** ने दोनों वक्ताओं के विचारों को समेकित करते हुए कहा कि भारतीयता की दार्शनिक भूमि समन्वय, सह–अस्तित्व और आत्म–बोध पर आधारित है, जिसमें 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना निहित है, जहाँ समस्त मानवता को एक परिवार के रूप में देखा जाता है। भारतीयता को समझना केवल सांस्कृतिक या साहित्यिक प्रश्न नहीं, बल्कि एक गहन दार्शनिक अन्वेषण है। यह समस्त बातें उन्होंने छायावाद के साहित्य को केंद्र में रखते हुए कही। सत्र की विशेषता यह रही कि इसमें भारतीयता की सांस्कृतिक, वैचारिक और दार्शनिक जड़ों पर एक समन्वित और व्यापक दृष्टि विकसित हुई, जिसने आधुनिक समय में भारतीय चिंतन की प्रासंगिकता को और अधिक उजागर किया।

पंचम अकादमिक सत्र की शुरुआत **डॉ. प्रफुल्ल कुमार** (भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा) के शोध पत्र "आधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतबोध" के वाचन के साथ हुई। उन्होंने तमाम रचनाकारों के उदाहरण देते हुए कहा कि इन लेखकों की आधुनिकता भारत की सांस्कृतिक आत्मा से जुड़ी हुई है कृ जो आत्मसंघर्ष से गुज़रते हुए भी अपनी मूल पहचान नहीं खोती। द्वितीय वक्ता के रूप में **डॉ. मनोज कुमार राय** (गांधी एवं शांति अध्ययन विभाग, वर्धा) ने "भारतीयता की अवधारणा और हिन्दी साहित्यः कुबेरनाथ राय के विशेष संदर्भ में" विषय पर वक्तव्य देते हुए कहा कि कुबेरनाथ राय की रचनाएँ भारतीय संस्कृति, दर्शन और ग्रामीण जीवन का समन्वय करती है। उन्होंने बताया कि कुबेरनाथ राय ने भारतीय आधुनिकता को लोक और परंपरा के समरस रूप में देखा, जिसमें वैदिक दृष्टि, प्रकृति–प्रेम और ग्राम्य–संवेदना एक गहन भारतीय चेतना के साथ अभिव्यक्त होती है। सत्र की अध्यक्षता करते हुए **प्रो. बृजेन्द्र पांडेय** ने भारतीय आधुनिकता की अवधारणा को व्यापक, विश्लेषणात्मक और सप्रमाण ढंग से स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि औपनिवेशिक शिक्षा ने हमारे ज्ञान–संस्कार और सांस्कृतिक दृष्टिकोण को गहराई से प्रभावित किया, जिसके परिणामस्वरूप हम अपनी परंपराओं के प्रति हीनता–बोध से ग्रस्त हो गए। इस प्रक्रिया ने हमें अपनी जड़ों से अलग कर दिया और हम अपने ही सांस्कृतिक अनुभव को पश्चिमी मानकों से आंकने लगे। प्रो. पांडेय ने इस संदर्भ में यह विचार रखा कि आधुनिकता का अर्थ पश्चिमीकरण नहीं, बल्कि आत्म–साक्षात्कार और आत्म–प्रत्यय की प्रक्रिया है। उन्होंने आगे कहा कि आज भारतीय चिंतन की अवधारणा एक गहरे संकट से गुजर रही है, किंतु यह संकट स्वयं पुनर्जागरण की भूमिका भी तैयार कर रहा है। भारतीयता पर निरंतर विमर्श हो रहा है और यह चिंतन आगे भी जारी रहेगा। इसे गहराई से समझने के लिए भारतीय और पश्चिमी चिंतन–यात्राओं की तुलनात्मक समीक्षा आवश्यक है, क्योंकि दोनों की दार्शनिक दिशाएँ अलग होते हुए भी मानवता के मूल प्रश्नों से जुड़ी हैं। जब हम इस दृष्टि से भारत और विश्व दोनों को एक साथ देखने लगते हैं, तभी भारतीय आधुनिकता का वास्तविक स्वरूप प्रकट होता है और भारत के पुनर्निर्माण तथा प्रगति के मार्ग को सुस्पष्ट रूप मिलता है। आगे वह बताते हैं कि साहित्य में भारतीयता की व्याख्या तभी संभव है जब हम साहित्य को केवल 'अभिव्यक्ति' नहीं, बल्कि 'संवेदना' और 'अंतरानुभूति' के रूप में देखें। उन्होंने कहा कि भारतीय आधुनिकता आत्म–साक्षात्कार की प्रक्रिया है, जो परंपरा को अस्वीकार नहीं करती, बल्कि उसे नव रूप में प्रतिष्ठित करती है।

षष्ठम अकादमिक सत्र की शुरुआत **डॉ. अपर्णा दीक्षित** (जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली) ने "महादेवी वर्माः हिन्दी साहित्य में भारतीयता की संवाहक" विषय पर कहा कि महादेवी वर्मा की

काव्य–संवेदना भारतीय नारी के आध्यात्मिक अस्तित्व और करुणा के अद्वैत का प्रतीक है। उन्होंने बताया कि महादेवी की कविताओं में जो 'मौन की वाणी' है, वह भारतीय आत्मा की गहराई से उपजी है– जिसमें त्याग, सह–अस्तित्व और आत्म–साक्षात्कार का समन्वय दिखाई देता है। महादेवी ने आधुनिक स्त्री को केवल सामाजिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक चेतना की वाहक के रूप में स्थापित किया। द्वितीय वक्ता के रूप में **डॉ. विनम्रसेन सिंह** (इलाहाबाद केंद्रीय विश्वविद्यालय) ने "आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता का स्वरूप" विषय पर वक्तव्य देते हुए कहा कि आधुनिक कवियों ने राष्ट्र को केवल राजनीतिक सत्ता के रूप में नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सत्ता के रूप में देखा है। उन्होंने जयशंकर प्रसाद, सुभद्राकुमारी चौहान, मैथिलीशरण गुप्त और दिनकर की कविताओं के उदाहरण देते हुए कहा कि इन कवियों की दृष्टि में राष्ट्र मातृभूमि नहीं, बल्कि 'मातृचेतना' है– जो शक्ति, करुणा और आत्मबल का स्रोत है। सत्र की अध्यक्षता करते हुए **प्रो. विनोद मिश्र** ने कहा– भारतीय संस्कृति की पहचान उसकी 'एकता में विविधता' की भावना में निहित है। उन्होंने यह भी कहा कि साहित्य में राष्ट्रीय चेतना तभी सार्थक होती है जब वह सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ी रहे। राष्ट्र केवल सीमाओं से नहीं, बल्कि साझा स्मृतियों, लोक–परंपराओं और आध्यात्मिक संवेदना से निर्मित होता है। इसी सबके साथ उन्होंने हिन्दी के प्रचार–प्रसार को लेकर तमाम बातें कहीं जो उनके निजी जीवन के संस्मरण से जुड़े थे।

समापन सत्र की शुरुवात मंचस्थ अतिथियों के स्वागत एवं सम्मान के सेठ होती है तत्पश्चात सभी सत्रों के व्याख्यानों की आख्या **डॉ मनोज पांडेय** ने प्रस्तुत की। समापन भाषण के रूप में **प्रो. अंबिकादत्त शर्मा** (दर्शन–विभाग, डॉ. हरीसिंह विश्वविद्यालय, सागर (म. प्र.) ने कहा कि भारत की सनातन परंपरा एक व्यापक विश्व–दृष्टि को लेकर चलती है, जिसमें संपूर्ण ब्रह्मांड को नैतिक व्यवस्था के रूप में देखा गया है। भारतीय चिंतन के अनुसार, सृष्टि के प्रत्येक तत्व में एक नैतिक अनुशासन और आध्यात्मिक ऊर्जा निहित है, जो जीवन में संतुलन और समरसता बनाए रखती है। उन्होंने स्पष्ट किया कि अतीत कभी व्यतीत नहीं होता; वह निरंतर वर्तमान में उपस्थित रहता है और भविष्य का पथ आलोकित करता है। भारत का सांस्कृतिक इतिहास इसी निरंतरता का प्रतीक है। उन्होंने कहा कि राष्ट्रीय चेतना का मूलभूत सत्य स्वतंत्रता है और उसका साधन सत्य। यह स्वतंत्रता केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि आत्मिक और नैतिक है, जो व्यक्ति और समाज दोनों को जिम्मेदार बनाती है। परंतु आज हमारी ज्ञान–प्रक्रिया का औपनिवेशीकरण हो गया है, जिसके कारण हम अपनी दृष्टि से चीज़ों को देखने और समझने की क्षमता खोते जा रहे हैं। जब तक हम अपने विचार, परंपरा और संस्कृति को अपनी ही दृष्टि से नहीं देखेंगे, तब तक भारतीयता की सही पहचान नहीं कर सकेंगे। उन्होंने अंत में कहा कि भारत में भारत से असहमत होने का जितना अवकाश है, उतना शायद किसी अन्य देश में नहीं। यही विचार–सहनशीलता और बहुलता भारत की सांस्कृतिक परिपक्वता तथा उसकी सनातन जीवंतता का प्रतीक है। समापन सत्र के अध्यक्षीय उद्बोधन भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के निदेशक **प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी** ने बताया कि आधुनिक भारतीय चिंतन में कई भूलें हुई हैं, जिन्हें न तो इतिहास में पर्याप्त स्थान मिला और न ही भारतीय जनमानस को बताया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारा चिंतन काफी हद तक औपनिवेशिक दृष्टि के प्रभाव में आ गया, जबकि वह कभी ऐसा नहीं था। उन्होंने कहा कि साहित्य के माध्यम से जो सामाजिक चेतना हमारे जनमानस में आज भी जीवित है, उसमें हिंदी का बहुत बड़ा योगदान रहा है। आज भारतीय समाज को परंपरा से जोड़ते हुए आधुनिकता की चेतना से संपन्न बनाना– हमारा लक्ष्य होना चाहिए। यही राष्ट्रीय चिंतन, समाज चिंतन और मानवीय चिंतन का आधार भी होना चाहिए। प्रो. चतुर्वेदी ने इस संगोष्ठी को महत्त्वपूर्ण बताते हुए कहा कि आने वाले समय में यह कार्यक्रम हमारे चिंतन की प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण विचार–दृष्टि प्रदान करेगा। उन्होंने यह भी कहा कि ऐसे कार्यक्रमों के आयोजन के लिए हम समय–समय पर प्रतिबद्ध रहेंगे।

इस सत्र का धन्यवाद ज्ञापन भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के अकादमी शोध अधिकारी ने किया। कार्यक्रम का समापन सामूहिक राष्ट्रगान के गायन के साथ हुआ।

❀★❀

हिंदी विभाग, का.हिं.वि.वि., वाराणसी एवं साहित्य अकादमी, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में

ग़ज़ल, हिंदी ग़ज़ल : समाज, दर्शन, इतिहास और संगीत

विषय पर आयोजित त्रि-दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी
(29-31 अगस्त, 2025) का प्रतिवेदन

डॉ. योगेश कुमार तिवारी*
डॉ. सुधीर कुमार तिवारी**

हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी एवं **साहित्य अकादमी,** नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में हिंदी विभाग के **आचार्य रामचंद्र शुक्ल सभागार** में आयोजित **त्रि–दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी** (29–31 अगस्त, 2025)– **"ग़ज़ल : हिंदी ग़ज़ल, समाज, दर्शन, इतिहास और संगीत"** का शुभारंभ मंचस्थ अतिथियों (**प्रो. अजित कुमार चतुर्वेदी,** कुलपति, काशी हिंदू विश्वविद्यालय; **डॉ. महेंद्र नाथ पाण्डेय,** पूर्व केंद्रीय मंत्री, भारत सरकार; **प्रो. संजीव कुमार,** कुलपति, महाराजा सुहेलदेव राज्य विश्वविद्यालय, आज़मगढ़; **आलोक कुमार त्यागी,** भोपाल) के कर कमलों से **दीप प्रज्वलन** तथा **सरस्वती एवं मालवीय जी** की प्रतिमा पर माल्यार्पण के साथ हुआ। साथ ही **अंकित कुमार पांडेय** ने वैदिक मंगलाचरण प्रस्तुत किया। तत्पश्चात **दिव्या शुक्ला, स्मिता पांडेय, आकांक्षा मिश्रा** एवं **अपराजिता श्री** ने सामूहिक रूप से विश्वविद्यालय के **कुलगीत** का गायन किया। तदोपरांत **प्रो. वशिष्ठ द्विवेदी,** अध्यक्ष, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय ने आमंत्रित अतिथियों का स्वागत एवं सम्मान किया तथा संगोष्ठी के उपक्रम एवं उसकी संभावनाओं से परिचित कराते हुए कहा कि यह अंतरराष्ट्रीय मंच हिंदी ग़ज़ल के समाज, दर्शन, इतिहास और संगीत के बहुआयामी अध्ययन और विचार–विमर्श का अवसर प्रदान करता है तथा हिंदी ग़ज़ल की सामाजिक, भावनात्मक और दार्शनिक प्रासंगिकता को उजागर किया। **'आलोचन दृष्टि'** शोध पत्रिका, के प्रधान संपादन **डॉ. सुनील कुमार मानस** द्वारा संपादित 'आलोचन दृष्टि' का **'प्रो. वशिष्ठ अनूप पर केंद्रित विशेषांक'** और **प्रो. वशिष्ठ अनूप पर केंद्रित पुस्तक** का विमोचन एवं लोकार्पण हुआ। तत्पश्चात् भोपाल से आए सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार एवं आलोचक **आलोक कुमार त्यागी** ने हिंदी ग़ज़ल की संघर्ष–यात्रा की ओर श्रोताओं का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने कहा कि बड़े उद्देश्यों के लिए हमें बड़ी आहुतियाँ देनी पड़ती हैं, बहुत कीमतें चुकानी पड़ती हैं। अपने पिता दुष्यंत कुमार को याद करते हुए **प्रो. संजीव कुमार** ने कहा कि दुष्यंत कुमार के संघर्ष को देखकर हम हिंदी ग़ज़ल के संघर्ष का अनुमान लगा सकते हैं। "दुष्यंत कुमार आधुनिक हिंदी ग़ज़ल के वास्तविक जनक हैं।"

***अतिथि प्रध्यापक –हिन्दी, शासकीय तुलसी पी.जी. महाविद्यालय, अनूपपुर–मध्य प्रदेश।**
****अतिथि प्रध्यापक –शिक्षा संकाय, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय–वर्धा।**

उन्होंने आगे कहा कि हमें कुछ ऐसा सृजन करना है, जो दुनिया के लिए नया हो। साथ ही उन्होंने हिंदी ग़ज़ल के वैश्विक प्रसार पर अपने दृष्टिकोण साझा किए और अंतरराष्ट्रीय सहभागिता के महत्त्व पर बल दिया। मुख्य अतिथि **डॉ. महेंद्र नाथ पाण्डेय** ने ग़ज़ल के सामाजिक और राष्ट्रीय महत्व को रेखांकित करते हुए कहा कि हम अपनी बात में ज़ोर देने या बल देने के लिए अकसर अपनी बातों में ग़ज़ल का प्रयोग करते हैं। 'साये में धूप' जैसी पुस्तक को कई बार मैंने पढ़ा। आगे उन्होंने कहा कि यह साहित्य केवल व्यक्तिगत भावों का माध्यम नहीं, बल्कि राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना का दर्पण भी है। अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में **प्रो. अजित कुमार चतुर्वेदी** ने कहा कि हिंदी ग़ज़ल केवल साहित्यिक विधा नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक और सौंदर्य चेतना का जीवंत स्वरूप है। उन्होंने ग़ज़ल के ऐतिहासिक विकास, सामाजिक प्रासंगिकता और आधुनिक संदर्भ में योगदान पर प्रकाश डाला। साथ ही प्रोत्साहित करते हुए कहा कि हर विभाग में इस तरह की व्यापक संगोष्ठियों का अधिकाधिक आयोजन किया जाना चाहिए। जब एक साथ इतने विद्वान एकत्रित होते हैं तो हम अवश्य ही लाभान्वित होते हैं। इस सत्र का धन्यवाद ज्ञापन **डॉ. अशोक कुमार ज्योति** ने किया और संचालन **डॉ. सत्यप्रकाश पाल** ने।

29 अगस्त के कार्यक्रम का समापन ग़ज़ल–गायन से हुआ, जिसके अंतर्गत **विशाल राव, राघवेंद्र शर्मा, भूपेंद्र कुमार और डॉ. दुर्गेश उपाध्याय** ने ग़ज़लों एवं गीतों की प्रस्तुति की, जिनमें कई ग़ज़लें प्रो. वशिष्ठ अनूप जी की भी शामिल थीं। इस ग़ज़ल–गायन सत्र का संचालन एवं संयोजन **डॉ. आदित्य विक्रम सिंह** ने किया।

दिनांक 30 अगस्त 2025 को **प्रथम अकादमिक सत्र 'ग़ज़ल : स्वरूप, संरचना, परंपरा और विकास'** की शुरुआत **डॉ. लक्ष्मण गुप्त** के वक्तव्य से हुई। उन्होंने कहा कि हिंदी ग़ज़ल की शुरुआत में उर्दू जैसा कुछ नहीं मिलता, बल्कि यह हिंदवी और रेख्ता से होती हुई बाद में उर्दू में लिखी जाने लगी। ग़ज़ल को लेकर हिंदी–उर्दू विवाद भले ही चलता रहा हो, लेकिन यदि लिपि को अनदेखा कर दें तो हिंदुस्तानी भाषा और उर्दू में बहुत अधिक अंतर नहीं है। अमीर ख़ुसरो ने ग़ज़ल की चार श्रेणियाँ बताई थीं। मीर के यहाँ अवाम की बात दिखाई देती है। उन्होंने ग़ज़ल से संबंधित अनेक आलोचकों के विचारों और उनकी पुस्तकों की चर्चा की और कहा कि मेरे लिए ग़ज़ल का अर्थ हिंदुस्तानी ज़बान की ग़ज़लें हैं। **प्रो. नसीम अहमद** ने कहा कि जो ज़ुबान हिंदुस्तान में बोली जाती है, वही हिंदी है, क्योंकि यह सबको जोड़ने का कार्य करती है। उन्होंने कहा कि शोधार्थी की पहली आवश्यकता संदेह करना है– जो कहा गया है, उस पर आँख मूँदकर विश्वास न करें, बल्कि स्वयं उसकी जाँच–परख करें। **डॉ. क़ासिम अंसारी** ने कहा कि यह आयोजन हिंदुस्तान का पहला ऐसा कार्यक्रम है जहाँ हिंदी और उर्दू ग़ज़लें बिना किसी तकरार के हाथ मिलाकर आगे बढ़ रही हैं। आज ग़ज़ल पूरी तरह से हिंदुस्तानी ज़बान में है। ग़ज़ल पर कई आरोप लगे कि यह केवल इश्क़ और मोहब्बत की बात करती है, लेकिन ग़ज़ल ने कभी हौसला नहीं हारा और उसने अपनी तर्जुमानी आमफ़हम भाषा में प्रस्तुत की। **डॉ. भावना** ने कहा कि ग़ज़ल का स्वरूप आज बदल चुका है; वह अपनी पुरानी रूढ़ियों और छंद के कठोर बंधनों से मुक्त हो चुकी है। कोई भी भाषा लचीलेपन के बिना जीवित नहीं रह सकती। जिसमें हिंदी का एहसास, कहन का अंदाज़ और हिंदी संस्कृति का जो भाव है– वही हिंदी ग़ज़ल है। **जसप्रीत कौर** ने कहा कि हिंदी ग़ज़ल वर्तमान समय की एक सशक्त विधा है। उन्होंने पंजाबी ग़ज़ल और ग़ज़लकारों की विशेषताओं को प्रस्तुत करते हुए बताया कि पंजाबी ग़ज़ल में सामाजिक–सांस्कृतिक यथार्थ, नारी की वेदना और पंजाब की लोकचेतना का सशक्त चित्रण मिलता है। अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में **प्रो. कृष्णमोहन सिंह** ने कहा कि हिंदी और उर्दू ग़ज़ल के बीच यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि उर्दू ग़ज़ल केवल इश्क़िया है और हिंदी ग़ज़ल आमजन की समस्याओं की शायरी। वास्तव में दोनों के कथ्य में एकता भी है। हिंदी ग़ज़ल ने दुष्यंत कुमार के समय नई पहचान प्राप्त की, किंतु इसकी लोकप्रियता के पीछे ग़ज़ल की लंबी परंपरा का योगदान रहा है। उन्होंने मुक्तिबोध की कविता प्रस्तुत करते हुए 'ड्राइंगरूम संस्कृति' से बचने की बात कही। इस सत्र में डॉ. भावना की पुस्तक 'चुने हुए शेर' का विमोचन हुआ। सत्र का धन्यवाद–ज्ञापन **डॉ. विवेक सिंह** ने किया तथा संचालन **डॉ. प्रभात कुमार मिश्र** ने किया।

द्वितीय अकादमिक सत्र "हिंदी ग़ज़ल का सामाजिक परिप्रेक्ष्य : प्रेम और परिवार" प्रो. सतीश पांडेय की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। इस सत्र में **डॉ. श्वेता दीप्ति** ने ग़ज़ल में भावनाओं की अभिव्यक्ति पर चर्चा करते हुए कहा कि निराला, त्रिलोचन और शमशेर ने इसकी पृष्ठभूमि तैयार की, लेकिन इसे ऊँचाई तक पहुँचाने का कार्य दुष्यंत कुमार ने किया। समकालीन हिंदी ग़ज़ल ने दलित चिंतन और आदिवासी विमर्श को स्वर दिया है। **प्रो. जगदंबा प्रसाद दुबे** ने अपने वक्तव्य में कहा– "दूरियाँ बढ़ाने से क्या मिला ज़माने को, जब तब भी आना–जाना था और अब भी आना–जाना है।" इसलिए हिंदी–उर्दू ग़ज़ल को अलगाने की आवश्यकता नहीं है। **धर्मेंद्र गुप्त 'साहिल'** ने हिंदी ग़ज़लों में उपस्थित विविध विमर्श– बाल विमर्श, वृद्ध विमर्श, पारिवारिक विघटन आदि– पर प्रकाश डाला और कहा कि जब ग़ज़ल दरबारों से निकलकर खेत–खलिहानों, बाज़ारों और चाय की दुकानों तक पहुँची, तब वह हिंदी ग़ज़ल बनी। **डॉ. दिनेश पाठक** ने कहा कि हिंदी ग़ज़ल आम आदमी की पीड़ा का मुकम्मल बयान है। सामाजिकता पर बात करते समय राजनीतिक संदर्भों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। हिंदी ग़ज़ल की वर्तमान संवेदना राजनीतिक प्रतिरोध की संवेदना है। उन्होंने दुष्यंत कुमार को आधुनिक हिंदी ग़ज़ल का जनक कहा। **डॉ. आदित्य विक्रम सिंह** ने वशिष्ठ अनूप की ग़ज़ल– "तुलसी के, जायसी के, रसखान के वारिस हैं"– का संदर्भ देते हुए कहा कि ग़ज़ल की विशेषता यह है कि यह ज़ुबान में बस जाती है। उर्दू ग़ज़ल में नफ़ासत, नज़ाकत और रूमानियत है, जबकि हिंदी ग़ज़ल में प्रेम होते हुए भी मुख्य रूप से लोक, समाज, मानव जीवन और रिश्तों की अभिव्यक्ति है। उन्होंने बताया कि हमारी फ़िल्मों में भी ग़ज़लें व्यापक रूप से प्रयुक्त हुई हैं। साथ ही मुनव्वर राणा की माँ पर लिखी ग़ज़लों के संग्रह का उल्लेख किया। **डॉ. टीकमणि पटवारी** ने मध्यप्रदेश के ग़ज़लकारों पर प्रकाश डालते हुए बाबा धरणी की उत्कृष्ट ग़ज़लें प्रस्तुत कीं। अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में **प्रो. सतीश पांडेय** ने सत्र का सार प्रस्तुत करते हुए कहा कि हिंदी ग़ज़ल अपनी बोली और व्याकरण के अनुरूप अपनी संस्कृति को अभिव्यक्त करती है। हिंदी ग़ज़ल का वर्तमान चरित्र कथ्य की प्रमुखता में निहित है। हिंदी ग़ज़ल के नए इतिहास में समकालीन ग़ज़ल का समावेश होना चाहिए। उन्होंने समकालीन ग़ज़ल में नारी–चित्रण पर भी विचार रखा। इस सत्र का धन्यवाद–ज्ञापन **डॉ. मानसी श्रीवास्तव** ने किया तथा संचालन **डॉ. प्रीति त्रिपाठी** ने किया।

तृतीय अकादमिक सत्र 'वैश्विक चुनौतियाँ और हिंदी ग़ज़ल' की शुरुआत चीन से पधारे **डॉ. राजीव रंजन** के व्याख्यान से हुई। उन्होंने कहा कि एआई (AI) के युग में ग़ज़ल ने और अधिक व्यापकता प्राप्त की है। हमारे यहाँ एआई के बढ़ते प्रयोग से लोग चिंतित हैं, जबकि विदेशों में इसे जीवन का अंग मानकर स्वीकार किया जा रहा है। **डॉ. नलिनी सिंह** ने अपने वक्तव्य में हिंदी ग़ज़ल में व्यक्त पर्यावरणीय समस्याओं और समसामयिक वैश्विक चुनौतियों पर प्रकाश डाला। नीदरलैंड से ऑनलाइन जुड़ीं **डॉ. ऋतु शर्मा** ने बताया कि सूफ़ी कवियों के समय से ही ग़ज़ल का स्वरूप भारतीय हो चुका था। विदेशों में गए लोग अपनी भाषा–संस्कृति के साथ ग़ज़ल को भी ले गए। उन्होंने कहा कि हम विदेशों में बच्चों को पहले छोटी–छोटी लय में लिखना सिखाते हैं और धीरे–धीरे उन्हें ग़ज़ल या कविता की ओर ले जाते हैं। ऑस्ट्रेलिया से ऑनलाइन जुड़ीं **डॉ. रेखा राजवंशी** ने कहा कि आज की ग़ज़ल में समकालीन कविता की संवेदना मुखरित होती है– "चाँद रोता रहा न जाने क्यों, दर्द होता रहा न जाने क्यों।" उन्होंने कहा कि आज सोशल मीडिया और वैश्वीकरण के दौर में लोग ग़ज़ल को पढ़, लिख और सुन रहे हैं। हिंदी ग़ज़ल का भविष्य अपार संभावनाओं से भरा है। **डॉ. राम सुधार सिंह** ने कहा कि साहित्य की कोई भी विधा, जो जन–सरोकारों से जुड़ी हो और जिसे लोग पसंद करते हों, उसका कथ्य बड़ा होता है तो वह विधा स्वतः बड़ी बन जाती है। उन्होंने बनारस के शायरों की ग़ज़लों में युद्ध, तानाशाही और बाज़ारवाद जैसी वैश्विक चुनौतियों के उदाहरण प्रस्तुत किए। **प्रो. मुन्ना तिवारी** ने कहा कि वर्तमान समय में ग़ज़ल समीक्षकों को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। हिंदी को बचाने की पहली लड़ाई भक्तिकाल के उत्तरार्ध और रीतिकाल के आरंभ में लड़ी गई थी। जिस समय अरबी–फ़ारसी ग़ज़ल अपनी रूमानियत के उत्कर्ष पर थी, उसी समय हमारी ग़ज़ल घोर रूमानियत के बीच भी लोक–संवेदना की ओर अग्रसर थी। दुष्यंत के बाद की हिंदी ग़ज़ल हमारी हिंदी कविता के अधिक निकट है, इसलिए इसे मुख्यधारा के साहित्य में शामिल किया जाना चाहिए। इस सत्र के अध्यक्षीय उद्बोधन में **श्री सुनील कुमार शर्मा** ने कहा कि हिंदी ग़ज़ल में सवालों के साथ–साथ उम्मीद की

किरण भी दिखाई देती है। अब यह अपने आप में एक समृद्ध और लोकप्रिय विधा बन चुकी है। उन्होंने एआई के बढ़ते प्रभाव से उत्पन्न समस्याओं के प्रति भी सचेत किया। इस सत्र का धन्यवाद–ज्ञापन **डॉ. लहरीराम मीणा** ने किया तथा संचालन **डॉ. महेंद्र प्रसाद कुशवाहा** ने किया।

चतुर्थ अकादमिक सत्र "हिंदी ग़ज़ल : धर्म, दर्शन, इतिहास एवं संगीत" की शुरुआत **डॉ. ज्ञानेश पांडेय** के वक्तव्य से हुई। उन्होंने बताया कि हिंदी ग़ज़ल ने संगीत के माध्यम से जन–जन तक अपनी पहुँच बनाई है, जो शास्त्रीयता और लोकप्रियता– दोनों को साथ लेकर चलती है। इसके उपरांत **डॉ. विवेक मणि त्रिपाठी** ने अपने वक्तव्य में कहा कि ग़ज़ल का धार्मिक और दार्शनिक पक्ष उसके भाव–संसार में निहित है। प्रेम, वियोग, ईश्वर और आत्मा जैसे विषयों को ग़ज़लकारों ने जिस गहराई से व्यक्त किया है, वह इसकी संवेदनात्मक व्यापकता को दर्शाता है। **डॉ. अंबरीश चंचल** ने ग़ज़ल के ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश डालते हुए कहा कि ग़ज़ल का आरंभ केवल दरबारी मनोरंजन से नहीं हुआ, बल्कि यह धीरे–धीरे समाज और लोकजीवन की अभिव्यक्ति बनती गई। **डॉ. भूपेंद्र कुमार** ने ग़ज़ल और संगीत के अंतर्संबंध को रेखांकित करते हुए बताया कि किस प्रकार संगीत ने ग़ज़ल को जीवन प्रदान किया। **डॉ. सुशांत शर्मा** ने अपने वक्तव्य में कहा कि ग़ज़ल केवल भावों की नहीं, बल्कि विचारों की भी अभिव्यक्ति है। उन्होंने कहा कि हिंदी ग़ज़ल ने आधुनिक युग में मानवता, नैतिकता और करुणा के स्वर को जीवित रखा है। इस सत्र के अध्यक्षीय उद्‌बोधन में **पद्‌मश्री प्रो. राजेश्वर आचार्य** ने ग़ज़ल और संगीत के पारस्परिक संबंध पर गहन चर्चा करते हुए कहा कि ग़ज़ल केवल साहित्यिक या काव्यात्मक विधा नहीं है, बल्कि यह भारतीय संगीत की परंपरा से बड़ी गहराई के साथ जुड़ी हुई– एक सांगीतिक अभिव्यक्ति भी है। उन्होंने अनेक प्रसिद्ध ग़ज़ल गायकों और संगीतकारों के उदाहरणों के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि किस प्रकार राग, लय, ताल और भाव–प्रधानता ग़ज़ल को एक विशिष्ट सौंदर्य प्रदान करते हैं। उन्होंने कहा कि ग़ज़ल के गायन में स्वर–साधना और भाव–संवेदना दोनों का अद्‌भुत संगम दिखाई देता है। उर्दू और हिंदी– दोनों परंपराओं में ग़ज़ल का संगीतात्मक पक्ष उसकी लोकप्रियता का मुख्य कारण रहा है। संगीत के बिना ग़ज़ल अधूरी है, क्योंकि उसके भीतर निहित नज़ाकत और दर्द को स्वर ही जीवंत बनाते हैं। इस सत्र का संचालन **डॉ. रविशंकर सोनकर** ने कुशलतापूर्वक किया, जबकि धन्यवाद–ज्ञापन **डॉ. शशिकला** ने किया।

इस दिन के **कार्यक्रम का समापन सांध्यकालीन काव्यपाठ** से हुआ, जिसके अंतर्गत **कमलेश भट्ट 'कमल', हरेराम समीप, अनिरुद्ध सिन्हा, डॉ. भावना, सुनील कुमार शर्मा, कपिल लामिछाने, लक्ष्मण प्रसाद गुप्त, शिवकुमार पराग, जसप्रीत कौर 'फ़लक', अभिनव अरुण, धर्मेंद्र गुप्त 'साहिल', गिरीशचंद्र पांडेय, सिद्धनाथ शर्मा, विजय कुमार त्रिपाठी** आदि ग़ज़लकारों ने अपनी–अपनी ग़ज़लों की प्रस्तुति दी और काव्यपाठ किया। इसका संयोजन, संचालन एवं धन्यवाद–ज्ञापन श्री **अभिनव अरुण** ने किया।

31 अगस्त 2025 को **पंचम अकादमिक सत्र "हिंदी ग़ज़ल का विस्तार और प्रवृत्तियाँ"** की शुरुआत मॉरीशस से पधारी **शाम्यता शंकर** के शोध–पत्र वाचन से हुई। उन्होंने प्रेम के विभिन्न स्वरूपों– पारिवारिक प्रेम, देशप्रेम और प्रकृति–प्रेम– पर विस्तार से चर्चा की। **अभिषेक शुक्ल,** जो आचार्य शुक्ल की वंशपरंपरा से हैं, ने कहा कि हिंदी ग़ज़ल में जो चमक पहले थी, वह आज तकनीकी युग में कहीं धूमिल पड़ गई है। उन्होंने बाज़ारवाद के प्रभाव और तकनीक के अति–प्रयोग के दुष्प्रभावों पर प्रकाश डाला। **अखिल मिश्र** ने हिंदी ग़ज़ल के विकास, विस्तार एवं प्रवृत्तियों पर चर्चा करते हुए मैथिलीशरण गुप्त, निराला, नरेंद्र शर्मा और जानकीवल्लभ शास्त्री आदि के योगदान को रेखांकित किया। **कपिल लामिछाने** ने कहा कि नेपाली ग़ज़ल की शुरुआत काशी से होती है। मोतीराम भट्ट ने इसकी नींव रखी थी। ग़ज़ल के विकास हेतु नेपाल में "मोती मंडली" नामक साहित्यिक संस्था की स्थापना हुई। उन्होंने कुछ नेपाली ग़ज़लों का पाठ करते हुए नेपाली ग़ज़ल की परंपरा पर प्रकाश डाला और नेपाल के हिंदी ग़ज़लकार कृष्णचंद्र की पंक्ति "पिंदी न पिंदी मांछे, पिंदी अली कती" उद्धृत की। **प्रो. अनिरुद्ध सिन्हा** ने कहा कि यह संगोष्ठी भविष्य में "काशी संगोष्ठी" के नाम से जानी जाएगी। उन्होंने ग़ज़ल में सौंदर्य और शब्द–संयोजन पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता पर बल दिया, क्योंकि तथ्य और सौंदर्य शब्दों के माध्यम से ही प्रकट होते हैं। उनके अनुसार, ग़ज़ल का हर शेर अपने भीतर एक कहानी समेटे होता है। हिंदी ग़ज़ल आज भी काव्य की प्रमुख विधाओं में से एक है

और आगे भी रहेगी। इस सत्र के अध्यक्षीय उद्‌बोधन में प्रमुख ग़ज़लकार और आलोचक **हरेराम समीप** ने कहा कि हिंदी ग़ज़ल से आशय हिंदी कविता के संस्कारों से संपन्न ग़ज़लों से है। उन्होंने हिंदी ग़ज़ल के सबसे महत्वपूर्ण दौर को शमशेर का दौर बताया और कहा कि शमशेर हिंदी ग़ज़ल की आधारशिला हैं। हिंदी ग़ज़ल में जनपक्षधरता, सामाजिक सद्‌भाव, साझा संस्कृति का प्रतीक और भाषा की सहजता विद्यमान है। इस सत्र का धन्यवाद–ज्ञापन **डॉ. प्रियंका सोनकर** ने किया तथा संचालन **डॉ. किंगसन सिंह पटेल** ने किया।

इन सत्रों के समानांतर तकनीकी सत्र का भी आयोजन हुआ, जिसमें विभिन्न विश्वविद्यालयों से आए शोधार्थियों ने अपने शोध–पत्रों का वाचन किया। इस सत्र की अध्यक्षता **डॉ. राजीव रंजन** और **डॉ. विवेक मणि त्रिपाठी** ने की। संचालन **दिव्या शुक्ला** ने किया तथा धन्यवाद–ज्ञापन **हिमांशु तिवारी** ने किया।

''षष्ठम् अकादमिक सत्र ''समकालीन हिंदी ग़ज़ल : परंपरा, मौलिकता तथा चुनौतियाँ–'संभावनाएँ'' की शुरुआत **डॉ. सुनील कुमार मानस** के व्याख्यान से हुई। उन्होंने आधुनिकता की धारणा और समकालीनता की भूमिका को स्पष्ट करते हुए बताया कि ग़ज़ल की परंपरा की शुरुआत 12वीं–13वीं सदी से होती है और यह 19वीं–20वीं सदी में अपनी विशिष्ट पहचान बनाती है। उन्होंने कहा कि हिंदी और उर्दू ग़ज़लों को एक साथ रखकर देखने की आवश्यकता है, क्योंकि बिना उर्दू शब्दों के प्रयोग के बगैर श्रेष्ठ ग़ज़ल लिखना कठिन है। उन्होंने उत्कृष्ट ग़ज़लों के कई उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उनके भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिकोण को भी स्पष्ट किया। उन्होंने कहा कि बिना समकालीन हुए हम अतीत को समझ नहीं सकते, और तब हमारा अतीत भी एक प्रकार की समकालीनता का वाहक बन जाता है। **प्रो. परितोष त्रिपाठी** ने वशिष्ठ अनूप द्वारा गाँवों में आयोजित ग़ज़ल गोष्ठियों की सराहना करते हुए कहा कि ऐसे आयोजन नई प्रतिभाओं को उभारने में सहायक होते हैं। **अभिनव अरुण** ने आधुनिक दौर की समस्याओं और विकास के कारण हुए मानवीय मूल्यों के क्षरण पर चिंता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि हमने इस विधा को समझने में एक लंबा समय लिया, तब जाकर भूख और गरीबी जैसे विषयों पर बात कर पाए हैं। आज आवश्यकता है कि हम प्रसार से अधिक ग़ज़ल के मिज़ाज को बनाए रखें। **प्रो. शरदिंदु कुमार त्रिपाठी** ने कहा कि संस्कृत काव्यविधा में ग़ज़ल का कोई स्वतंत्र प्रकार नहीं है, किंतु काव्य की व्यापक परंपरा में यह कहीं न कहीं समाहित है। उन्होंने बताया कि आचार्य भट्ट मथुरानाथ शास्त्री संस्कृत के प्रथम ग़ज़लकार माने जाते हैं। उनके बाद राधावल्लभ त्रिपाठी और पंडित वासुदेव सहित अनेक कवियों ने संस्कृत में ग़ज़लें लिखीं। आज लगभग 54 संस्कृत ग़ज़लकार सक्रिय हैं। **प्रो. श्रीप्रकाश शुक्ल** ने कहा कि काशी हिंदू विश्वविद्यालय में ग़ज़ल को लोकप्रिय बनाने में वशिष्ठ अनूप जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने बताया कि ग़ज़ल में तीन प्रमुख तत्त्व दिखाई देते हैं– कलात्मकता, कथात्मकता और कथनात्मकता। दुष्यंत की कलात्मकता को अदम गोंडवी ने कथात्मक रूप दिया। ग़ज़ल को जागरूक और आलोचनात्मक बनाना होगा, तभी इसकी स्वायत्तता स्थापित हो सकेगी। **प्रो. अनिल कुमार राय** ने कहा कि समकालीन हिंदी ग़ज़ल की वर्तमान प्रासंगिकता और उसकी चुनौतियों की समीक्षा करने के लिए ही इस संगोष्ठी का आयोजन किया गया है। उन्होंने बताया कि दुष्यंत कुमार को नवीन चेतना से युक्त ग़ज़लें लिखने की प्रेरणा नई कविता या समकालीन कविता की संवेदना से मिली। लेकिन उनकी प्रमुख चिंता कविता को लोगों तक पहुँचाने और उनसे जोड़ने की थी, क्योंकि उस समय की कविता संप्रेषणीय नहीं रह गई थी। उन्होंने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से इस समस्या का समाधान किया। उन्होंने कहा कि ग़ज़ल आलोचक की ज़िम्मेदारी है कि वह ग़ज़ल की आलोचनाओं का तर्कसंगत खंडन करे और उसकी वर्तमान अर्थवत्ता को स्थापित करे। सत्र के अध्यक्षीय उद्‌बोधन में **श्री कमलेश भट्ट 'कमल'** ने सभी वक्तव्यों का समाहार करते हुए रामचंद्र शुक्ल और प्रेमचंद के विचार उद्धृत किए और कहा कि साहित्य का काम रिझाना नहीं, बल्कि जगाना है– और यह कार्य हिंदी ग़ज़ल में पूरी गंभीरता से हो रहा है। उन्होंने कहा कि हिंदी भाषा में ग़ज़ल का पुनर्जन्म हुआ है। हिंदी के अनेक बड़े आलोचकों ने ग़ज़ल की उपेक्षा की है, इसलिए आवश्यकता है कि रचनाकार इतना बड़ा हो जाए कि आलोचक को उस पर लिखना ही पड़े। इस सत्र का धन्यवाद–ज्ञापन **डॉ. विंध्याचल यादव** ने किया तथा संचालन **डॉ. सत्यप्रकाश सिंह** ने किया।

समापन सत्र की शुरुआत **प्रो. वशिष्ठ द्विवेदी** के स्वागत वक्तव्य से हुई, जिसमें उन्होंने माधव मधुकर के शेर– ''कुछ ऐसा कर दिखाओ ज़माने में दोस्तों, जिससे तुम्हारे बाद तुम्हारी कमी लगे।''– के माध्यम से

अपने मंतव्य को स्पष्ट किया। उन्होंने मंचस्थ अतिथियों का स्वागत एवं सम्मान अंगवस्त्र, मोमेंटो और तुलसी का पौधे भेंटकर किया। अपने उद्‌बोधन में उन्होंने संगोष्ठी की उपलब्धियों को अपूर्व और ऐतिहासिक बताते हुए कहा कि इसमें नेपाली, संस्कृत, पंजाबी तथा अन्य भाषाओं की ग़ज़लों पर सार्थक चर्चा हुई। इस अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी में ऑस्ट्रेलिया, नीदरलैंड, मॉरीशस, नेपाल, चीन तथा अन्य देशों के विद्वानों सहित देश के विभिन्न प्रांतों से आए ग़ज़लकारों, साहित्यकारों और शोधार्थियों की सहभागिता ने इसे अत्यंत सफल बना दिया। हिंदी ग़ज़लें अब अरबी–फ़ारसी छंदों के साथ–साथ परंपरागत भारतीय छंदों में भी लिखी जा रही हैं, जिनकी शुरुआत पिंगलाचार्य ने की थी। जिन छंदों में सर्वाधिक ग़ज़लें लिखी गई हैं, वे हैं– स्रग्विणी और भुजंगप्रयात। हिंदी ग़ज़ल हमारी जातीय परंपरा, भारतीय परिवेश और संस्कृति से गहराई से जुड़ी हुई है। तदोपरांत **डॉ. हरीश कुमार** ने इस त्रिदिवसीय संगोष्ठी का संपूर्ण प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। इसके पश्चात अतिथियों का सम्मान किया गया। विशिष्ट अतिथि, दैनिक जागरण के संपादक **श्री संजय मिश्र** ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि हिंदी ग़ज़ल के उद्‌भव और विकास पर समालोचनात्मक विवेचन करने वाले गीतों की संख्या बहुत कम है। गायकों ने ग़ज़ल को समझना आसान बनाया और उसे लोकप्रियता दी, परंतु अब आवश्यकता है कि समालोचनात्मक अध्ययन इस प्रकार हो कि हिंदी ग़ज़ल हर पाठक तक सहजता से पहुँच सके। उन्होंने कहा कि कोई भी विधा तभी जीवंत रहती है जब वह जनता के बीच पहुँचती है। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि यह अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी अपने उद्देश्य को पूर्ण करेगी और इसका सार्थक संदेश दूर तक जाएगा। मुख्य अतिथि **डॉ. दयाशंकर मिश्र** (आयुष मंत्री, उत्तर प्रदेश शासन) ने कहा कि मैं इसी विश्वविद्यालय में विज्ञान का विद्यार्थी रहा हूँ, इसलिए यहाँ की प्रगति और उन्नति देखकर अत्यंत प्रसन्नता होती है। उन्होंने कहा कि सदन में अपनी बात को सशक्त रूप से रखने के लिए हम प्रायः ग़ज़ल का सहारा लेते हैं। ग़ज़ल पर आयोजित यह पहली संगोष्ठी भविष्य में अपार संभावनाओं के द्वार खोलेगी। सत्र की अध्यक्षता कर रहे **प्रो. अनिल कुमार राय** ने संगोष्ठी के सफल आयोजन की बधाई देते हुए छंदबद्ध विधाओं पर तार्किक एवं बौद्धिक विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने कहा कि प्रो. वशिष्ठ अनूप इस संगोष्ठी के माध्यम से छंदशास्त्र में बद्ध काव्य–विधाओं को पुनः प्रतिष्ठित करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। उन्होंने स्पष्ट किया कि दुष्यंत कुमार को नवीन चेतना से युक्त ग़ज़लें लिखने की प्रेरणा नई कविता और समकालीन कविता की संवेदनाओं से मिली थी, पर उनकी मुख्य चिंता कविता को जनता तक पहुँचाना और उनसे जोड़ना था। उन्होंने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से यही कार्य किया। प्रो. राय ने आगे कहा कि ग़ज़ल–आलोचक की जिम्मेदारी है कि वह ग़ज़ल की आलोचनाओं का तर्कसंगत विश्लेषण करे और उसकी वर्तमान अर्थवत्ता को स्थापित करे। इस सत्र का संचालन **डॉ. अशोक कुमार 'ज्योति'** ने किया तथा धन्यवाद–ज्ञापन **डॉ. सत्यप्रकाश पाल** ने किया।

उपरोक्त संगोष्ठी के आरंभ से लेकर समापन तक हिंदी विभाग का आचार्य रामचंद्र शुक्ल सभागार खचाखच भरा रहा। देश–विदेश से आए प्राध्यापकों, शोधार्थियों और विद्यार्थियों की सक्रिय सहभागिता ने इस त्रिदिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी को ऐतिहासिक स्वरूप प्रदान किया। यह संगोष्ठी केवल एक शैक्षणिक आयोजन नहीं रही, बल्कि इसने हिंदी ग़ज़ल के बहुआयामी स्वरूप– धर्म, दर्शन, इतिहास और संगीत– को एक साझा मंच पर समाहित करने का कार्य किया। विभिन्न भाषाओं और देशों से आए विद्वानों ने हिंदी ग़ज़ल की सांस्कृतिक गहराई, भाषिक विविधता और कलात्मक विकास पर गंभीर विमर्श प्रस्तुत किए। इस संगोष्ठी ने यह सिद्ध किया कि हिंदी ग़ज़ल अब किसी सीमित काव्य–रूप तक बंधी नहीं है, बल्कि वह वैश्विक साहित्यिक परिदृश्य में अपनी सशक्त पहचान बना चुकी है। विषय–प्रवर्तन से लेकर समापन सत्र तक सभी वक्ताओं के विचारों में ग़ज़ल के सामाजिक, दार्शनिक और मानवीय पक्ष की गूंज सुनाई दी। श्रोताओं की उत्साही उपस्थिति और संवादात्मक सहभागिता ने इस आयोजन को न केवल सफल बनाया, बल्कि हिंदी ग़ज़ल अध्ययन की दिशा में एक नई ऊर्जा और दृष्टि भी प्रदान की। इस प्रकार यह संगोष्ठी हिंदी साहित्य की परंपरा और आधुनिकता के संगम की एक स्मरणीय उपलब्धि बन गई।

पत्रिका में शोध-लेख प्रकाशन की अनिवार्य शर्तें

1. आपके द्वारा प्रेषित शोध–लेख मौलिक, स्तरीय, प्रकाशन के योग्य एवं अप्रकाशित हो, तथा आपके द्वारा **आलोचन दृष्टि** द्वारा जारी किया गया **लेखक का घोषणा–पत्र** फार्म अवश्य भरा होना चाहिए।
2. अपने शोध–लेख (हिन्दी व संस्कृत के ज्ञतनजप क्मअ 10 में और अंग्रेजी के ज्पउमे छमू त्वउंद थ्वदज में) की वर्ड एवं पी.डी.एफ. फाइल बनाकर सी.डी. या डी.वी.डी. में हार्ड कॉपी के साथ **आलोचन दृष्टि,** कार्यालय के पते में प्रेषित करें। आपको यदि अपने शोध–लेख का **स्वीकृत पत्र** चाहिए तो एक लिफाफे में अपना नाम, पता पिन कोड सहित लिखकर, आवश्यक स्पीड पोस्ट की डाक टिकट लगाकर भेजें और 3–4 महीने तक अनावश्यक कोई कॉल किसी भी **आलोचन दृष्टि** के प्राधिकारी से न करें। यदि किसी पदाधिकारी से बात करने की जरूरत पड़े तो शाम 6.00–8.00 के बीच संपर्क करें।
3. **शोध–लेख/आलेख में मोबाइल नंबर, ई–मेल एवं पता अंकित होना चाहिए।**
4. शोध–लेख/आलेख की जांच **संपादक मंडल** एवं **आलोचन–दृष्टि–परिवार** के द्वारा की जाएगी उसके उपरांत ही शोध–लेखों/आलेखों को प्रकाशित किया जायेगा, जिसमें **संपादक मंडल** का **निर्णय** अंतिम और सर्वमान्य रहेगा।
5. शोध लेख **यूजीसी** के मानक के अनुरूप होने चाहिए और **संदर्भ–सूची** में पुस्तक का नाम, लेखक का नाम, प्रकाशन का नाम, संस्करण–वर्ष एवं पृष्ठ संख्या तथा पत्रिका के संदर्भ हेतु, उसका अंक, वर्ष, पृष्ठ संख्या आदि– निश्चित रूप से अंकित होने चाहिए। ऐसा न होने पर लेख की **संदर्भ–सूची** को भ्रामक माना जाएगा।
6. पत्रिका के प्रकाशन हेतु लेखकों, पाठकों एवं आलोचकों से सदस्यता भी अपेक्षित रह सकती है, क्योंकि पत्रिका को कोई अनुदान या अंशदान नहीं प्राप्त हो रहा।
7. शोध–लेख के लिए 2000–2500 शब्द–सीमा निर्धारित की गई है, अतः शब्द–सीमा का ध्यान रखें।
8. पत्रिका में सर्वेक्षणात्मक की अपेक्षा वैचारिक शोध–लेखों/आलेखों को वरीयता प्रदान की जायेगी।

–संपादक

Essential conditions for publication of research articles in the journal

1. The research article sent by you should be original, quality, worthy of publication and unpublished, and the **Author's Declaration Form** issued by **Aalochan Drishti** must be filled.
2. To send CD or DVD of your research articles Word & PDF File, with hard copy (Hindi & Sanskrit in **Kruti Dev 10 Font** and English in **Times New Roman Font**) at the address of **Aalochan Drishti**. If you want the Acceptation Letter of your dissertation/article, then write your name, address with pin code in an envelope, to affixing required speed post postage stamp and No unnecessary call for 3-4 months from any officer/ Member of Aalochan Drshiti. If there is a need to talk to any Officer/Member, then contact between 6.00-8.00 in the evening.
3. Mobile number, e-mail and address should be mentioned in the research paper/article.
4. The research-articles will be examined by the **Editorial Board** and **Aalochan Drishti-Family**, only after that the research articles/articles will be published, in which the decision of the **Editorial Board** will be final and binding.
5. Research articles should be as per **UGC standard** and in the **Bibliography** the name of the book, the name of the author, the name of the publication, the edition-year and page number and for the reference of the journal, its issue, year, page number etc.- fixed must be clearly marked. Otherwise, the **Bibliography** of the article will be considered misleading.
6. Subscription may also be required from writers, readers and critics for the publication of the magazine, because the magazine is not receiving any grant or contribution.
7. 2000-2500 word limit has been set for the research article, so keep in mind the word limit.
8. Preference will be given to conceptual research articles/articles in the journal rather than survey.

-Editor

भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला, द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी
(दिनांकः 03-04 सितम्बर, 2025) ''आधुनिक हिन्दी साहित्य और भारतीयता'' का एक चित्र

हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी एवं साहित्य अकादमी, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में
आयोजित तीन दिवसीय अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी (दिनांकः 29-31 अगस्त, 2025)
''गजल हिंदी गजल : समाज, दर्शन, इतिहास और संगीत'' का एक चित्र

आलोचन दृष्टि,
आजाद नगर, बिन्दकी, जनपद-फतेहपुर, उ0प्र0-212635
ई-मेल : aalochan.p@gmail.com
वेबसाइट : https://aalochandrishti.org/

Website QR Code